ईश्वरीय सम्बन्ध

जिस प्रकार हमारे सांसारिक सम्बन्ध हैं, माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी आदि, उसी प्रकार जब ईश्वर के साथ सम्बन्ध होता है तो क्या होता है? इष्ट-कृपा से जो मुझे अनुभव हुआ है, वह आपके सम्मुख रखूँगा। आप समस्त लोग बुद्धिजीवी हैं, जिज्ञासु हैं, एक बात से आप सहमत होंगे, कि इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में, विभिन्न प्रकार के मनुष्य हैं। पहली श्रेणी में वे लोग आते हैं, जो ईश्वर को मानते ही नहीं, जो ईश्वर में विश्वास तो क्या ईश्वर के अस्तित्व को ही नहीं मानते। पशु भी ईश्वर को नहीं मानते, उससे ईश्वर को कोई अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि पशु ही ईश्वर को नहीं मानते। दूसरी श्रेणी में वे लोग आते हैं, जो ईश्वर को मानते हैं। तीसरी श्रेणी के लोग ईश्वर को मानने के साथ ईश्वर के बारे में जानना भी चाहते हैं। ईश्वर कैसे होंगे, क्या हैं ईश्वर, कहाँ रहते हैं? आदि-आदि। एक चौथी श्रेणी है, जो ईश्वर को जानना चाहते हैं। ईश्वर को मानना, ईश्वर को मानने के बाद ईश्वर के बारे में जानना व उसके आगे ईश्वर को जानना। ईश्वर के बारे में जानना और ईश्वर को जानना, ये जिज्ञासु श्रेणी के लोग हैं। जिज्ञासु के पाँच स्तर हैं—**सामान्य जिज्ञासु, जिज्ञासु, परम जिज्ञासु, अति जिज्ञासु और महा जिज्ञासु। महा जिज्ञासु** ईश्वर को जानने के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं। अन्तिम श्रेणी के जो महामानव हैं, उन्हें कहा है—**मुमुक्षु।** वे मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं। मोक्ष के विभिन्न प्रकार हैं—**सायुज्य, सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य और कैवल्य।**

अनादि काल से ईश्वर के अस्तित्व को कुछ लोगों ने स्वीकार कर

लिया। उसके बाद जब उनमें उस ईश्वर के बारे में और ईश्वर को जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई, तो उनमें से बहुत से जिज्ञासुओं ने अपने घर-बार त्याग दिये। उनमें राजा-महाराजा और बहुत उच्च-कोटि के ऐश्वर्यपूर्ण व्यक्ति थे। जिज्ञासावश वे अपने घरों, ऐश्वर्य व भौतिक सुखों को त्याग कर जंगलों, पहाड़ों व निर्जन स्थानों में चले गये थे। आप मुझसे सहमत होंगे, कि मानव को पशुओं से पृथक एक सर्वोत्कृष्ट शक्ति ईश्वर ने दी है और वह है–**बौद्धिक शक्ति**। ऐसे परम जिज्ञासुओं ने ईश्वर के बारे में और ईश्वर को जानने के लिए अपनी समस्त बौद्धिक शक्ति लगा दी। वे व्यक्ति ईश्वरीय थे और ईश्वर ने अपने इन भक्तों को विशेष कृपा करके वैसी बुद्धि प्रदान की जो आम मानव में नहीं होती। उस **'परा बुद्धि'** से उन्होंने चार वेद रचे– **अथर्ववेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं ऋगवेद।** इन चारों वेदों ने ब्रह्म के बारे में जो तथ्य रखे, उनका सार चार महावाक्य हैं। पहले वेद ने कहा **'अहम् ब्रह्मास्मि'** तो दूसरे वेद इससे सहमत नहीं हुए। मैं ब्रह्म हूँ, यह किसको कह रहे हो? जिसको कह रहे हो क्या वह ब्रह्म नहीं है! दूसरे वेद का महावाक्य है, **''तत्त्वमसि,'' तुम्हीं सब कुछ हो!** वह भी अधूरा था। तीसरे ने कहा, **''प्रज्ञानम् ब्रह्म''।** मेरा ज्ञान ही ब्रह्म है, तो पूछा कि जो शेष है, वह क्या है? यह भी अधूरा निकला। चौथे ने कहा **'अयम् आत्मा ब्रह्म'।**

चारों वेदों ने ब्रह्म के बारे में जो चार महावाक्य कहे, वे अपने में अधूरे थे। अतः चारों वेदों में पारस्परिक विरोध हो गया और अन्ततः वे चारों एक शब्द पर सहमत हो गये, वह शब्द था **'नेति'**। नेति का सन्धिविच्छेद करें **न + इति, कि** उस ब्रह्म के बारे में हम चारों वेद जो जानते हैं, वही ज्ञान का अन्त नहीं है। इसके अतिरिक्त भी कुछ है, जो हम नहीं जानते। घर-बार छोड़ कर आये जिज्ञासु असंतुष्ट रहे, क्योंकि वे ईश्वर को नहीं जान पाये। तो उन्होंने गहन विचार किया, कि यदि उनकी तीव्रतम बुद्धि ईश्वर को जानने में असमर्थ रही तो, बुद्धि को हटा कर चला जाये। उन्होंने 21 प्रकार की समाधियों का अन्वेषण किया। 'समाधि' अर्थात् जहाँ **'धि'** सम हो जाती है। जहाँ बुद्धि शान्त हो जाती है। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि वेद

यद्यपि ब्रह्म को नहीं जान सके परन्तु इस खोज में उन्होंने और बहुत कुछ जान लिया—अर्थ-शास्त्र, संगीत-शास्त्र, भौतिक-शास्त्र, नृत्य-शास्त्र आदि। आज विश्व में जो भी ज्ञान-विज्ञान है वह हमारे वेदों पर आधारित है।

समाधि से शुरू होता है **दर्शन।** जिसका नाम था वेदान्त अर्थात् **वेद + अन्त**। जहाँ वेदों का अंत हो गया, वहाँ से **'वेदान्त'** शुरू हुआ। उन्हीं मनीषियों ने समाधिस्थ होकर अनुभूतियाँ कीं। उन्हें जो प्रेरणाएँ हुईं, उन आत्मानुभूतियों को बुद्धि ने परखा और अन्ततः वेदान्त का एक वाक्य पर अन्त हो गया। **''जो ब्रह्माण्डे, सो पिण्डे'' ''दृष्टा-दृश्यवाद'' अर्थात् जो देख रहा है,** जो दृष्टा है वो स्वयं को ही बाहर देख रहा है। इसमें उसकी अपनी देह भी आती है। जो मैं भीतर हूँ वही बाहर के जगत में देख रहा हूँ, अथवा जो बाहर का जगत मुझे दृष्टिगोचर हो रहा है वह मेरे भीतर के जगत का सीधा बाह्य प्रकटीकरण है। बाहर जगत नहीं है, मेरे भीतर जगत बना हुआ है और बाहर उसका प्रकटीकरण है। उत्तरकाशी में जब मैं समाधि में वेदान्त का अध्ययन कर रहा था, तो पाया, कि मनुष्य-शरीर में जो बिमारियाँ उत्पन्न होती हैं, वह भी भीतरी वृत्तियों का ही बाह्य प्रकटीकरण हैं। ईश्वर-कृपा से मैंने **मानव-वृत्तियाँ** खोजीं, जो देह में बिमारियाँ बनकर प्रकट होती हैं। उदाहरण के लिये मैं **'मधुमेह'** के लिए वृत्ति बताता हूँ। **'मधुमेह'** जो आजकल काफी लोगों में है, तो इसकी वृत्ति क्या है? **'ज़िम्मेदारी की वृत्ति'** एवं यह वृत्ति **कि मेरे बिना कुछ नहीं हो सकता, मेरा कोई विकल्प नहीं है।** जब यह भाव आ जायेगा तो समझ लीजिये किसी समय भी उस आदमी में **'मधुमेह'** की बीमारी अवश्य शुरू हो जायेगी। जब ऐसा व्यक्ति चिकित्सक के पास जाता है, तो जाँच करके उसे उचित दवाई लिख दी जाती है। विशेष परहेज़ बता दिया जाता है, विशेष व्यायाम बता दिया जाता है। लेकिन जब तक रोगी के अंदर की वह वृत्ति समाप्त नहीं होगी, तब तक उसकी बीमारी कभी समाप्त नहीं होगी। यह विषय यहाँ चर्चा करने का नहीं है। लेकिन वेदान्त के निष्कर्ष से जो बाहर जगत है वह भीतरी जगत का बाह्य प्रकटीकरण है। प्रश्न यह उठा कि भीतरी जगत रूपी कैसेट को रिकॉर्ड

किसने किया है, यह कहाँ से हुआ? यहाँ वेदान्त ने भी हाथ खड़े कर दिये।

ईश्वर को जानने के लिए और ईश्वर के बारे में जानने के लिए चारों वेदों ने हाथ खड़े कर दिये और **'नेति'** शब्द पर सहमति कर ली। **'दर्शन'** शुरू हुआ जिसका नाम था **'वेदान्त'** वह भी हार गया। लेकिन जो महामानव घरों को छोड़कर सत्य जानने के लिये बाहर निकले हुए थे, वे नहीं हारे। वे कृत-संकल्प थे कि हमने ईश्वर को जानना ही है। अब प्रेम व भक्ति का मार्ग आया और प्रेम के लिए कोई नाम व रूप चाहिए। ईश्वर सर्वत्र विराजमान हैं, तो उन्होंने ईश्वर को किसी भी नाम और रूप में मान लिया। किसी को पक्षी बहुत अच्छे लगते हैं तो कहा गरुड़ भगवान मान लो। दूसरे को नदियाँ अच्छी लगती हैं तो 'गंगा मैया' मान लो, 'यमुना मैया' मान लो। किसी ने कहा मुझे पेड़ अच्छे लगते हैं, तो कहा 'पीपल नारायण' मान लो। किसी ने कहा मुझे पत्थर अच्छे लगते हैं तो बोले 'शिवलिंग' मान लो। किसी ने कहा मुझे ग्रह-नक्षत्र अच्छे लगते हैं, तो 'सूर्य' भगवान मान लो, 'चन्द्र' भगवान मान लो। नाम और रूप में आप भगवान को मान लीजिये। यहाँ पर आप लोगों के मस्तिष्क में जो प्रश्न उठ रहे हैं वे मैं जानता हूँ, कि क्या ईश्वर को नाम और रूप में मानना ज़रूरी है?

आज मैं आपको एक बात स्पष्ट करना चाहता हूँ कि **यदि आप निराकार ब्रह्म की उपासना करते हैं, तो उसके लिए आपको भी निराकार होना अति आवश्यक है।** जो स्वयं निराकार नहीं हो सकता, वह निराकार की उपासना नहीं कर सकता। निराकार की उपासना सम्भव है लेकिन बड़ी कठिन है। यदि आप निराकार ब्रह्म की उपासना करना चाहते हैं तो आपको अपने नाम और रूप से परे होना पड़ेगा। प्रश्न उठता है कि आपका निराकार रूप क्या है? 'प्रथम' जब आप सो रहे होते हैं तो आप स्वयं में निराकार होते हैं। आप होते हैं, लेकिन आपका नाम व रूप उस समय नहीं होता। सोये हुए व्यक्ति का कोई कर्त्तव्य नहीं होता, सोया हुआ व्यक्ति कभी घड़ी नहीं देखता। उठकर देखता है, कि मैं इतने घंटे सोया। सोये हुए व्यक्ति को समय की कोई गणना नहीं होती। उसका कोई धर्म

नहीं होता, उसका कोई कर्म नहीं होता। उसको स्थान का ज्ञान नहीं होता। काल का पता नहीं होता। आप उस वक्त होते हैं, लेकिन आपका नाम और रूप नहीं होता। अगर आप जागृति में अपने उस स्वरूप में विचर सकें, तब आप निराकार ब्रह्म की उपासना कर सकते हैं, नहीं तो नहीं कर सकते। **ईश्वर का नाम और रूप में ध्यान करिये। आपके लिये यह सरल उपाय रहेगा। ईश्वर को नाम और रूप में मानिये।** अध्यात्म समुद्र है। धर्म पवित्र नदियाँ हैं। नदियाँ जाकर समुद्र में मिल जाती हैं। समुद्र में मिलने के पश्चात वे अपनी पहचान खो देती हैं। गंगा, गंगा नहीं रहती व यमुना, यमुना नहीं रहती और सरस्वती, सरस्वती नहीं रहती। इसलिए आध्यात्मिक जगत सागर है। विभिन्न धर्म हमें अध्यात्म सागर की ओर ले जाने के लिए हैं।

भक्ति-मार्ग में ईश्वर को किसी भी नाम और रूप में मानकर उसके साथ प्रेम करिये। लेकिन इस भक्ति में उतरने के लिए बहुत बड़ी औपचारिकता है, वह है कि आपको एक ऐसी अवस्था में आना पड़ता है जिसका नाम है **सच्चखण्ड**। आपने सुना होगा कि सच्चखण्ड वह मानसिक स्थिति है जहाँ पर आपको अपने कर्म, धर्म, ज्ञान, यज्ञ, दान, पुण्य, हवन आदि सब पुरुषार्थ कर्मों का, यहाँ तक कि समर्पण का भी समर्पण करना पड़ता है। जब तक आपके मन में इन सबका लेश-मात्र भी अभिमान है तब तक आपको सच्चखण्ड में प्रवेश नहीं मिलता। इस प्रकार भक्ति का वरदान मिलने पर भी ईश्वर की एक झलक पाना बड़ा कठिन है। यह मात्र कृपा-साध्य है, कर्म-साध्य नहीं :—

''सबकी साकी पे नज़र हो यह ज़रूरी है मगर
सबपे साकी की नज़र हो यह ज़रूरी तो नहीं।''

पता नहीं कब किसी को उसकी एक झलक मिल जाये। उसकी झलक पाने के लिये भक्तों ने एक विचार-धारा अपनाई, जो है तो आसान लेकिन अनुसरण करना बड़ा मुश्किल है, वह है—**'सम्बन्धवाद'। जब ईश्वर से सम्बन्ध हो जाता है, तो उससे 'मोह' हो जाता है।** जिसको यह मोह हो जाये उसके लिए दुनिया की अहमियत समाप्त हो जाती है।

ईश्वरीय-मोह बहुत दुर्लभ है। सम्बन्ध के साथ मोह हो जाता है और वह अपने इष्ट के बिना जी भी नहीं सकते और इष्ट के बिना मर भी नहीं सकते। पहले ईश्वर की मान्यता, ईश्वर की नाम और रूप में मान्यता और उसके बाद उसका प्रेम, प्रेम के साथ ईश्वर से सम्बन्ध। जब ईश्वर के साथ किसी का सम्बन्ध हो जाता है ईश्वर भी उस सम्बन्ध को स्वीकार कर लेता है तो उसके बाद कहने सुनने की कोई बात नहीं रह जाती। यह निर्वचनीय पद है। तो उसकी पहचान क्या है? ईश्वरीय-सत्ता के छः गुण हैं—**अति सौंदर्यवान, ज्ञानवान, ऐश्वर्यवान, सशक्त, ख्यातिवान एवं त्यागवान।** जिनको ईश्वर से मोह हो जाता है और जिनका अधिकतर समय अपने इष्ट के साथ बीतता है उनमें इन छः गुणों का कुछ न कुछ अंश अवश्य आ जाता है। यदि किसी में इन छः गुणों में से कोई गुण भी नहीं आया तो समझो वह कृपापात्र नहीं है। उसका उठना-बैठना ईश्वर के साथ नहीं है। यह प्रथम पहचान है उपासकों की। जिन पति-पत्नी में बहुत प्रेम हो तो कुछ वर्षों बाद उनकी शक्ल मिलने लगती है, बहिन-भाई लगने लगते हैं। तो जो इष्ट-उपासक होते हैं, कुछ वर्षों के बाद उनके मुखारविन्द पर उनके इष्ट की झलक आ जाती है। इसके अतिरिक्त जहाँ आशिकी होती है, जहाँ मोह होता है वहाँ से कुछ लेने की इच्छा कभी नहीं होती। जिस व्यक्ति से आपको बहुत प्रेम हो, वह जब कभी आपके सम्मुख आता है तो आपको उसे भी कुछ देने की इच्छा होती है। इसी प्रकार कभी-कभी जब ईश्वर की झलक आती है तो उपासक अपने इष्ट को भी कुछ देना चाहते हैं। इसे निष्काम प्रेम कहते हैं।

ऐसे निष्काम उपासक को ईश्वर स्वतः अपनी पाँच विभूतियाँ दे देते हैं। पहला **सुन्दर स्वास्थ्य**, दूसरा सुन्दर स्वास्थ्य के साथ **सुन्दर धन**, क्योंकि धन भी बहुत आवश्यक चीज़ है। यदि किसी गृहस्थी के पास धन नहीं है तो वह गृहस्थ निस्तेज है। तीसरा है **ईश्वरीय भक्ति**, जो दुर्लभ संयोग है। धन की शक्ति की तो एक सीमा है लेकिन जब ईश्वर-भक्ति की शक्ति खेलने लगती है तो अच्छे भले व्यक्ति में अहम् आ जाता है क्योंकि जो उसने

सोचना है वह होकर रहेगा। ईश्वर अपने भक्त के लिये विधि का विधान तक बदल देते हैं। संत की वाणी को सत्य धारण करता है, क्योंकि संत की वाणी सत्य को धारण करती है, कुछ भी क्यों न हो? चौथा संयोग है **विनम्रता**। भक्ति के साथ विनम्रता होना आवश्यक है। राजा, अग्नि, योगी, जल इनकी उल्टी रीत। इनके बहुत करीब नहीं जाना चाहिए। पाँचवाँ संयोग है **सत्संग**, जिसको सत्संग मिला है, तो समझो उस पर माता-पिता की अति कृपा है। यदि माता-पिता की कृपा नहीं होगी तो उसको कभी सत्संग नहीं मिलेगा। अतः जो ईश्वर के सम्बन्धी होते हैं, वो इन पाँच विभूतियों से विभूषित होते हैं।

मानव में अक्सर पाँच विकार बताये गये हैं—**काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार**। परन्तु ईश्वरीय सम्बन्धियों में ये पाँचों विकार दिव्य-उत्प्रेरक बन जाते हैं, जिनके द्वारा वे ईश्वर के साथ सीधा सम्पर्क कर सकते हैं। प्रभु! मुझे महाकामी बना दो! मुझे इतना पूर्णकाम बना दो कि कोई कामना ही न रहे। मेरी कामनाओं का अंत हो जाये। हे पूर्णकाम! मुझे घोर कामी बना दो, कि मैं इन्द्रियों से अतीन्द्रिय आनन्द की ओर चला जाऊँ। महाक्रोधी बना दो, कि तुम्हारे और मेरे बीच में कोई आ न सके! उपासक क्रोध द्वारा प्रलोभनों को हटा देता है। मुझे महालोभी बना दो ताकि प्रत्येक श्वास के साथ मैं आपका नाम जपता रहूँ, बिना लोभ के आप नाम-जाप नहीं कर सकते। नाम-जाप को बढ़ाने के लिए आपको लोभी होना बड़ा ज़रूरी है। महामोही बना दो मुझे, कि तेरे बिना मैं जी भी न सकूँ और तेरे बिना मर भी न सकूँ। हे प्रभु! मेरा कर्मक्षेत्र तुम से तुम तक हो! कर्म क्या हो? सदा तुम्हारी ही उँगुली थामे रखना और ज्ञान यह कि तुम ही मेरे माता-पिता हो, तुम और बस तुम ही मेरे हो:—

''आप ही मोरे नयनवा, पलक ढाँप तोहे लूँ,
ना मैं देखूँ और को, ना तोहे देखन दूँ।''

मेरे नयनों में बस जाओ, मैं नहीं सहन कर सकता कि तुम किसी और को देखो। न मैं किसी को देखूँ, न मैं तुम्हें देखने दूँ। अगर मैं देखूँ या मैं तुम्हें देखूँ या स्वयं को देखूँ, मुझे तेरे सिवाय कोई नज़र न आए:—

''पड़ा रहने दो अपने दर पर मुझको क्यों उठाते हो?
मेरी किस्मत संवरती है तुम्हारा क्या बिगड़ता है?''

अरे! जन्म-जन्म मैं न जाने क्या-क्या करता रहा हूँ माधो! अब मैं गिर पड़ा हूँ तुम्हारे दर पर! मुझे क्यों उठाते हो?

''मेरे टूटे हुए पाये तलब का मुझपे एहसाँ है,
कि तेरे दर से उठ कर अब कहीं जाया नहीं जाता।''

मेरे पैर टूट गये हैं। अब मैं तेरे दर से उठकर कहीं जा नहीं सकता। जब उपासक को ईश्वर से मोह हो जाता है, तो वह मोक्ष का अधिकारी हो जाता है। सांसारिक मान्यताओं की समाप्ति ही मोक्ष है।

सारा संसार हमारी मान्यताओं पर आधारित है, कि यह मेरा भाई है, यह मेरी बहन है, यह मेरी माँ है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरा घर है, मेरी डिग्री है, मेरा पद है, आदि-आदि। जैसे-जैसे हमारी बुद्धि विकसित होती गई हम सांसारिक मान्यताओं में फँसते गए, जब हम किसी भी प्राप्ति पर अपना अधिकार कर लेते हैं तो वह वस्तु हमारे लिए कष्टदायी बन जाती है। अगर संसार का आनन्द लेना है तो आप वस्तुओं पर अपना अधिकार छोड़ दीजिये, क्योंकि आपका अपना कुछ भी नहीं है, आपके लिए है। देह मेरे लिए है, संसार मेरे लिए है, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी के सातों तल मेरे लिए हैं। जहाँ मेरे लिए का भाव होगा, वहाँ वस्तुएँ आपको भोग भी देंगी। जहाँ यह भाव होगा कि यह चीज़ मेरी है, वह चीज़ आपके भय का कारण बन जायेगी। सौन्दर्य का भय, संतान का भय, पद का भय, जितनी भी भौतिक वस्तुएँ हैं, सारी भय का कारण इसलिए बनती हैं क्योंकि हम इन पर अधिकार कर लेते हैं, कि यह मेरी है। भयभीत व्यक्ति कभी भोग कर ही नहीं सकता, **क्योंकि भय और भोग कभी एक मंच पर खड़े नहीं हो सकते।**

ईश्वरीय सम्बन्ध से उस व्यक्ति का दिव्य व्यक्तित्व जाग्रत हो जाता है। आप हमसे सहमत होंगे कि एक व्यक्ति के अंदर कई व्यक्तित्व होते हैं। कोई व्यक्ति जितना विकसित होता है उसके अंदर उतने ही व्यक्तित्व जाग्रत हो जाते हैं। किसी पूर्ण विकसित मानव में अधिक से

अधिक सात व्यक्तित्व होते हैं। जिसके अंदर सात से अधिक व्यक्तित्व होते हैं, (सात से दस तक) वे या तो दैवीय पुरुष होते हैं या राक्षस होते हैं। रावण को कहा है दशानन अर्थात् उसके दस व्यक्तित्व थे। जिनमें दस से अधिक व्यक्तित्व होते हैं वे ईश्वरीय अवतार होते हैं। भगवान कृष्ण में 16 व्यक्तित्व थे, भगवान राम में 14, माँ भगवती के 108 व्यक्तित्व हैं, और भगवान शंकर के 1008। संसार में जितने भी व्यक्तित्व हैं वो सब ईश्वर के हैं। तो ईश्वर-सत्ता जब माया कोटि में आती है तो बहुत से व्यक्तित्वों से युक्त होती है। भगवान कृष्ण इधर गोपियों के साथ रास रचा रहे हैं और उधर गीता का उपदेश दे रहे हैं। हनुमान जी को देखिये **''सूक्ष्म रूप धरि सियहिं दिखावा, विकट रूप धरि लंक जरावा,' 'भीम रूप धरि असुर संहारे,' 'मसक समान रूप कपि धरि,'** जैसा मौका देखते हैं, वैसा शरीर धारण कर लेते हैं। हनुमान जी शिव-शक्ति का अवतार हैं।

इस प्रकार ईश्वर से सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम उपासक, ईश्वर के छः दिव्य गुणों, पाँच दुर्लभ विभूतियों, पाँच दिव्य उत्प्रेरकों एवं दिव्य व्यक्तित्व से विभूषित होकर अति आनन्दमय जीवन बिताते हुए जीवन-काल में ही मोक्ष के लिए अधिकारी हो जाते हैं, जीवन-मुक्त हो जाते हैं।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(7 फरवरी, 1999)

उत्कृष्ट शिक्षा

आपके सम्मुख इष्ट-कृपा एवं प्रेरणा से शिक्षा की बहुत स्पष्ट परिभाषा रख रहा हूँ। यहाँ बहुत उच्चकोटि के शिक्षक और शिक्षार्थी बैठे हैं। विज्ञान, दर्शन और शिक्षा का स्त्रोत भारत ही हैं। बहुत भ्रम है कि शिक्षा क्या है, दर्शन क्या है और ज्ञान क्या है? इनके विभाजक बिन्दु स्पष्ट होने चाहिये।

मैं पहले **शिक्षा** की परिभाषा दूँगा। कृपया ध्यान दीजिये, ***''शिक्षा वह ज्ञान है, जो मानव व मानव-देह द्वारा अधिगृहीत सम्पूर्ण विश्व के विभिन्न आयामों के विषय में है। शिक्षा मानव-बुद्धि द्वारा उत्पादित, मानव-बुद्धि द्वारा प्रकट, मानव-बुद्धि द्वारा विकसित, मानव-बुद्धि द्वारा प्रमाणित, संशोधित एवं नवीनीकृत ज्ञान है उसका सदुपयोग या दुरुपयोग भी मानव-बुद्धि पर ही निर्भर करता है।''***

"Education is that knowledge which is confined to the human being and it's total world, perceived by the human intellect, produce of human intellect, manifest of human intellect, developed by human intellect, verified by human intellect, modified by human intellect, renewed,used or misused by human intellect." **यह सम्पूर्ण परिभाषा है शिक्षा की, जो पूरे विश्व में कोई नहीं जानता। यह हिमालय की कन्दराओं ने मुझे दी है। जो विश्व, मानव-देह द्वारा अधिगृहीत है, उसके बारे में जो ज्ञान है, उसका नाम है–'शिक्षा'।**

दर्शन क्या है? दर्शन वह ज्ञान है, जो मानव-बुद्धि से परे है। जो

मानव-बुद्धि का उत्पाद नहीं है। जिसको हमारे मनीषियों और साधकों ने बुद्धि को स्थिर करने के बाद समाधिस्थ होकर पाया। समाधि जहाँ **'धि'** अर्थात् बुद्धि सम हो जाती है। उसके बाद जो ज्ञान पाया, उसका नाम है—**'दर्शन'।** 'दर्शन' न तो मानव-बुद्धि का उत्पाद है और न ही मानव-बुद्धि द्वारा विकसित, संशोधित एवं नवीनीकृत हो सकता है। बुद्धि केवल उसे प्रमाणित कर सकती है और साधकों, योगियों एवं शिक्षकों द्वारा उसका प्रयोग मानव-जीवन को अत्यधिक गुणात्मक बनाने के लिये किया जा सकता है। अत्यधिक गुणात्मक शिक्षा को पाने के लिए शिक्षक चाहिये और दर्शन को पाने के लिए सद्‌गुरु चाहिये, शिक्षक नहीं। कृपया एकाग्र करिये, यह नई बातें बता रहा हूँ। दर्शन को जानने के लिए सद्‌गुरु चाहिये। जहाँ दर्शन समाप्त हो जाता है, वहाँ दोनों सद्‌गुरु और सद्‌शिष्य लीन हो जाते हैं। सद्‌गुरु, सद्‌गुरु नहीं रहता। सद्‌शिष्य, सद्‌शिष्य नहीं रहता। उसके बाद शुरू होता है **'आत्मज्ञान'। जिसके लिए न कोई शिक्षक चाहिये, न कोई सद्‌गुरु चाहिये। स्वयं परमात्मा चाहिये**ः—

''सोइ जानइ जेहि देहु जनाई, जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।''

वहाँ जो चाहिये उसे आप कोई संज्ञा ही नहीं दे सकते। जब इंसान उस सत्य को जानने के लिए पागल हो जाता है, पागल बहुत छोटा शब्द है। जब उसमें जुनून पैदा हो जाता है और अपना सर्वस्व त्याग देता है,उसके बाद स्वयं परमात्मा किसी विरले को कृपा-वश अपना स्वरूप अवगत करवा देता हैः—

''सबकी साकी पे नज़र हो यह ज़रूरी है मगर,
सबपे साकी की नज़र हो, यह ज़रूरी तो नहीं।''

यह कृपा-साध्य है, कर्म-साध्य नहीं है। किसी-किसी पर जब उसकी नज़रे इनायत हो जाये, उसकी मेहरबानी हो जाये, उसको वह अपना स्वरूप स्वयं आभासित करवा देता है; जिसको न बुद्धि प्रकट कर सकती है और न प्रमाणित ही कर सकती है। अनिवर्चनीय पद है वह—जिसको बोला नहीं जा सकता, बस अनुभव किया जा सकता हैः—

"तुम वो बात क्यों पूछते हो, जो बताने के काबिल नहीं है।"

शिक्षा और शिक्षक तो बहुत छोटी सी चीज़ है, हम भारतीय संस्कृति के पोषक कहीं भी जायें, हम सद्गुरु हैं, हमने विश्व को वेदान्त-दर्शन दिया है, हम आत्मज्ञानी भी हैं। यह आत्मज्ञान भारत का ही उत्पाद है। इसलिए **आज भी हम जगद्गुरु हैं, हम जगद्गुरु थे और हम ही जगद्गुरु रहेंगे।** भूल जाइये, हमारे ऊपर किसी ने शासन किया। हमारे ऊपर कोई शासन कर ही नहीं सकता, क्योंकि हम जगद्गुरु हैं। हम आत्मज्ञान से ओत-प्रोत हैं। हमने तो उनसे कुछ काम लेने के लिए उन्हें बुलाया था, कोई 200 साल रहा, कोई 500 साल रहा और चले गये। दैवीय अधिनियमानुसार हमारे ऊपर कोई शासन कर ही नहीं सकता। मत मनाया करिये हर साल यह स्वतन्त्रता-दिवस। हम तो हमेशा से आज़ाद हैं। आत्मज्ञानी सदैव स्वतन्त्र होता है। वह कभी जन्मता और मरता नहीं। "**चिदानंदरूपं शिवोऽहम् शिवोऽहम्**"। अब यहाँ पर बहुत महत्त्वपूर्ण बात है, जिस पर मैं आपकी एकाग्रता चाहूँगा। शिक्षा की परिभाषा में कहा कि मानव-देह द्वारा अधिगृहीत जगत, दर्शन की परिभाषा में कहा मानव-देह द्वारा दृश्यमान जगत; देखो ! इन दोनों में सूक्ष्म विभाजक बिन्दु है, अंतर है। **शिक्षा कहती है कि बाहर विश्व है और दर्शन कहता है कि विश्व भीतर से बाहर आया है।** दर्शन कहता है कि जगत बाहर है ही नहीं। जगत भीतर से बाहर आया है और उसका ज्ञान है दर्शन, जिसको मानव-बुद्धि नहीं पकड़ सकती, बुद्धि को स्थिर करना पड़ता है। आज बहुत अद्भुत रहस्य आपके सामने रख रहा हूँ।

मानव-बुद्धि, मानव के अपने इस्तेमाल के लिये थी ही नहीं। ईश्वर ने मानव को बुद्धि अपने इस्तेमाल के लिए दी थी। लेकिन मानव को धैर्य नहीं था। यह होश सम्भालते ही बुद्धि इस्तेमाल करने लगा और फँस गया। **'मानव, बुद्धि का प्रयोग स्वयं न करे' यह ईश्वरीय निर्देश था।** बहुत नई बात बता रहा हूँ। इसके मैं पाँच-छः उदाहरण दूँगा, बुद्धि की उत्कृष्टतम सीमाओं से इन प्रमाणों को सुनिये। बच्चा माँ के गर्भ में होता है और गर्भ में

मानव-मस्तिष्क का निर्माण तीसरे महीने में शुरू होता है, तो उस गर्भ में आये हुए बालक की नींव किसने रखी? अमुक-अमुक माता-पिता के अंश से, अमुक-अमुक परिस्थितियों और देशकाल के अनुसार उसकी नींव किस बुद्धि ने रखी? जबकि मानव की अपनी बुद्धि बननी ही शुरू नहीं हुई थी, यह **पहला** प्रमाण है। **दूसरे** प्रमाण पर ध्यान दीजिये, जब मानव-शिशु उत्पन्न होता है और उसकी बुद्धि का विकास ही नहीं होता तथा वह अपने माता-पिता को नहीं पहचानता, उस समय उसकी सबसे ज्यादा देखभाल होती है। आप सब मुझ से सहमत होंगे। अगर आप अपने जीवन-काल का पूर्वावलोकन करें, आपको सबसे ज्यादा सुविधाँएँ कब मिली होंगी? जब आप अपने माता-पिता तक को नहीं पहचानते थे। तो इसका अर्थ यह हुआ—सुविधाओं के लिए बुद्धि की ज़रूरत नहीं है। बात हँसने की भी है और बात बहुत गम्भीर होने की भी है। जब हम बुद्धि का प्रयोग करते हैं तो प्राप्तियाँ हो जाती हैं। हेरा-फेरी कर लेते हैं हम, किसी का धन दबा लेते हैं, रिश्वत देकर पद ले लेते हैं, प्राप्ति हो जाती है, लेकिन प्राप्ति के बाद उसके भोग का अधिकार मानव-बुद्धि के अधिकार में नहीं है। कोर्ट में जाइये, केस जीत जायेंगे, आपको मकान मिल जायेगा, चाबी मिल जायेगी लेकिन क्या उस मकान में आप आनन्दपूर्वक रह भी सकते हैं? इस धरा पर कोई कोर्ट नहीं है जो उस स्थान को आनन्दपूर्वक भोगने का अधिकार आपको दे सके। हो सकता है वह मकान आपके लिए हौवा बन जाये। हो सकता है आजीवन आप उस स्थान पर पाँव भी न रख सकें। संतान प्राप्त हो सकती है, डिग्री प्राप्त हो सकती है, धन प्राप्त हो सकता है, लेकिन उसके भोग की कोई गारन्टी नहीं दी जा सकती। यह बुद्धि केवल प्राप्त कर लेगी, लेकिन प्राप्ति के बाद भोग का और आनन्दपूर्वक भोग का अधिकार मानव-बुद्धि नहीं दे सकती। यह उसके अधिकार में नहीं है। भूल जाइये इसे ! यह परम सत्य है जो किसी भी किताब में नहीं लिखा है। मानव-बुद्धि ईश्वर के प्रयोग के लिये थी, आपके अपने प्रयोग के लिए नहीं थी क्योंकि जब आप अपने माता-पिता को पहचानते भी नहीं थे तब आपने अधिकतम सुखद जीवन जिया।

तीसरे आप अपने अतीत पर कभी विचार करिये, सुबह उठकर, जीवन में जो मुख्य घटनाएँ होती हैं वे आपकी बुद्धि से घटित नहीं होती हैं। आप जा कहीं और रहे होते हैं, पहुँच कहीं और जाते हैं। मिलना किसी को होता है, मिल कोई और जाता है। करना कुछ और चाहते हैं, हो कुछ और जाता है। कोई ऐसी शक्ति है जो आपकी बुद्धि की सलाह नहीं लेती, जिसकी अपनी योजनाएँ होती हैं। **चौथे** कोई भी व्यक्ति निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि अगला साँस उसके हाथ में है। अगला साँस हमारे हाथ में नहीं है तो अगले साँस में आने वाला विचार और कर्म हमारा कैसे हो सकता है? किसी और के हाथ में नियन्त्रण है। वह चाहे तो हम साँस लें, वह चाहे तो हम साँस न लें। हम योजनाएँ बनाने वाले होते कौन हैं? जिसका अगला साँस अपने हाथ में नहीं है वह अपनी बुद्धि के बल पर योजना कैसे क्रियान्वित कर सकता है? अगर वह प्रयत्न करता है तो उसके सामने समर्पित रहना ज़रूरी है, जिसके हाथ में साँस है। अगर आप कोई योजना बनायेंगे तो आप फँस जायेंगे, मार खायेंगे, दुःखों से घिर जायेंगे, तनावित हो जायेंगे।

यह तनाव क्या है? एक आम आदमी की भाषा में इसका वर्णन करूँगा। ईश्वर ने इस सम्पूर्ण सृष्टि को बनाया है। उसकी एक योजनानुसार सारा जीवन पूर्णतः कम्प्यूटराईज़्ड है। आपको प्रतीक्षा करते हुए देखना पड़ता है, कि ईश्वर-इच्छा क्या है? तनाव क्यों होता है? वो ईश्वर, हाथी के रूप में जीवन-डोर अपनी ओर खींच रहा है और आप चूहा बनकर इसको अपनी ओर खींच रहे हैं। **यह है तनाव।** अरे! हाथी की पीठ पर चढ़ जाइये और आनन्द लीजिये। बच्चों का कैरियर हम पहले बनाते हैं और बच्चा गर्भ में बाद में आता है। मैंने विदेशों में इसी बात पर तलाक होते देखे हैं। एक कहता है, मैं बच्चे को इंजीनियर बनाऊँगा, दूसरा कहता है मैं डॉक्टर बनाऊँगा। कैरियर बनाना शुरू कर देते हैं हम। जबकि हमारा अगला साँस हमारे हाथ में नहीं है। मैं यह उदाहरण पहले दे चुका हूँ। मैं कई बार सोचा करता था जब हम किसी को मूर्ख कहते हैं, तो उसे गधा कहते

हैं। बड़ा विचार किया कि मूर्ख को हम बैल क्यों नहीं कहते, घोड़ा क्यों नहीं कहते, गधा ही क्यों कहते हैं? बहुत शोध के बाद प्रभु-कृपा से गधे में एक खासियत मालूम चली। अगर विश्व में सबसे ज्यादा कैरियर ओरिएन्टिड कोई है तो **गधा है।** मत बनाइये अपने बच्चों को कैरियर ओरिएन्टिड। खुला छोड़ दीजिये। भगवान ने उसको भेजा है। ईश्वर ने क्या रचना की है! आप उसका निरीक्षण करिये। न कि, बच्चे को I.A.S बनायेंगे, डॉक्टर बनायेंगे, एम. बी. ए. बनायेंगे। अरे! उसका कैरियर क्यों खराब कर रहे हो? भगवान ने उसे बनाया है आप उस पर अपनी योजनाएँ थोप कर दैवीय दृष्टि में अपराध करते हैं। **पहला,** हम पृथ्वी पर स्वयं नहीं आये हैं, हम पृथ्वी पर लाये गये हैं। अगर हम खुद आते तो अपना पैदा होने का दिन, तिथि निकाल कर आते। पहले ही पैदा होने की जगह, माँ-बाप चुन कर आते। अगले जन्म के लिए इसी जन्म में आरक्षित करवा लेते। कोई शक्ति है जो हमको लेकर आई है। किसी से पूछिये कि भाईसाहब! आपका जन्मदिन कब है, आप दो-चार दिन आगे पीछे क्यों नहीं पैदा हुए? तो क्या कहेगा? कि मुझे पता नहीं। इसी माँ-बाप से क्यों पैदा हुए, आपको कोई और नहीं मिला? मुझे पता नहीं। आप इस गाँव में क्यों पैदा हुए, किसी बड़े शहर में पैदा होते? मुझे पता नहीं। आप इस व्यवसाय में क्यों हैं? मुझे पता नहीं। इस स्त्री से, इस आदमी से आपकी शादी क्यों हुई? मुझे पता नहीं। आपके बच्चे अलग-अलग प्रतिभाओं के, अलग-अलग विचारों के क्यों हुए? मुझे पता नहीं। आपको कब मरना है, कहाँ मरना है, कैसे मरना है? मुझे पता नहीं। फिर आपको पता क्या है? आपको कुछ भी पता नहीं और आप सर्वज्ञ होने का आडम्बर करते हैं। अतः हम पृथ्वी पर लाये गये हैं और बिना नोटिस दिये, जो हमें पृथ्वी पर लाया है बाहर भी निकाल देगा; उस पर हम कोई केस भी नहीं कर सकते।

दूसरे, हमारा कोई कर्त्तव्य नहीं है। कोई कर्म नहीं है। मेरी बातें उल्टी लग सकतीं हैं परन्तु अपने आपसे पूछो बुद्धिजीवियो! जो कर्म आपके बिना भी हो सकता है वह आपका कर्म कैसे हो सकता है और हो सकता है वह

आपके बिना ज्यादा अच्छा हो। क्योंकि यदि आप यह सोचते हैं कि मेरे बिना नहीं हो सकता तो आपके बिना ज्यादा अच्छा होगा ही। अतः जो काम आपके बिना भी हो सकता है वह **आपका** कर्म आपका कर्त्तव्य कैसे हो सकता है? एक पागल ने पेड़ को पकड़ा **और चिल्लाने लगा—मुझे पेड़ ने पकड़ लिया है, मुझे छुड़ाओ !** हम सब उतने ही मूर्ख हैं। यहाँ पर सन्तों की सभा है, संत सत्य बोलता है और वह बोलते समय कभी नहीं घबराता। अरे ! आप अभी मर जाओ दुनिया में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। यहाँ पर एक प्रश्न उठता है कि नौ महीने सात दिन में इतनी उत्कृष्टतम मानव-देह माँ के पेट में बनती है। एक सैल से बड़े-बड़े सिस्टम बन जाते हैं और पूर्णस्वचलित और वातानुकूलित देह बनकर तैयार हो जाती है। बाहर का तापमान कितना भी हो इसका तापमान 98.4 ही रहेगा। पूर्णस्वचलित, बैठे-बैठे पैर पर चीटीं काट जाये, आपका हाथ वहीं चला जायेगा। तो ईश्वर ने जो इतनी उत्कृष्टतम मानव-देह बनाई उसके पीछे उसका कोई अर्थ अवश्य होगा।

बुद्धिजीवियो ! इस पाश्चात्यानुगमन ने हमारी बुद्धि को जंग लगा दिया है। मैं अंग्रेज़ों से नहीं, अंग्रेज़ियत से नफरत करता हूँ कि हम तो यह भी भूल गये कि हमारी परम्पराएँ क्या थीं? हमें अपनी बुद्धि से यह भी मालूम नहीं है कि मैं पृथ्वी पर क्यों आया हूँ? हम सब समय बर्बाद कर रहे हैं और हम समझते हैं कि हम बहुत व्यस्त हैं। हम वह कर रहे हैं जो हमारे बिना भी हो सकता है। फिर हमारा कर्त्तव्य क्या है ? पृथ्वी पर ईश्वर ने मुझे क्यों भेजा है; क्या हमने कभी जानने की कोशिश की? जिस दिन आपको यह मालूम चल जायेगा कि आपको ईश्वर ने पृथ्वी पर क्यों भेजा है, उसी क्षण आपकी समस्त शक्तियाँ हज़ारों गुणा बढ़ जायेंगी।

हमें तो यह भी मालूम नहीं कि हमारी कोई शक्तियाँ भी हैं? एक गिलास का एक निश्चित आयतन है, एक बूँद जल इसमें अतिरिक्त भर देंगे तो पानी बाहर निकल जायेगा। अरे ! हमारी बुद्धि की एक निश्चित क्षमता है। उससे ज्यादा हम सोच नहीं सकते। हमारी देह की, हमारी शारीरिक

शक्ति की एक सीमा है। उससे ज्यादा हम शारीरिक शक्ति इस्तेमाल नहीं कर सकते। **बुद्धि की हम डींग हाँकते हैं अगर आप इसको गुणात्मक बनाना चाहते हैं, तो इस गिलास रूपी बुद्धि को समुद्र रूपी ईश्वर में समाहित कर दीजिये।** शिक्षक जब क्लास शुरू करें तो एक बात अपने विद्यार्थियों से दोहरवायें कि **हे प्रभु ! शिक्षा, शिक्षक, शिक्षार्थी, शिक्षाफल तुम ही हो !** अपनी डिग्रियों को, अपनी प्रतिभाओं को उस ईश्वर से हस्ताक्षर करवा लीजिये, पढ़ाने से पहले। एक बात याद रखना कि हम बड़े खुश होते हैं, हमारे स्कूल का नतीजा बड़ा अच्छा रहा, 95 प्रतिशत बच्चे 80 प्रतिशत नम्बर लेकर गये। अरे ! यह दुख की बात है। अगर आप नतीजा अच्छा चाहते हैं तो अनुत्तीर्ण विद्यार्थियों का नाम लीजिये। अगर अधिक बच्चे फेल हुए हैं तो इसका मतलब आपका स्कूल सबसे ऊपर है। हँसने की बात नहीं है। किसी ने बुद्धि का इस्तेमाल ही नहीं किया। अरे ! पास होने वाले बच्चे तो साधारण हैं, साधारण बच्चे पास होते हैं। उनमें से कोई C.A. कर लेगा, I.A.S कर लेगा, कोई छोले-भठूरे की दुकान कर लेगा, कुछ न कुछ कर लेगा, लेकिन वह इंसान कैसा है? उसकी शिक्षा, शैक्षणिक नम्बर तो दे देगी, उसकी नैतिकता क्या है? हो सकता है वह बहुत बड़ा डाकू बन जाये, नर्सिंग होम खोलकर वह गरीबों को लूटने लग जाये। इसका मापदंड कहाँ है आपके पास? आज इन डाकुओं ने देश को खा लिया है। सबसे बड़ा सी. ए. कौन है? जो नम्बर दो के पैसे को नम्बर एक बना दे, वही सबसे ज्यादा सुयेग्य सी. ए. है। इसमें खुश होने की बात नहीं है कि हमारे स्कूल ने इतने सी. ए. बना दिये। इतने इंजीनियर बना दिये। अरे ! वे पैसे के लिए देश छोड़कर भाग जाएँगे, पलायन कर जाएँगे और आप देखते रह जायेंगे। माँ-बाप को छोड़ जाएँगे, इनकी डिग्रियाँ बिक जाएँगीं। वे खुद बिक जाएँगे। इनकी कोई नैतिकता नहीं रहेगी।

अपने स्कूल के नतीजे पर खुश होने वालो, क्या मापदंड है आपके पास? आप नम्बरों पर खुश हो रहे हैं। आपको ज़रूर पता होना चाहिये कि **साधारण क्या है और असाधारण क्या है।** अनुत्तीर्ण विद्यार्थियों को बढ़ाइये,

विशेष अध्यापक रखिये ! आपके स्कूल में जितने ज्यादा अनुत्तीर्ण होंगे आपका स्कूल उतना ज्यादा नामी होगा। इतिहास के पन्ने पलटिये बड़े-बड़े राजनेता असफलों में से ही हुए हैं। अनुत्तीर्ण छात्रों पर एकाग्र करिये, विशेष अध्यापक रखिये, संत बुलाइये, अविभावकों की टीम बनाइये। सोचिए ! बच्चा फेल क्यों हुआ, फेल होने का कारण क्या है? क्या फेल इसलिए हुआ कि वह मंद-बुद्धि का था? परमात्मा ने हाथियों, घोड़ों, चींटियों तथा अन्य पशु-पक्षियों को जितनी प्रतिभायें दी है उतनी भी क्या मंद-बुद्धि के बच्चों को नहीं दी होंगी। न जाने वह कितना बड़ा खिलाड़ी बन सकता है, न जाने वह कितना बड़ा कलाकार बन सकता है। आपने जानने की कोशिश ही नहीं की। यदि वह फेल इसलिए हुआ कि उसकी पढ़ाई में रुचि नहीं है तो आपने उसे नालायक क्यों घोषित कर दिया, क्यों अपराध किया आपने? कुछ बच्चे तो आत्महत्या कर लेते हैं जिसके ज़िम्मेदार आप हैं। ऐसे बच्चे आपकी एकाग्रता चाहते हैं कि उसकी रुचि काहे में है? हो सकता है वह बहुत बड़ा संगीतज्ञ बन जाये, नर्तक बन जाये, बहुत बड़ा खिलाड़ी बन जाये, हो सकता है बड़े-बड़े पढ़े-लिखों को वह अपने पास नौकर रख ले। दिल्ली के बड़े-बड़े अरबपति मेरे मरीज़ हैं जिन्होंने दस-दस, बीस-बीस सी. ए. अस्सी-अस्सी चिकित्सक रखे हैं अपने चिकित्सालयों में। खुद पाँचवी फेल हैं, कोई दसवीं फेल है।

तीसरा कारण हो सकता है कि उन अनुत्तीर्ण बच्चों का मनोबल इतना ऊँचा है, कि उनके सम्मुख शिक्षा बहुत तुच्छ है। हो सकता है कोई कृष्ण, संदीपन आश्रम में आ गया है। अरे ! आप उसको नालायक घोषित करके पाप के भागी बन जायेंगे। उसको पहचानिये ! उसका मनोबल, उसका चेतना का स्तर इतना ऊँचा है, कि उसके लिए शिक्षा का कोई महातम ही नहीं है। कभी किसी विद्यार्थी को नालायक घोषित मत करना। सम्भवतः उसके पास ऐसी प्रतिभायें हैं कि वह आपके संस्थान का नाम पूरे विश्व में रोशन कर सकता है। आपको गर्व होना चाहिये अपने अनुत्तीर्ण छात्रों पर, इन्हीं में आपको असाधारण बच्चे मिलेंगे। पास होने वालों में से नहीं मिलेंगे।

अगर आपकी बुद्धि यह सब जानने के लिए सक्षम नहीं है तो उधार ले लीजिये संतों से, परामर्श ले लीजिये भारत के दार्शनिकों से। कृपया उसको समझने की कोशिश करिये। गुरुनानक देव जी महाराज जब किसी चीज़ में रुचि नहीं लेते थे तो उनके पिता ने इनको दुकान खोलकर दी और उन्होंने 'तेरा-तेरा' कहकर लोगों को मुफ्त में सारी दुकान बाँट दी। कोई कुछ भी लेने आया, उसको दे दिया कि, ले जाओ ! सब तेरा ही है। पिता को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने सयानों को बुलाया, जिन्होंने निरीक्षण करके कहा—महाराज आपका लड़का पागल नहीं है और जो यह है वह हम नहीं जानते, वह हमारी समझ के बाहर की बात है।

आपको साधारण व्यक्ति और असाधारण व्यक्ति के अन्तर का ज्ञान होना चाहिये। साधारण व्यक्ति कौन है? **जब कोई व्यक्ति अपनी भौतिक प्राप्तियों से जैसे अपनी खूबसूरती, शारीरिक शक्ति, शैक्षणिक डिग्रियों, योग्यताओं, पद, अपने धन, सम्पत्ति, अपने खूबसूरत बंगले आदि से जाना जाता हो, तो वह साधारण है।** क्यों? क्योंकि यह सब कुछ नाशवान है अतः छिन जायेगा। एक दिन सेवानिवृत्त होंगे आप, प्रेम-पत्र आ जायेगा कि, कृपया अपना ऑफिस खाली कर दीजिये। असाधारण कौन है? असाधारण व्यक्ति वे हैं **जिनकी वजह से उनकी वस्तुएँ जानी जाती हैं।** महात्मा गाँधी की छः आने की टायर की चप्पल दो लाख रुपये में नीलाम हुई क्योंकि वह महात्मा गाँधी की थी। आज उस कुटिया को, उस वृक्ष को जहाँ बैठकर आपने तप किया था लोग नमन करें तो आप असाधारण हैं। भूल जाओ पाश्चात्यानुगमन को। अरे ! आपके बच्चे आपको भूल जाएँगे। अपने माँ-बाप को भूल जाएँगे। अपने देश को भूल जाएँगे, जिन बच्चों पर आप नाज़ करते हैं। ऐसे-ऐसे भी हमने लोग देखे हैं जब उनको शोहरत मिलती है तो अपने आपको भारतीय कहलाने में भी उनको शर्म आने लगती है। क्या आप उन पर नाज़ करते हो? किसको टॉपर कहते हैं आप? उनका मनोबल तो देखिये ! और उनका मनोबल देखने के लिए आपके पास मापदंड क्या है? अतः शिक्षकों एवं अविभावकों को योगियों की तरह

व्यवहार करना होगा। तपस्वी बनना होगा। तभी आप अपने बच्चे में सद्‌बुद्धि की नींव रख सकेंगे, उन्हें असाधारण बना सकेंगे।

प्रत्येक शिक्षा को अत्यधिक गुणात्मक बनाने के लिए कुछ सूत्र हैं। मैं कई बार बताता हूँ कि आयकर के लिए हम बैलैंसशीट बनाते हैं। सम्पूर्ण मानव-जीवन का शेष क्या है? 70 किलो के आदमी को जब विद्युत शव-दहन-केन्द्र में जलाया जाता है तो 1 किलो 600 ग्राम राख बनती है। वही इस जीवन की बैलैंसशीट है। जीवन शून्य से प्रारम्भ होकर शून्य में समाप्त हो जाता है। बड़े-बड़े गणितज्ञ बैठे हैं, जो सवाल शून्य से शुरू हुआ, हमें मालूम है कि उसका जवाब भी शून्य होगा तो बीच का जितना गुणा, भाग, घटा, जोड़ होगा वह शून्य ही तो होगा। मैं सब सी. ए. डिग्री लिए लोगों को बताता हूँ कि जीवन की बैलैंस-शीट मात्र डेढ़ किलो राख है। हमारे भगवान शंकर इसी भस्मी को ओढ़ते हैं और विश्वनाथ हैं। जो मुर्दे की भस्मी धारण करता है, उसे कहा है—**विश्वनाथ।** लक्ष्मीपति हैं—**भगवान विष्णु।** लक्ष्मीपति को कभी आपने बैठे हुए नहीं देखा होगा। वो लेटे रहते हैं और लक्ष्मी चरण दबाती रहती है। जो लक्ष्मीपति हैं, वे आराम करते रहते हैं। एक बार लक्ष्मी जी को निराशा हो गई कि मैं चरण दबाती रहती हूँ और यह मेरी तरफ देखते ही नहीं तो एक दिन उन्होंने पाँव झकझोर कर कहा भगवन ! मैं लक्ष्मी हूँ। बोले, हाँ ! मालूम है। बोली, मैं बहुत सुन्दर हूँ। हाँ ! तुम बहुत सुन्दर हो ! बोली, सारा जगत मेरे पीछे लगा हुआ है भगवन ! बोले, हाँ ! हम जानते हैं। यदि आप जानते हो तो मेरी तरफ क्यों नहीं देखते? भगवान विष्णु बोले, अगर हम तुम्हें देखने लगेंगे तो तुम चरण दबाना बंद कर दोगी और मेरे सिर के पास आकर बैठ जाओगी। इसलिए लगी रहो ! दबाती रहो चरण। लेकिन यहाँ पर बहुत महत्त्वपूर्ण बात है कि विष्णु सहस्त्र फण वाले शेष की शैया के ऊपर लेटे हैं और लक्ष्मी उनके चरण दबा रही हैं।

आप भी पन्द्रह मिनट हर रोज़ शेष-शैया पर लेटें। शेष-शैया मतलब मृत्यु-शैया। अरे ! मरना तो है ही। सभी प्रतीक्षारत हैं। न जाने कब किसका नम्बर आ जाये। अगर प्रतिदिन आप पन्द्रह मिनट यह विचार कर लें कि मैं

मर गया हूँ तो चालीस दिन में लक्ष्मी आपके चरण दबाने लगेगी। बड़ा सरल सा लग रहा है लेकिन इसका अनुसरण करना बड़ा मुश्किल है। 40 दिन के बाद लक्ष्मी आपसे कहेगी कि सर ! मैं आपसे मिलना चाहती हूँ और आपके पास समय नहीं होगा। आप बोलेंगे, बाद में आना, हाँ ! ऐसा ही होगा। यह दर्शन बता रहा हूँ। आपको भाग-दौड़ की ज़रूरत नहीं है। मैं दर्शन के प्रयोग पर बल देना चाहता हूँ। एक बार सुप्रीम कोर्ट के जज राजा जसवन्त सिंह (अब सेवानिवृत हो गये) दिल्ली में हमें मिले। बोले, डा. साहब कुछ बताइये, हम खाना खा रहे थे उस वक्त, हमने कहा हम बतायेंगे तो आप खाना छोड़ देंगे। बोले, नहीं ! आप बताइये हमने राजा साहब के सामने एक सवाल रखा, ध्यान से सुनिये ! मैंने पूछा, एक चोर रात को चोरी करता है। दो मकान एक ही तरह के बने हुए हैं। एक घर में वह घुसता है, चोरी करता है, पकड़ा जाता है। माल बरामद हो जाता है। आपके सामने लाया जाता है और आप उसको 3 – 4 महीने की सज़ा सुना देते हैं। बोले, ठीक ! मैंने कहा यह बताइये जिसके घर में चोरी हुई उसी के घर में चोरी क्यों हुई, पड़ोस के घर में क्यों नहीं हुई ? राजा साहब ने अपनी प्लेट नीचे रख दी और बहुत सोच के उत्तर दिया कि जिस घर में चोरी हुई, शायद उसने कोई गन्दा धन कमाया होगा। हमने कहा बिल्कुल ठीक। वह गरीब चोर सर्दी की रात में अपने बीवी-बच्चों को छोड़ कर निकला रोज़ी-रोटी के लिए और उसने इतना बड़ा जोखिम लेकर किसी का गन्दा धन साफ किया और आपने चोर को सज़ा सुना दी। आपको तो उसे इनाम देना चाहिये था। जज साहब थूक घूटने लग गये। जब आदमी दुविधा में होता है तो थूक घूटने लगता है। शास्त्र ने कहा है **''कर्मनाम् अगाधो गति।''** पुलिस ऑफिसरों को बताइये कि **चोर पकड़ना अर्धसत्य है।** जिसके यहाँ चोरी होती है उसको भी पकड़िये कि उसके यहाँ ही चोरी क्यों हुई ?

आज की दुनिया अर्धसत्य पर चल रही है। इसलिए हम सभी दुविधाओं से घिरे हुए हैं। जहाँ राम आयेगा, वहाँ रावण ज़रूर आयेगा। अगर रावण नहीं आयेगा तो राम को कौन पूछेगा? जहाँ कृष्ण आयेगा वहाँ

दुर्योधन भी आयेगा, कंस भी आयेगा। यह है **पूर्ण सत्य।** यह भारतीय दर्शन है। परिपूरक विधायें चलती हैं। भगवान को एक चोर बनाना पड़ता है तो हज़ारों ऐसे लोग बनाने पड़ते हैं जिनके घर में चोरी हो। वह एक हलवाई बनाता है तो उसे कई ऐसे लोग बनाने पड़ते हैं जो मिठाई के शौकीन हों। जब एक डॉक्टर बनाते हैं भगवान तो हज़ारों बीमार भी बनाते हैं। इसलिए आज बिमारियाँ बढ़ रही हैं क्योंकि डॉक्टर बढ़ रहे हैं। अगर बिमारियाँ समाप्त करना चाहते हैं तो डॉक्टर बनाना बंद कर दीजिये। यह नग्न सत्य है। वेदान्तिक सत्य है। इसे कोई टाल नहीं सकता। इसलिए हमको प्रार्थना करनी है–**''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।''** चिकित्सक को भी प्रार्थना करने का विधान है, यदि चिकित्सक यह प्रार्थना करेगा कि हे प्रभु ! सारे निरोग हों ! तो प्रैक्टिस कैसे चलेगी ? देखिये, आज परिपूरक विधाओं का कमाल जो अपने आपको बहुत अच्छा शिक्षक समझेगा तो उसके घर में कोई मंद-बुद्धि संतान ज़रूर पैदा होगी। अगर किसी ने अपने आपको अच्छा पुलिस अफसर समझा, उसके घर में कोई मुजरिम अवश्य पैदा होगा। अगर किसी ने अपने को बहुत अच्छा डॉक्टर समझा तो उसके घर में ऐसा मरीज़ पैदा होगा जिसको कोई ठीक नहीं कर सकता। यह ईश्वरीय विधान है, दर्शन है। इसलिए अपने आपको कुछ मत समझिये। कुछ मत सोचिये अपने आपको, आप पकड़े जायेंगे, आप सज़ाये आफ्ता हो जायेंगे। बुद्धि का इस्तेमाल करने का अधिकार आपको नहीं है। अगर इसे इस्तेमाल करना है तो ईश्वर के नाम से करिये, नहीं तो आपको सज़ा भुगतनी पड़ेगी। आप छूट नहीं सकते।

जो काम करना है ईश्वर के नाम से करिये। बड़े-बड़े राजनेता बैठे हैं। यह मत समझना कि मेरे बिना जनता कैसे चलेगी ? ईश्वर के नाम पर उनकी सेवा करिये। **तुम करवा रहे हो, तुम कर रहे हो !** फिर जो परिणाम होंगे वे अत्यधिक गुणाात्मक होंगे, नहीं तो नकारात्मक होंगे। आपकी कुर्सी छीनने वाले बहुत बैठे होंगे कि कब यह मरे और मैं ले लूँ ! मैं आपके सम्मुख एक नग्न सत्य और मैं रख रहा हूँ। प्रत्येक जीव जब संसार में आता है तो

उसका एक विशेष मानसिक स्तर होता है। प्रत्येक मानव का एक चेतनता का स्तर होता है। किसी व्यक्ति की भौतिक प्राप्तियों को दस भागों में बाँट दीजिये। भौतिक प्राप्तियों में क्या आता है आपका बौद्धिक स्तर, वंशानुगत प्रतिभायें, शारीरिक गठन, आर्थिक स्तर, पद, अर्जित सम्पत्ति, सामाजिक वरीयता, नाम, यश आदि। इस प्रकार आप किसी व्यक्ति की या अपनी स्वयं की अलग-अलग भौतिक प्राप्तियों के दस वर्ग बना लीजिये और उनको नम्बर दीजिये। आप पायेंगे कि जन्म से लेकर मृत्यु तक किसी एक चेतनता के स्तर पर नम्बर बराबर रहते हैं। यदि आप तथाकथित डिग्रियों व शैक्षणिक प्राप्तिओं के पीछे भागेंगे तो अन्य कुछ अवश्य छूट जायेगा। धन की प्राप्ति के पीछे भागेंगे तो कुछ और छूट जायेगा।

यदि आप आध्यात्मिक जीवन में चले जायें तब यह सूत्र लागू नहीं होता। अतः यदि आप अपने बालकों का **सर्वांगीण** विकास चाहते हैं तो उनका चेतनता का स्तर बढ़ाइये! वह कैसे बढ़ता है? तप से, जप से, दान से, पुण्य से, यज्ञ से, हवन से। यह कोई नोट खर्चने से नहीं बढ़ता। इसके लिए तपस्वी बनना पड़ेगा। हमारे यहाँ बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं के गुरु होते थे जो उनके कान खींचते थे, कि क्या कर रहे हो? क्योंकि उन गुरुओं का मानसिक बल बहुत बड़ा होता था। आज भी यह विधान होना चाहिये। यदि आप चेतनता के स्तर को बढ़ाना चाहते हैं तो अपने बच्चों को प्राणायाम, योग सिखाइये। **'योग'** यानि **जुड़ना**। जीव और ब्रह्म का मिलन कैसे होता है? उपासना की विधा सिखाइये। इनका चेतनता का स्तर बढ़ा दीजिये। वह **अवश्य** असाधारण बच्चे होंगे। जहाँ भी रहेंगे, चाहे झोंपड़े में रहें लोग सजदा करेंगे। जिस पेड़ को वो छुएँगे, उस पेड़ की पूजा होगी। जिस वस्त्र को वे पहनेंगे, वह वस्त्र प्रदर्शनी में रखे जायेंगे। बच्चा भाग्यहीन कब होता है, जब उसका चेतनता का स्तर कम होता है। क्यों कम होता है? क्योंकि गुरु में श्रद्धा नहीं है, माता-पिता में श्रद्धा नहीं है।

श्रद्धा एकतरफा होती है मैं किसी के लिए क्या कर सकता हूँ या कर सकती हूँ, इसका नाम है **'श्रद्धा'**। **सत्य को धारण करने की शक्ति।** यह

श्रद्धा भी भारत की उत्पाद है। सुबह सूर्योदय होने से पहले बिस्तर छोड़िए। अगर कोई विद्यार्थी सुबह सूर्योदय से पहले बिस्तर नहीं छोड़ता है तो वह चाहे कुछ भी बन जाये, उसका देश बिकेगा, उसका समाज बिकेगा, वह खुद बिकेगा। रोज़ हवन होना चाहिये। जो विद्यार्थी हवन नहीं करते, उनको स्कूल से निकाल देना चाहिये। उन अध्यापकों को मत रखिये जो चेतनता का स्तर बढ़ाने के लिए प्रयास नहीं करते हैं। जिनको माता-पिता में श्रद्धा नहीं है, उन अध्यापकों को, उन विद्यार्थियों को मत रखिये। डिग्रियाँ कुछ नहीं करेंगी, चेतनता का स्तर, आपका आत्मबल चाहिये। चन्द्र शेखर आज़ाद, शहीद सरदार भगतसिंह, बहुत पढ़े-लिखे नहीं थे लेकिन इनका चेतनता का स्तर बहुत ऊँचा था। उन्होंने ब्रिटिश सरकार को हिला दिया था। उनकी मातायें पढ़ी-लिखी नहीं थीं, अनपढ़ थीं। मैं बढ़ा-चढ़ा नहीं रहा हूँ, एक सच्ची कहानी सुना रहा हूँ आपको। मैं लंदन पढ़ने के लिए जा रहा था। बहुत बड़ी बात होती थी जब कोई विदेश में पढ़ने जाता था। बहुत लोग मुझे छोड़ने आये, मेरी माँ भी मुझे छोड़ने आईं। सबने आशीर्वाद दिया। जब मैं जहाज पर चढ़ने लगा तो मेरी माँ ने मुझे बुलाया और अपनी धोती से कुछ खोलकर मुझे देने लगीं। मैंने सोचा पता नहीं क्या देंगी? एक चाँदी की छोटी सी डिब्बी निकाली उन्होंने। मेरी माँ चौथी पास थीं। एक छोटी सी चाँदी की डिब्बी खोली, उसमें मिट्टी थी। बोलीं—बेटे ! मिट्टी ले जाओ। हम सब इस मिट्टी से बने हैं। इसी मिट्टी में मिलना है हमको। वहाँ मत रहना, आ जाना। वह डिब्बी आज भी मेरे पास पड़ी है। वह चौथी पास, तथाकथित अनपढ़, ने इतनी बड़ी बात मुझको कह दी। उसी बात के पर मैं भारत लौट कर आया। तीन साल बाद उत्तरकाशी के लिए रवाना इसलिए हुआ कि वहाँ पर चिकित्सा सेवायें चाहिये थीं। नहीं तो मैं भी दिल्ली या मुम्बई में नर्सिंग होम खोल लेता। आज हमें वो मातायें चाहियें जिन्होंने शिवाजी जैसे सूरमे पैदा किये।

कृपया याद रखिये कि यह मनोबल तपस्वी माता-पिता अपने तपस्वी बच्चों को देते हैं। यह पैसे खर्चने से नहीं बनता। तो यह मनोबल कैसे

बढ़ाना है बच्चों का? इसके लिए आपको तरीका अवश्य मालूम होना चाहिये। हमारे पास कितनी विद्यायें हैं, ऐसे संस्थान हैं, ऐसी किताबें हैं, ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनमें जगह-जगह दिशाबोध मिलता है, उनका अनुसरण कीजिए। जो हमने 10 बिन्दु बताये हैं, यदि आप उनके पार जाना चाहें तो आपको आध्यात्मिक जगत में आना पड़ेगा और अगर आप वहीं तक रहना चाहते हैं तो सर्वांगीण विकास असम्भव है। यह बातें हैं सिर्फ बातें। **सर्वांगीण विकास यदि आप चाहते हैं तो मनोबल बढ़ाइये और मनोबल बढ़ता है तप से।** माता-पिता तपस्वी हों और विद्यार्थी तपस्वी हों, आसन-सिद्धि कराइये। जब किसी बच्चे में तीन घंटे की आसन-सिद्धि हो जायेगी, जब शिला की तरह वो एक आसन पर बिना हिले-डुले बैठ सके तो उसकी दिव्य शक्तियाँ जाग्रत होनी शुरू हो जाएँगी।

आज आप किसी बच्चे को देखिये वह दीवार का सहारा लेकर खड़ा होता है। अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो सकता। यह ट्यूशन का प्रोग्राम बन्द कर दीजिये। बच्चों में सद्गुण भी तो पैदा करने हैं। जो बच्चे ट्यूशन पढ़कर पास होंगे वो कभी आत्मनिर्भर नहीं हो सकते। जिसको ट्यूशन की आवश्यकता है उसको फेल होने दीजिये। फेल होने दीजिये उनको। अरे ! कुछ तो जोखिम उठाइये। कुछ न कुछ भाग दान करिये शिक्षा का, बच्चे भी दान करें, आप भी करें ! दान का एक दर्शन है। आप अपनी बौद्धिक क्षमताओं से किसी चीज़ को प्राप्त कर सकते हैं। उसकी प्राप्ति के बाद उसका भोग और आनन्दपूर्वक भोग भी ले सके, इसकी कोई गारंटी नहीं है। अगर आप अपनी भौतिक प्राप्तियों का भोग करना चाहते हैं, आनन्द लेना चाहते हैं तो आपको कुछ दान करना आवश्यक है।

दान का दर्शन बता रहा हूँ। मान लीजिये किसी के पास सौ रुपये हैं। लेकिन सौ रुपये के भोग की तो कोई गारंटी नहीं है। यदि आप उसमें से, मान लीजिये, 20 रुपये दान कर देते हैं तो जो शेष 80 रुपये बचेंगे, उसके आनन्दपूर्वक भोग की गारंटी उसी समय हो जायेगी। जो बीस रुपये आपने दे दिये वो कई गुणा होकर (जो इस बात पर निर्भर करता है किस भावना से

दिये हैं) देर-सवेर भौतिक रूप से भी आपको मिल जाएँगे और उसके भोग की और आनन्दपूर्वक भोग की गारंटी भी हो जायेगी। दो लाभ हुए—जो शेष बचे उसका आनन्दपूर्वक भोग कर सकेंगे और जो आपने दिये वे कई गुणा हो जायेंगे, किस हिसाब से? वह निर्भर करता है कि आप किस वृत्ति से दे रहे हैं। कैसे मिलेगा? आपको नहीं मालूम। तीसरे जब आप किसी को कोई चीज़ मुफ्त देते हैं तो आपको एक आनन्द का अनुभव होता है तुरन्त। आपने अनुभव किया होगा जब आप किसी की सेवा करते हैं तो आपके भीतर एक विशेष आनन्द पैदा होता है जिस आनन्द को आप लाखों रुपयों में भी नहीं खरीद सकते। इसके अतिरिक्त आपका दिव्य आपा भी जाग्रत हो जाता है।

ईश्वर ने यह दिव्य व्यक्तित्व हम सबको दिया है। ईश्वर जानता था कि मैं इसको बुद्धि दे रहा हूँ और यह इसका दुरुपयोग अवश्य करेगा और दुखी होगा—अपनी औलाद का सबको मालूम होता है। बुद्धि दी किसलिये थी? वह भी मैं संक्षेप में बता दूँ। जब कोई पेंटर, कोई कलाकार, कोई लेखक, कोई कवि अपनी रचना बनाता है, लिखता है तो उसकी इच्छा होती है कि इसकी प्रशंसा करने वाला कोई हो ! भगवान ने इतनी असंख्य सृष्टियाँ बनाईं, कोटि-कोटि ब्रह्माण्डनायक कहा है शास्त्र ने उसे। सागर बनाये, पर्वत-श्रंखलायें, असंख्य वनस्पतियाँ बनाईं, जीव-जन्तु बनाये, असंख्य तारागण बनाये, नक्षत्र बनाये तो ईश्वर की भी इच्छा हुई होगी कि मेरी तारीफ करने वाला भी कोई हो और आखिर में उसने बनाया **'आदमी'**। उसको बुद्धि दे दी कि बुद्धि का इस्तेमाल तू मत करना क्योंकि बिना तेरी बुद्धि के ही इतनी सृष्टि चल रही है। मैं अपने आप खिलाऊँगा तुझे। इसका इस्तेमाल मात्र मेरी तारीफ के लिये करना। सतनाम वाहे गुरु, सतनाम वाहे गुरु, जाप करते रहना, मेरे साथ रहना, नहीं तो पकड़े जाओगे और यह फँस गया कैरियर बनाने में। जब यह फँस गया और ईश्वर को मालूम था कि यह फँसेगा तो उसने एक दिव्य व्यक्तित्व दे दिया और कहा कि बेटा जब फँस जाना तो मेरे दरबार में आ जाना। वहाँ जन्त्र-मन्त्र मत पढ़ना, अपनी डिग्रियाँ मत दिखाना बस मेरे चरणों में आ जाना, मैं तुम्हें गले

से लगा लूँगा :–

सन्मुख होइ जीव मोहि जबहिं, जन्म कोटि अघ नासेहिं तबहिं।''

मैं तेरे सारे पापों को क्षमा कर दूँगा। यह है दिव्य व्यक्तित्व। जहाँ बुद्धि हट जाती है। जब आप किसी से प्रेम करते हैं निस्वार्थ भाव से, शिक्षा दान करते हैं तो आपके अंदर दिव्य व्यक्तित्व जाग्रत हो जाता है और उस समय आप अपने इष्ट से वार्तालाप कर सकते हैं।

'' बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय ''

(8 अप्रैल, 2000)

ईश्वरीय ध्यान

इष्ट-प्रेरणा एवं शक्ति से आपके सम्मुख बहुत साधारण परन्तु विशिष्ट विषय **'ईश्वरीय-ध्यान'** प्रस्तुत करने का प्रयत्न करूँगा। सत्संग, संत और ईश्वर का ध्यान मात्र और मात्र ईश्वर-कृपा से ही सम्भव है। यह कृपा-साध्य है, कर्म-साध्य नहीं है, यह स्पष्ट हो जाना अति आवश्यक है।

क्यों करें हम ईश्वर का ध्यान? देशों-विदेशों में जाते हैं तो लोग विभिन्न प्रकार के प्रश्न पूछते हैं, और कभी-कभी वो प्रश्न बहुत सारगर्भित होते हैं। गत वर्ष लंदन में एक बहिन मुझे लंदन से 100 मील दूर Cavantry में एक आयोजन में ले गईं। वहाँ एक नौजवान ने बड़ा सुन्दर प्रश्न पूछा, कि ईश्वर का ध्यान करने व उसे मानने की आवश्यकता ही क्या है? कुछ देर के लिए तो हम विचार-मग्न हो गये। हमने कहा—नहीं, ईश्वर को मानने की आवश्यकता नहीं है। ईश्वर को माने बिना भी काम चल सकता है। **अगर आप ईश्वर को नहीं मानना चाहते तो बिल्कुल मत मानिये, क्योंकि पशु भी ईश्वर को नहीं मानते और पशु ही ईश्वर को नहीं मानते,** आप भी मत मानिये। पैदा होते हैं पशु, गर्भ-धारण करते हैं पशु, बच्चे पैदा करते हैं, कहीं न कहीं रहते हैं पशु, मरते हैं पशु, लेकिन ईश्वर को नहीं मानते। इससे ईश्वर को कोई फर्क नहीं पड़ता, इसलिए आप भी मत मानिये। तो उस नौजवान के प्रश्न ने हमको नई विचारधारा दी, मैं आभारी हूँ उसका। मनुष्य देहधारियों का वर्गीकरण करने का हमको एक विचार उठा, उन्हें कुछ विशेष स्तरों पर अवश्य बाँटा जाना चाहिये। सब एक जैसे नहीं हो सकते।

सबसे निम्न स्तर का वर्ग मनुष्य देहधारियों में वह है जो ईश्वर को नहीं मानते। जब तक हम किसी को मानेंगे नहीं तब तक उसका ध्यान करने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। इनके दो प्रकार हैं—सबसे निम्नतम वर्ग नितान्त जंगली पशु हैं, जिनका न कोई धर्म है, न कर्म, न कोई लेना, न देना। बस खाना-पीना, संतान उत्पन्न करना, मार-धाड़ करना, मारना- मरना और पशुवत् जीवन बिताना, तो वे हैं **पशु-नर**। इससे ऊपर हैं **नर-पशु।** नरपशु वो होते हैं जो होते तो पशु हैं लेकिन उपयोगी होते हैं; जैसे घोड़ा, गधा, ऊँट, बैल, ये सब उपयोगी पशु हैं। तो मानव देहधारियों में एक वर्ग है **पशु-नर** और दूसरा **नरपशु,** ये दोनों ही ईश्वर को नहीं मानते।

ध्यान की बात अभी नहीं कर रहा हूँ मैं। **तीसरी श्रेणी** उन मानवों की है जो ईश्वर को मानने लगते हैं, कि ईश्वर कुछ है क्योंकि ईश्वर ने **मानव को उत्कृष्टतम बुद्धि दे दी जिसको सम्भालना इसको आता नहीं था और इस बुद्धि ने इसको फँसा दिया क्योंकि इस बुद्धि का इसने दुरुपयोग किया।** परन्तु साथ ही उसने यह जानने के लिए भी बुद्धि लगाई कि मैं पैदा अमुक-अमुक समय पर, अमुक-अमुक माता-पिता से, अमुक-अमुक स्थान पर क्यों हुआ हूँ? एक विशेष प्रकार की शिक्षा मैंने क्यों पाई है, मैं किसी विशेष व्यवसाय में क्यों हूँ? एक विशेष स्त्री या पुरुष से मेरा विवाह क्यों हुआ, मेरी संतान अलग-अलग क्यों है, विशेष प्रतिभाओं से सम्पन्न क्यों है और मुझे कब मरना है, कहाँ मरना है, क्यों मरना है। जब मानव-बुद्धि ने थोड़ी सी दिशा बदली तो उसको ईश्वरीय सत्ता का आभास होने लगा कि कोई ईश्वरीय सत्ता है जिसने चाँद-सितारे बनाये हैं, पृथ्वी-मंडल, वायु-मंडल, असंख्य जीव-जन्तु, पर्वत-श्रृंखलायें, सागर, महासागर बनाये हैं। किसी ने उसे ईश्वर कहा, किसी ने उसे God कहा, किसी ने भगवान कहा, अल्लाह कहा और न जाने क्या-क्या नाम दे दिये। उसका इस्तेमाल किया मात्र अपनी व्यक्तिगत, भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए। तो उस वर्ग में हमने रखे हैं—**व्यष्टि-मानव।** जिनका कोई नहीं होता, कोई पत्नी, कोई मित्र, कोई माँ-बाप नहीं होता, वो स्वयं खुद होते हैं। जो

ईश्वर को मात्र अपने स्वयं के लिए मानते हैं। उनमें से कुछ की और पदोन्नति हो गई जो ईश्वर को अपने समाज के लिए, देश के लिए, धर्म के लिए और परिवार के लिए मानने लगे। उनका आयाम, उनका सोचने का दायरा, प्रार्थना करने का जो स्तर था वो बढ़ गया, विस्तृत हो गया, समष्टि में चला गया। उसको कहा हमने—**समष्टि-मानव।** इसके बाद की जो श्रेणी है वो विश्व में कहीं नहीं पाई जाती, मात्र भारत में पाई जाती है, जिसको कहा है— **जिज्ञासु-मानव।** जो ईश्वर के बारे में जानना चाहते हैं कि तुम हो कौन, कहाँ रहते हो, मेरे से तुम्हारा सम्बन्ध क्या है और जब यह जिज्ञासा की आग लग जाती है तो आदमी अपना सब कुछ दाँव पर लगा देता है। यह हमारी बहुत प्राचीन भारतीय परम्परा है जब हमारे बड़े-बड़े राजा-महाराजा, भूपति अपने राजमुकुट सिहांसन त्यागकर, जंगलों की ओर, पर्वतों की ओर चले गये, उस परम सत्ता को जानने के लिए। ब्रह्मविद्या उपज है भारत-भूमि की, हिमालय की कन्दराओं एवं हमारे गंगा, जमुना के तटों की। यह patent नहीं हो सकती। उदाहरणतः माता सीता को चुरा लिया रावण ने और अशोक वाटिका में कैद कर लिया तथा बहुत श्रंगार करके अपनी रानियों, महारानियों एवं पटरानियों के साथ वहाँ पहुँचा, कि ऐ सीते ! हमारे साथ विवाह कर लो ! सीता जी ने रावण के सामने एक तिनका रख दिया। यह तिनका प्रकरण बहुत महत्त्वपूर्ण है रामचरित मानस में:—

''तृन धरि ओट कहति वैदेही, सुमरि अवधपति परम सनेही।''

ऐ मूर्ख ! तुझे मैं तिनके से ज्यादा नहीं समझती हूँ। मेरे राम जब फूंक मारेंगे तो तू जल जायेगा, तेरी लंका जल जायेगी। **मैं ऐसे सशक्त राम की पत्नी हूँ। ब्रह्मविद्या, हमारी भारतीय संस्कृति, माता सीता की भाँति परम सशक्त है लेकिन थोड़ी आच्छादित हो गई है। यूरोप और अमेरिका रूपी रावण, वह पाश्चात्य जगत इसका वरण करना चाहता है, जो असंभव है, ऐसा हो नहीं सकता।** परम सशक्त, महा सौन्दर्यवती, ऐश्वर्यवती, ज्ञानवती, बलवती हमारी भारतीय संस्कृति रूपी माता सीता के आगे कोई चमक-दमक नहीं चलेगी। अतः यह गलतफहमी हटा दें। हम तो परम त्यागी

हैं। हमारा समस्त ऐश्वर्य हमारे तप पर निर्भर करता है। भगवान शंकर दिगम्बर हैं, धूने पर बैठे रहते हैं, लेकिन विश्वनाथ हैं। हम चाहें तो पूरे विश्व को रोज़ दान दे सकते हैं, इतना ऐश्वर्य है हमारी संस्कृति में।

ईश्वर को मान के चलिये, चल कर नहीं माना जा सकता। मान के चला जा सकता है। इसलिए किसी भी नाम-रूप में अपना इष्ट मान लीजिये। यहाँ लोगों को बड़ा भ्रम पैदा हो गया है। आज भी है निराकार और साकार के बीच में बहुत झगड़ा है। आज यह अति स्पष्ट हो जाना चाहिये। आज प्रथम बार यह पन्ना मैं आपके सामने खोल रहा हूँ। **'ईश्वर निराकार है'।** लेकिन निराकार को जब तक हम साकार में नहीं मानते हम उसके साथ बातचीत नहीं कर सकते। किसी भी व्यक्ति को ले लीजिये। **कोई भी व्यक्ति पाँच दशाओं में निराकार स्वरूप में होता है—सुषुप्ति, विस्मृति, मूर्च्छा, मृत्यु और तुरिया समाधि।**

उदाहरण के लिए मैं डाक्टर शिव कुमार शैया पर गहन निद्रा में सो रहा हूँ, तो देखने वालों के लिए मैं डा. शिव कुमार हूँ लेकिन स्वयं में मैं निराकार हूँ। सुषुप्ति अवस्था में न मेरा कोई नाम है, न रूप है। मैं स्वयं में धर्मातीत, कालातीत, कर्त्तव्यातीत, कर्मातीत, सम्बन्धातीत, लिंगातीत, देशातीत हूँ। मैं हूँ लेकिन मैं डा. शिव कुमार नहीं हूँ, जब मैं सो रहा हूँ, **वह मेरा निराकार स्वरूप है।** इसका प्रमाण है कि एक मरीज़ यदि आता है पेट के दर्द से चिल्लाता हुआ कि डा. साहब, मैं दुःखी हूँ। अब सोया डाक्टर क्या करेगा मरीज के लिए? उठाया जाता है हमको। जब हम उठते हैं तो सर्वप्रथम हम अपने नाम-रूप में आते हैं कि मैं कौन हूँ, मेरी योग्यता क्या है, मेरी प्रतिभाएँ क्या हैं और मैं किसी दुःखी आदमी के लिए क्या कर सकता हूँ? अतः मैं जब सुषुप्त हूँ तो मैं निराकार स्वरूप में हूँ। इसी प्रकार मैं जब मूर्छित हूँ तो मैं निराकार स्वरूप में हूँ, जब मैं विस्मृति में हूँ, जब मेरी स्मृति समाप्त हो गई किसी कारणवश तो मैं निराकार स्वरूप में हूँ। मृत्यु में और तुरियावस्था में मैं निराकार ही होता हूँ। शायद किसी ने अनुभव किया हो। समाधियों में एक समाधि होती है तुरिया-समाधि। तुरिया-समाधि में भी आप

अपने नाम-रूप में नहीं होते। यह पाँच मानव-शरीर की ऐसी अवस्थायें हैं जिनमें हम होते हैं लेकिन हम निराकार होते हैं और यदि हम से किसी ने काम लेना है तो हमको जगाना पड़ता है। इसी प्रकार ईश्वर भी निराकार है और ईश्वर के पाँच प्रतिनिधि पंच-महाभूत पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि और आकाश, ये पाँचों भी निराकार हैं।

हम व्यक्तिगत रूप से जब किसी व्यक्ति से सम्बन्ध बनाते हैं तो यह आवश्यक है कि वो व्यक्ति भी हमारा सम्बन्ध मान ले। वैसे ही ईश्वर से सम्पर्क करने के लिए उसे भी नाम-रूप में मानकर सम्बन्ध पैदा कर लो। किसी व्यक्ति की बहुत बड़ी प्रौपर्टी है उसको बाप बना लिया, अब वह भी हमको बेटा स्वीकार करता है या नहीं, यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। भगवान से हमने तो सम्बन्ध बना लिये लेकिन भगवान ने भी हमें स्वीकार किया है या नहीं :—

''सबकी साकी पे नज़र हो यह ज़रूरी है मगर
सब पर साकी की नज़र हो यह ज़रूरी तो नहीं।''

कभी-कभी, किसी-किसी पर नज़रे इनायत होती है तो उसको एक झलक मिल जाती है। वह अनिवर्चनीय है, कृपा-साध्य है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है कि किसी-किसी पर कृपा क्यों होती है? ईश्वर जाने। किसी-किसी पर जब नज़रे इनायत होती है तो उसको झलक मिल जाती है और वो झलक उसको झल्ला बनाकर छोड़ती है। पंजाबी में झल्ला कहते हैं पागल को ! वो इतनी खूबसूरत झलक होती है कि कोई भी मानव उसको बर्दाश्त नहीं कर पाता। उसकी एक झलक पाने के बाद यदि कोई झल्ला नहीं हुआ तो उसको झलक नहीं मिली, क्योंकि उसको पाने के बाद झल्ला होना ज़रूरी है, आवश्यक है। उसको पाने के बाद एक दिव्य कानून लागू होता है—ईश्वर अपने उस प्यारे को अपना स्वरूप बताते हैं, **आत्मज्ञान देते हैं।** आत्मज्ञान के लिए गुरु, सद्गुरु कुछ नहीं चाहिये। बहुत महत्त्वपूर्ण बात बता रहा हूँ कि जब तक हम ईश्वर के बारे में जानना चाहते हैं तो हमको सद्गुरु चाहिये और **जब हम ईश्वर को जानना चाहते हैं तो सद्गुरु,**

सद्गुरु नहीं रहता, सद्शिष्य, सद्शिष्य नहीं रहता। दोनों पद समाप्त हो जाते हैं और उसके बाद वो बनता है–**'मुमुक्षु'**। कोई सद्गुरु वहाँ तक नहीं पहुँचा सकता। सद्गुरु हट जाता है। जहाँ जिज्ञासा की पराकाष्ठा होती है वहाँ सद्गुरु हट जाता है और सद्शिष्य, सद्शिष्य नहीं रहता। उसके बाद ईश्वर स्वयं उसको अपना स्वरूप अनुभूत कराते हैं, उसको कहा है **आत्मज्ञान** :–

''सोइ जानइ जेहि देहु जनाई, जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।''

हे प्रभु ! आपको कौन जाने, जिसको आप जनवाओ कि मैं क्या हूँ? आप जनवाओगे जिसको वो ही आपको जाने और आपको जानने के बाद वो झल्ला, वो दीवाना कुछ भी बयान नहीं कर सकता। सागर की गहराई को नापने के लिए किसी ने नमक का एक पुतला, जिसमें कुछ कम्प्यूटर फिट किये, छोड़ दिया गहरे जल में। लेकिन जब वह सागर-तल तक पहुँचता है तो वह नमक का पुतला घुल गया, वापिस ही नहीं आ सका। तो जो उसके सान्निध्य में पहुँच जाता है, जिसको ईश्वर अपना स्वरूप बता देते हैं, वह दुनिया के योग्य नहीं रहता और दुनिया उसके योग्य नहीं रहती। तमाशा लगता है सब। उसके बाद आता है मोक्षपद और मोक्षपद का वर्णन, सार्वजनिक तौर पर करना निषेध है। यह ब्रह्मविद्या का विशेष आयाम है लेकिन आज हमारा हृदय कर रहा है, हम कहेंगे क्योंकि आप सब महाजिज्ञासु हैं इसमें हमको कोई संदेह नहीं है। मोक्ष क्या है?

अपनी भौतिक मान्यताओं से हटकर ईश्वर में समस्त मान्यताओं को लगा देना तहेदिल से, दिमाग से, आत्मा से, चिंतन से, मनन से, उसका नाम है–**मोक्ष**। **सौन्दर्य, शक्ति, ख्याति, ज्ञान, ऐश्वर्य किसी की भी इच्छा से मुक्त हो केवल ईश्वर की ही कामना के लिए पल-पल व्यतीत करे उस मानसिक स्थिति का नाम 'मोक्ष' है।** हम जन्म-जन्मांतरों में जैसे ही होश संभालते हैं, वहीं से हम संसार में फँसना शुरू हो जाते हैं। सारा विश्व, सारा संसार, सारा परिवार, समस्त सम्बन्ध हमारी अपनी मान्यताओं पर आधारित हैं। यह मेरी पत्नी, यह मेरा पति, यह मेरी संतान, यह मेरा पिता, यह मेरी

माता यह सभी मान्यताओं पर आधारित हैं। हमारा जन्म, हमारी मृत्यु हमारी मान्यताओं पर आधारित हैं। आज तक विश्व में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसने अपना जन्म होते देखा हो। किसी ने अपने आपको सोये हुए नहीं देखा। हमने सदा अपने आपको जाग्रत ही देखा है। किसी ने अपने आपको मृतक नहीं देखा। जन्म-मृत्यु दोनों ही हमारी कल्पनायें हैं। हम भारतीय कभी जन्मते और मरते नहीं है। बड़ी विचित्र बात बता रहा हूँ, हमारा कभी जन्म और मृत्यु होती ही नहीं है। हम शुरू से ही अजर हैं, अमर हैं। भारतीय संस्कृति को धारण करने वालो ! जब यह संस्कृति धारण हो जायेगी, आप उसी ही क्षण अजर और अमर हो जायेंगे क्योंकि अजरता और अमरता हमारा ही अधिकार है। क्योंकि किसी ने अपना जन्म होते नहीं देखा, किसी ने अपनी मृत्यु नहीं देखी। किसी ने अपने आपको सोये हुए नहीं देखा, किसी ने अपने आपको मूर्छित नहीं देखा। तो **जन्म-मृत्यु हमारी धारणायें हैं, हमारी कल्पना है, हमारी मान्यता है, वास्तव में है नहीं।**

माता मान्यता, पिता मान्यता, सारे सम्बन्ध मान्यता और इन मान्यताओं में हम जकड़ते गये। हमारा, हमारे जीवन से सम्पर्क टूट गया। यह मान्यतायें थोड़ी सुखद लगती हैं लेकिन उतनी ही दुखद हो जाती हैं। हम अपने निराकार स्वरूप में बड़े आनन्दित होते हैं। सोने के लिए भी बहुत व्यस्त लोगों को नींद की गोली खानी पड़ती है। वातानुकूलित कमरों में नींद नहीं आती। सब प्रकार के खाने के पदार्थ होते हैं लेकिन भूख नहीं लगती, उसके लिए गोली खानी पड़ती है। यह हमारी मान्यताओं की वजह से है। जब सुबह नींद से उठे, पूछा—रात को नींद कैसी आई ? बोला—बड़ा आनन्द आया। पूछा—काहे का आनन्द आया? आपने रसमलाई खाई सोते हुए, बोले—नहीं। संगीत सुना था, बोले—नहीं ! कोई बहुत अच्छी सुगन्ध सूँघी? बोले—नहीं ! मैं प्रगाढ़ निद्रा की बात कर रहा हूँ जिसमें स्वप्न भी नहीं आता, तो आनन्द काहे का आया ? कि बस, आनन्द आया और जब वो आनन्द आ रहा था तब वो सो रहा था। थोड़ा मेरे साथ गहरे चलिये आज कई पर्दे

खुलेंगे। जब वो आनन्द आ रहा था तब वो सो रहा था। उसने कोई काम-सुख नहीं लिया। उसने कोई स्वादिष्ट खाना नहीं खाया। उसने कोई नाद नहीं सुना, संगीत नहीं सुना, उसने कोई कोमल स्पर्श नहीं किया, उसने आँखों से कोई सुन्दर दृश्य नहीं देखा, लेकिन बड़ा आनन्द आया और जब वह आनन्द आया तब वह सो रहा था। उस आनन्द के प्रभाव मात्र ने उसको यह कहने के लिए बाध्य किया कि—**बड़ा आनन्द आया।** (एकाग्र करिये, इससे ज्यादा सरल मैं नहीं कर सकता इस बात को। यह ब्रह्मविद्या का रहस्य है)

अब मनीषियों ने यह विचार किया कि उस सुषुप्त अवस्था में हमारा कोई सम्बन्ध किसी से नहीं था। अब एक माँ को अपने बच्चे से बड़ा प्रेम है, बस उसको छाती से लगाये रखती है। जहाँ माँ को खर्राटे आये तो बच्चा भाग जाता है। पूछा कि बच्चा कहाँ गया? बोली—मैं सो रही थी। हीरे-जवाहरात के आभूषण कितने हम दिल से लगाकर रखते हैं, हमारे सोते ही चाहे कोई उठाके ले जाये। सोने से पहले कहेंगे वह दरवाजा बन्द करो, वह गेट बन्द करो, लेकिन जब सो गये तो कोई दरवाजा तोड़ कर ले जाये। उस वक्त न हमारा कोई धर्म होता है, न कर्म होता है, न कर्त्तव्य होता है। जागते समय आप एक-एक मिनट घड़ी देखते हैं लेकिन सोते हुए आप कालातीत होते हैं। ईश्वर क्या है? **कालातीत, कालेश्वर।** आप सुषुप्त **अवस्था में कालेश्वर के अंश होते हैं।** कालातीत होते हैं आप ! आपका कोई धन नहीं होता, कोई सम्पदा नहीं होती, कोई कर्त्तव्य नहीं होता, कोई सम्बन्ध नहीं होता, कोई देश नहीं होता, कोई धर्म नहीं होता। आप न हिन्दू होते हैं, न मुसलमान होते हैं, न ईसाई होते हैं। सोये हुए आप होते हैं, बात मोक्ष पर चल रही है। आपकी एकाग्रता चाहूँगा। बहुत सरलीकृत कर दूँगा इसको। आप होते हैं लेकिन आप अपने नाम व रूप से परे होते हैं और उस अवस्था में आपको जो आनन्द (सुख नहीं आनन्द) आ रहा होता है, वह अनिर्वचनीय होता है। इन्द्रियाँ हमारी सुख देती हैं, क्योंकि उनकी सीमा सुख तक है, लेकिन सुषुप्तावस्था में आप अपने आत्मकोष, आत्मा के आनन्द

में डूबे हुए होते हैं। जहाँ इन्द्रियाँ विश्राम लेती हैं, जहाँ से इन्द्रियाँ स्वयं सुख लेती हैं वो है आपका आनन्दमय कोष और जिस वक्त आप आनन्द की अनुभूति करते हैं, उस वक्त आप सो रहे होते हैं। तो योगियों को, मनीषियों को एक विचार आता है कि अगर मैं उस समय सो न रहा होता, जब मैं आनन्द की अनुभूति कर रहा था, अपने नाम और रूप से परे था, उस समय यदि मैं जाग्रत होता तो मैं आत्मविभोर हो जाता। इस बात को मैं फिर दोहराऊँगा। उस सुषुप्ति के बाद जागृति में मात्र नींद के प्रभाव से बड़ा आनन्द आया। जबकि हमें मालूम है सोते हुए न तो इन्द्रियाँ थीं, न इन्द्रियों के साधन थे और न उनका सुख था। शास्त्र ने उसे कहा है—**अभावमय आनन्द।** वहाँ कुछ भी नहीं था लेकिन आनन्द था।

जहाँ हम नाम-रूप में आते हैं वहीं हम सुखों की तरफ भागने लगते हैं और इन्द्रियाँ सुखों से जबाब दे जाती हैं। त्रसित हो जाते हैं हम, हताश हो जाते हैं। तो योगी जब इस स्थिति पर ध्यान करता है कि क्या कोई ऐसी मेरी मानसिक स्थिति है जिसमें मैं जाग्रत होऊँ और अपनी इन्द्रियों से परे चला जाऊँ, अभावमय आनन्द की मैं अनुभूति कर सकूँ, साक्षात्। तो योगी समाधि में चले गये। समाधि में विशेष तुरीया-अवस्था ऐसी है जब आप जाग्रत होते हैं, आप होते हैं लेकिन आप अपने नाम और रूप से परे होते हैं। आप महाआनन्द का जागृति में अनुभव करते हैं और ऐसे आनन्द का यदि जागृति में अनुभव हो तो आदमी झल्ला न हो तो क्या हो? तो वो सुख-सुविधाओं के पीछे क्यों भागेगा? अरे ! वह उस आनन्द में चला जाता है जहाँ से इन्द्रियाँ आनन्द लेती हैं। जहाँ से इन्द्रियाँ उधार लेती हैं आनन्द। आप मेरे से सहमत होंगे कि आपके पास सुख-साधन भी हों और आपकी इन्द्रियाँ स्वस्थ भी हों लेकिन यदि आप किसी कारण से तनावित हों, दुःखी हों तो कितना अच्छा भोजन आपके सामने पड़ा हो आपकी जीभ भी काम कर रही हो, क्या आपकी भोजन खाने की इच्छा होगी? नहीं ! इसका मतलब अन्दर से आनन्द नहीं है। कितना मधुर संगीत हो और आपके कानों में सुनने की क्षमता भी हो और आपका मन दुखी हो, तो आप कहेंगे यह टैं-टैं

बन्द करो ! अर्थात् आपकी इन्द्रियाँ भी कहीं से, आपके आनन्द से सुख लेती हैं।

पूर्व और पश्चिम की विचारधारा में यही सबसे बड़ा अंतर है। आज भी यूरोप और अमेरिका इन्द्रियों के सुख की ओर भाग रहे हैं और उस सुख की एक क्षमता है। आप अपनी इन्द्रियों से कितना सुख ले सकते हैं और उस सुख लेने के लिए सुख-साधन भी चाहिये और इन्द्रियाँ एक दिन जवाब दे जाएँगी, आप यह भी जानते हैं। हमारी भारतीय संस्कृति में मनीषियों ने उन सुख-सुविधाओं और इन्द्रियों के भोगों को त्याग कर उनके उद्गम, जहाँ से इन्द्रियाँ अपना सुख लेती थीं उस आनन्दस्वरूप की ओर अन्तःदौड़ की, देखिये कितना अंतर है? आज भी पश्चिमी संसार इन्द्रियों के सुख भोगों की ओर बाहर भाग रहा है और हमारी दौड़ भीतर थी। इसलिए हम कभी मूलतः भौतिक हुए ही नहीं। कन्दराओं में बैठना, कम्बल ओढ़कर धूने पर बैठना, हमारी दौड़ बाहर नहीं थी, भीतर थी कि ये इन्द्रियाँ कहाँ से आनन्द लेती हैं? जहाँ इन्द्रियों को अपना आनन्द मिल जाता है वहाँ इन्द्रियाँ अपना स्वरूप भूल जाती हैं। आप भी अपने बच्चों को समझा दीजिये। लोग कहते हैं भारत अविकसित है। अरे ! हम महा विकसित हैं। आज भी विश्व संचालित होता है हिमालय की कन्दराओं से, यह मैं व्यास गद्दी से आपको सत्य कह रहा हूँ। कोई भ्रम में न रहे। आज भी हमारे मनीषी, हमारे ऋषि संकल्प कर लें, तो प्रलय आ सकती है। इतनी शक्ति है उनमें, इतने प्राणसिद्ध हैं वे आज भी। आज भी विश्व के महा परिवर्तन उनके परामर्श से ही होते हैं। हम सत्य के अलावा कुछ नहीं कह रहे हैं, हम महा विकसित हैं। हमारी दौड़ कभी बाहर हुई ही नहीं। भीतर की दौड़ थी कि ये इन्द्रियाँ कहाँ से सुख ले रहीं हैं? वो आनन्द का स्त्रोत, जिस पर मेरा जन्म-सिद्ध अधिकार है वो कहाँ है? **यह थी अन्तःदौड़।** एक दिन जब इन्द्रियाँ जवाब दे जाती हैं या जब सुख-साधन नहीं होते तो निराशा हो जाती है।

हमारी भारतीय संस्कृति में निराशा नाम का कोई शब्द नहीं था। अगर निराशा होती थी तो अपने प्यारे की याद में होती थी। अगर मीरा रोती थी

तो कृष्ण के लिए रोती थी। तो आज यह निराशा का शब्द हमें कहाँ से मिला? **निराश लोगों के तथाकथित विकसित समाज से,** जो वास्तव में बहुत निराश हैं जो बिना शराब पिये रात को सो नहीं सकते, जिनका कोई परिवार नहीं है। छः महीने बाद जो पत्नी बदल देते हैं। कोई बच्चा माँ के पास रहता है तो माँ भी उससे पैसे ले लेती है। भारत जैसा विकसित देश न कोई था, न है, न होगा। हमारी संस्कृति अति विकसित है क्योंकि हमारी दौड़ अन्तःदौड़ रही है। वह संस्कार लेकर हम अभी भी जी रहे हैं लेकिन वे सुषुप्त हैं उन्हें जाग्रत करना है। ईश्वरीय ध्यान करने से पहले हमें यह मालूम होना आवश्यक है, कि मैं कौन हूँ? जिसको अपना पता नहीं है वो ईश्वर का पता क्या लगायेगा? स्वयं से पूछिये कि क्या आप खुद अपने साथ बैठते हैं। पंजाबी में कहावत है किसी को जानना हो तो **'या राह पे जाने, या वा पे जाने'।** तो क्या हमें अपने से वास्ता पड़ता है?

चार ऐसी स्थितियाँ हैं जब आदमी को खुद से वास्ता पड़ता है। **पहला** जब बैठे-बिठाये अकस्मात् कोई मुसीबत आ जाये। बड़े-बड़े लोग विक्षिप्त हो जाते हैं। **दूसरा** जब कोई अकस्मात् खुशी आ जाये और **तीसरा** कभी आपके सामने कोई आकर्षण हो। आपको मालूम हो कि मैं इस व्यक्ति का सब कुछ ले सकता हूँ। **चौथा,** जब कभी मृत्यु का सामना करना पड़ जाये। यह चार आयाम ऐसे हैं जहाँ पर आदमी को खुद से वास्ता पड़ता है। सार्वजनिक तौर पर आप चाहे आडम्बर कर लें, मुस्कुराता हुआ चेहरा रख लें लेकिन आपको अपनी वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है। अगर आप पायें कि आप घटिया आदमी हैं तो सार्वजनिक तौर पर कहने की ज़रूरत नहीं है लेकिन अपने इष्ट से प्रार्थना करिये कि प्रभु! मुझे भी बढ़िया बना दो! जो खुद को नहीं जानता वो ईश्वर के ध्यान में क्या बैठेगा? अगर आप खुद को जानना चाहते हैं तो आप खुद के पास ईमानदारी से बैठिये। जब आप खुद को जान जायेंगे तब आप ईश्वर का ध्यान करने के अधिकारी हो जाएँगे। बात मोक्ष पर चल रही थी। हमारी संस्कृति भौतिकवाद की कभी थी ही नहीं, क्योंकि हमारी अन्तःयात्रा रही है और आज भी समस्त विश्व और विश्व के

समस्त कार्य-कलाप हमारे हिमालय से संचालित होते हैं, हमेशा वहीं से होंगे। हमारी मान्यताओं ने हमें जकड़ लिया। जो चीज़ आज सुख दे रही हैं, कल दुःख देने लगी क्योंकि यह कानून है। जिन वस्तुओं में हम सुख ढूँढते हैं एक दिन वो दुखदायी अवश्य बनेंगी—कानूनन। वृद्धावस्था में निराशा क्यों होती है? क्योंकि उन दिनों हम अपने पद को याद करते हैं, अपनी शारीरिक शक्तियों को याद करते हैं और बहुत कुछ याद करते हैं जो कि उस वक्त उपलब्ध नहीं होता, तो निराशा हो जाती है। निराशा का सबसे बड़ा कारण वृद्धावस्था में यह भी है कि जब हम किसी पद पर होते हैं तो यह समझते हैं कि दुनिया में मेरे बराबर कोई है ही नहीं और यह भूल जाते हैं कि एक दिन प्रेम-पत्र आयेगा, कुर्सी छोड़ने का। यदि पाँच मिनट ध्यान में हर रोज़ उस प्रेम-पत्र को पढ़ लें तो आपको निराशा क्यों होगी? एक दिन इस खूबसूरत काया में झुरियाँ पड़ेंगी, आँखें खराब हो जायेंगी, हृदय खराब हो जायेगा, कान खराब हो जायेंगे, बड़ी-बड़ी बातें करने वाली बुद्धि खराब हो जायेगी। यदि हम यह मान कर चलें और परम सत्य से अपनी दृष्टि को न छुपायें, तो हमें निराशा नहीं हो सकती।

हमारी मान्यताओं ने हमें परेशान किया। अन्ततः इष्ट-कृपा से, संत-कृपा से, आत्म-कृपा से जब इन सत्यों का सत्संग द्वारा अनुभव हुआ कि मेरी मान्यतायें ही मुझे फँसा रही हैं, क्योंकि इन्द्रियाँ भी क्षणिक हैं, नश्वर हैं और सुख-साधन भी नश्वर हैं तो क्यों न मैं उस चीज़ को मान्यता दूँ जो अजर है, अमर है, नित है, नूतन है, अनन्त है, अनादि है और वह है—**'आपका इष्ट'**। जीव, जन्म-मृत्यु के चक्कर में जब पड़ता है तो कोई न कोई आसक्ति छूट जाती है। फिर जन्म लेता है, फिर कोई न कोई आसक्ति छूट जाती है। जन्म-जन्मांतरों में धक्के खाते-खाते, इस महाकाल-चक्र में घूमते-घूमते अन्ततः जब इष्ट-कृपा से उसको यह ज्ञान हो जाता है, तो अपनी मोहर की दिशा बदल देता है और वो मोहर लगा देता है अपने इष्ट में। मान्यता की चमत्कारिक शक्ति मानव को ईश्वर ने दी है। वो समस्त मान्यतायें अपने इष्ट में लगा देता है, जो कि अजर है, अमर है, अनन्त है,

अनादि है, नित-नूतन है, सच्चिदानंद है, सत, चेतन और आनन्द इन तीनों का अटूट, अविरल और अकाट्य सम्मिश्रण है। ऐसे इष्ट में अपनी मान्यता लगा देता है और वह मान्यता एक न एक दिन परिपक्व हो जाती है।, तब जैसे लड़की अपने ससुराल में बस जाती है तो अपना मायका भूल जाती है और जो मायका नहीं भूली इसका मतलब वो ससुराल में नहीं बसी। जब आम पक जाता है तो पेड़ को छोड़ देता है, जिसे कहते हैं टपके का आम, खाया होगा आपने। वैसे ही जब वो ईश्वरीय मान्यता परिपक्व हो जाती है तो उसके बाद संसार की सारी मान्यताएँ छूट जाती हैं, ढीली पड़ जाती हैं। लेकिन वो संसार में बहुत सुन्दर विचरता है। ऐसे महामानव किसी को उपेक्षित नहीं करते। जब पिता बनते हैं तो उत्कृष्टतम पिता, पति बनते हैं तो उत्कृष्टतम पति, शत्रु बनते हैं तो महाशत्रु, मित्र बनते हैं तो परममित्र। इतिहास उनका गवाह हो जाता है। समय रूपी रेत पर वे पदचिन्ह छोड़ जाते हैं लेकिन वो अभिनय करते हैं, उनके हृदय में उस लीला के प्रति कोई तादात्म्य-भाव नहीं होता।

जब सीता माता को रावण उठाकर ले गया, तो भगवान राम ने देखा कि पंचवटी में कुटिया खाली है, तो विलाप कर रहे हैं कि हे पेड़ों, ऐ पर्वतों, ऐ लताओं, ऐ झरनों, किसी ने मेरी सीता को देखा है? उधर भगवान शंकर सती के साथ आकाश-मंडल में जा रहे हैं और भगवान राम रो रहे हैं सीता के लिए। शंकर खड़े हो जाते हैं, माता सती भी खड़ी हो जाती हैं। शंकर भगवान ने जय सच्चिदानंद ! कह कर राम जी को प्रणाम किया। सती हैरान हो गई कि यह महादेव को आज क्या हो गया है? एक साधारण राजकुमार अपनी पत्नी के लिए विलाप कर रहा है और इसको महादेव स्वयं प्रणाम कर रहे हैं। सती ने पूछा—भगवन ! उस प्रणाम का रहस्य बताइये ! तो शंकर भगवान ने उन्हें बताया कि सती ! यह विष्णु भगवान थे। यह लीला की बात बता रहा हूँ। यह कृष्ण-लीला, यह राम-लीला, यह कैसी लीलायें होती हैं? अभिनय बहुत अच्छा होता है लेकिन उनके हृदयों पर कुछ भी प्रभाव नहीं होता। भगवान शिव को पता था कि अब इसके दिमाग में शंका

पैदा हो गई है, कुछ न कुछ करेगी। तो जैसे ही भगवान लम्बी समाधि में गये माता सती वहाँ से अन्तर्ध्यान हुईं और सीता माता का रूप धारण करके भगवान राम जिस मोड़ से गुज़रने वाले थे, वहाँ बैठ गईं। अब भगवान राम बोले—प्रणाम माते ! आज महादेव कहाँ हैं? सती घबरा गईं, अन्तर्ध्यान हो गईं और फिर वहीं वापिस आ गईं। भगवान शंकर अपने ध्यान में यह सारा कार्य-कलाप देख रहे थे। समाधि से उठने के बाद उन्होंने सती को प्रणाम किया और कहा—तुम सीता का स्वरूप बना चुकी हो, अतः अब तुम मेरी माँ हो ! अब आप मेरे बाँये अंग में नहीं बैठेंगी। भगवान शंकर ने उन्हें रोज़ प्रणाम करना शुरू कर दिया। उसके बाद किस प्रकार सती ने अपने पिता के यज्ञ में आत्मदाह किया, यह कथा सबको विदित है। उसका परिणाम यह हुआ कि आज जो रामचरित मानस आप पढ़ते हैं, भगवान शंकर ने वह रामकथा मात्र उमा को सुनाई है, सती को नहीं। क्योंकि जिस व्यक्ति के दिमाग में संदेह हो, शक हो वो आत्मविद्या लेने का अधिकारी ही नहीं होता। सन्देह आपका तब हटेगा जब आप स्वयं को जान जायेंगे। बात मोक्ष पर चल रही थी। ये सारी मान्यतायें जब आप उस परम पिता अपने इष्ट में लगा देते हैं और जब वो मान्यतायें इष्ट द्वारा स्वीकृत हो जाती हैं तो आपका अधिकार क्षेत्र व्यापक हो जाता है।

एक छोटा बच्चा अबोध पैदा होता है। उसको हम कितने प्यार से बुलाते हैं, खिलाते, पिलाते हैं। बच्चे ने तब तक माँ-बाप को मान्यता ही नहीं दी होती। लोग कहते हैं कि पत्थर की मूर्ति के आगे कैसे बैठे वह आपकी क्या बात सुनेंगी? मैंने कहा, अरे ! आपके घर का छोटा बच्चा, पैदाइशी बच्चा कितना हम खिलाते हैं उसको देखो ! वह तुम्हारी मासी आ गई, तुम्हारी बुआ आ गई, बातें करते हैं उसके साथ और बच्चे को मालूम नहीं होता कि मेरी माँ कौन है? मेरा बाप कौन है? एक इंसान के बच्चे को डेढ़-दो साल अपने माँ-बाप को पहचानने में लग जाते हैं। तो आप भगवान के साथ तुरन्त कैसे आशा कर सकते हैं। उसके साथ बैठिये, सम्बन्ध पैदा करिये, उसको खिलाइये, पिलाइये, लड़िये, झगड़िये। **जब कभी नज़रे**

इनायत हो जायेगी तो आपके सम्बन्ध को वो भी मोहर लगा देता है, लगा देता है, सत्य कह रहे हैं हम आपको ! और उसके बाद व्यक्तिगत वार्तालाप होती है। जो पूर्णतः गुप्त होती है। जब अपने जैसा आशिक मिल जाता है तो आदमी अपने घर की सभी बातें उसे बता देता है वैसे ही अपने इष्ट के साथ घनिष्टतम स्थिति हो जाती है।

हमारे शास्त्रकारों ने पाँच प्रकार के मोक्ष बताए हैं जो भक्तिमार्ग में चलने वाले हैं, साकार रूप में ईश्वर की उपासना करते हैं उनके लिए चार मोक्ष हैं—**सायुज्य, सामीप्य, सारूप्य, सालोक्य और पाँचवा है कैवल्य मोक्ष,** जो निराकार के उपासकों के लिए है। उसमें ज्योति में ज्योति समा जाती है, लेकिन भक्त वह नहीं चाहते। वे अपने इष्ट के साथ जुड़ना चाहते हैं। उनके पाँव की खड़ाऊँ बनकर, उनके गले का हार बनकर, उनके मस्तक का मुकुट बनकर, इसको कहा है **सायुज्य मोक्ष**। वो जीते-जी भाव से उसी में विचरते हैं। ऐसा लगता है कि वो जैसे अपने इष्ट के साथ जुड़े हुए हैं। **सामीप्य मोक्ष** में वो अपने इष्ट के समीप रहते हैं माँ बनकर, पत्नी बनकर, भाई बनकर और ऐसा समझते हैं कि वे अपने इष्ट के पास हैं और उनके पास कोई नहीं है।

सालोक्य मोक्ष में भक्त को, उपासक को ऐसा महसूस होने लगता है कि वो अपने इष्ट के लोक में ही हैं। वो जहाँ भी जाते हैं, अपने इष्ट के लोक में ही रहते हैं, चाहे वो जनता पार्टी की सरकार हो या कांग्रेस की, कोई भी सरकार हो ! स्थिर सरकार होती है उनकी, अपने इष्ट की सरकार। जन्म-जन्मांतरों में वो अपने इष्ट की सरकार में ही विचरते हैं। इसको कहा है स्थिर सरकार। **सारूप्य मोक्ष** में भक्त अपने इष्ट का रूप धारण कर लेते हैं। उपासकों के चेहरों से उनके इष्ट की झलक आने लगती है:—

''वो मुझसे पूछते हैं कि यह क्या बात है शकील,
दुनिया पुकारती है मुझे तेरे नाम से।''

शक्ल मिलने लगती है। पति-पत्नी में जब अगाध प्रेम हो तो सात वर्षों में दोनों की शक्ल मिलने लगती है। भाई-बहिन लगने लगते हैं। जब इष्ट से

बहुत प्रेम हो जाता है तो वो आपकी रूह में, आपके ख्यालों में, आपके मनन में, आपके चिंतन में सदा समाया रहता है। आपकी शक्ल उससे मिलने लगती है। आपकी आँखें उससे मिलने लगती हैं। इसे कहा है **सारूप्य मोक्ष।** साकार रूप में ईश्वर के उपासकों का कार्यक्षेत्र **'तुम से तुम तक'**, हो जाता है, कि हे प्रभु ! मैं चलूँ तुमसे और पहुँचूं तुम तक। उनका कर्म मात्र इतना होता है कि वे अपने इष्ट के सम्मुख सिमरन करते रहें, किसी भी प्रकार से और सब प्रकार से अपने इष्ट का ध्यान व सिमरन करते रहें और उन्हें मात्र यही ज्ञान अपेक्षित होता है कि उनका इष्ट ही उनका सब कुछ है। ज्ञान-भक्ति एवं कर्म का संगम हो जाता है। यह अवस्था जब जीवन-काल में किसी परम उपासक की, इष्ट-कृपा से हो जाए तो वह कृत-कृत्य हो जाता है। यह कर्म-साध्य नहीं है, यह कृपा-साध्य है। भूल जाओ कि इतना जाप करेंगे, समाधि में बैठेंगे तो वह मिल जायेगा। ऐसा नहीं है। जब इन कृत्यों के समर्पण का समर्पण कर दें, जब आपके दिल-दिमाग से, आपके ये जप-तप समाप्त हो जाएँ तभी यह स्थिति सम्भव है। विवाह से पहले हम कार्ड बाँटते हैं, कार्डों के साथ मिठाई के डिब्बे बाँटते हैं, चाँदी के सिक्के बाँटते हैं और जब इतने लोग इकट्ठे हो जाते हैं और लड़के-लड़की की शादी हो जाती है तो हम हाथ जोड़ने शुरू कर देते हैं कि आप वापिस कब जायेंगे? तो तप का अंत क्या है, कि जब तप बेकार लगने लग जाये, कि मैंने यह सब कुछ क्यों किया? मेरा यार तो मेरे पास ही था:—

''मैंने यार को जा-बजा देखा,
कहीं बन्दा कहीं खुदा देखा,
कहीं ज़ाहिर कहीं छुपा देखा,
ज़र्रे-ज़र्रे में तेरे हुस्न का सरापा देखा,
तेरी वहदत में भी कसरत का तमाशा देखा,
दुनिया वाले ढूँढने तुझे बियाबान गये,
मैंने जब देखा अपने दिल में खुलासा देखा,
मैंने यार को जा बजा देखा।

शान तेरी दुनिया में निराली देखी,
सारी खलकत तेरे दर पे सवाली देखी,
जिसे आँखें खुदा ने दी, वो पत्थर में खुदा देखे,
जिसका दिल हो पत्थर वो पत्थर में क्या देखे?''

अपनी आँखें खोलिये आपका यार आपके पास है, आपके दिल में है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(18 जून, 2000)

सरस-साधना

आज इष्ट-प्रेरणा से आपके सम्मुख एक बहुत अद्‌भुत विषय प्रस्तुत कर रहा हूँ। जिसका नाम है–**'सरस-साधना'।** सरस एवं साधना यह दोनों शब्द आपस में मेल नहीं खाते। **साधना** अक्सर **सरस** नहीं होती। साधना करने के लिए साधक चाहिए। **'साधना और साधन'** इन दोनों शब्दों में बहुत बड़ा अंतर है। हमको साधन चाहिए–देह के लिए निवास चाहिए, वस्त्र चाहिए, भोजन चाहिए और भी सब सुख-सुविधायें चाहियें। साथि ही हमें अपने स्वरूप का दिग्दर्शन भी चाहिये, जो हमारा अंतिम एवं उत्कृष्ट लक्ष्य है जिसको पाये बिना हम जन्म-जन्मांतरों तक एक के बाद एक निरर्थक जीवन व्यतीत करते आये हैं, परन्तु अब से ऐसा नहीं होगा। आज हमको साधना प्रारम्भ करनी है। हम साधक हैं क्योंकि जो भारत-भूमि में जन्म लेते हैं वे तो जन्मजात साधक होते ही हैं। तो हमें अपने लक्ष्य को पाना है और वह है **अपने स्वरूप का दिग्दर्शन कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ मैं, बार-बार मैं इस पृथ्वी पर क्यों जन्म लेता हूँ, क्या कर रहा हूँ मैं, क्यों कर रहा हूँ, कहाँ जाना है मुझको, यह सब तमाशा क्या है?** जब किसी जिज्ञासु के हृदय में यह पुकार उठती है, एक जुनून पैदा हो जाता है, तो साधना प्रारम्भ हो जाती है। हम लोग गृहस्थ में हैं। हमको साधन भी चाहियें।

जैसा कि मैंने **'प्रारब्ध'** शीर्षक के प्रवचन में कहा था कि मानव-कर्म दो प्रकार के होते हैं, **'जीवन के लिए**, और दूसरे हैं **'जीवन काहे के लिए'**? इन दोनों कृत्यों में जमीन-आसमान का अंतर है। जीवन के लिए तो पशु भी करते हैं। पशु और मानव में एक बहुत बड़ा अंतर है। जब मानव कर्म करता है तो उनकी दिशा होती है कि जीवन काहे के लिए है। जीवन ईश्वर ने हमें

दिया है, एक-एक क्षण, एक-एक पल, एक-एक प्राण, एक-एक श्वास उसके हाथ में है। आप सब मुझसे सहमत होंगे, जिसने जीवन दिया है जीवन के लिए जो कुछ चाहिये यह वो ही निश्चित करता है, उसने आश्वासित करके भेजा है सबको। नौ महीने सात दिन में माँ के गर्भ में यह विशाल काया बनी जिसकी छः बड़ी कार्य-प्रणालियाँ, पूर्णतया वातानुकूलित व स्वचलित हैं। जैसा कि मैं कई बार कह चुका हूँ कि ईश्वर ने थोड़ी सी भूल कर दी, कि मानव को उत्कृष्टतम बुद्धि दे दी। उसने बुद्धि केवल इसलिए दी थी कि ऐ मानव ! सर्वोत्कृष्ट बुद्धि से मेरी प्रशंसा कर, मेरी वाह-वाह कर, लेकिन इस बुद्धि के बल पर अहमवश यह स्वयं ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश बन बैठा। ईश्वर के कृत्यों में हस्तक्षेप शुरू कर दिया और वहाँ से बना मानव का प्रारब्ध। जीवन के लिए जो चाहिये वह स्वयं प्राप्त होता है। जीवन के लिए आपको सबसे अधिक चाहिए **वायु**, तो प्रभु ने सारा ब्रह्माण्ड वायु से भर दिया, फिर चाहिए **जल**, जल भी प्रचुर मात्रा में उपस्थित है और तीसरा चाहिये खाने के लिए **भोजन,** उसकी भी कुछ कमी नहीं है। जो पशुओं को, जलचरों को, नभचरों को और पृथ्वी के अंदर रहने वाले अन्य जीव-जन्तुओं को खिला सकता है, उसने मानव के लिए भी सब प्रबन्ध किया होगा।

'जीवन के लिए' पदार्थों को एकत्रित करने के लिये साधना की आवश्यकता नहीं है। इन्द्रियों के भोगों के लिए साधन चाहिये। नाक का यदि आप सुख लेना चाहते हैं तो आपको सुगन्ध चाहिये। कान का यदि आप सुख लेना चाहते हैं तो आपको संगीत चाहिये। जीभ का यदि आप सुख लेना चाहते हैं तो आपको स्वादिष्ट भोजन चाहिए। लेकिन क्या साधन और इन्द्रियाँ आपको सुख देने के लिए सक्षम हैं? **नहीं।** उसके साथ भीतरी आनन्द भी चाहिये। यदि आपके हृदय में आनन्द नहीं है, आपके हृदय में उल्लास नहीं है, प्रसन्नता नहीं है तो कितना भी स्वादिष्ट भोजन क्यों न हो और आपकी जीभ कितनी भी स्वस्थ क्यों न हो, आपका भोजन खाने को मन नहीं करेगा। कोई भी भोग आप तभी कर सकते हैं जब साधन हों, हृदय में उल्लास हो, प्रसन्नता हो। इन्द्रिय-निग्रह का अर्थ क्या है? कि

हम इन्द्रियों को उनके भोगों से वंचित कर दें, तो कितनी क्रूर विधि है यह? यदि हम गाड़ी की गति नियन्त्रित करना चाहते हैं तो उसका अर्थ यह तो नहीं कि हम गाड़ी को सड़क के किनारे खड़ा कर दें। गति नियंत्रण में तब होगी जब हम उसको मुख्य मार्ग पर चला रहे हैं। यह बात बहुत विचारणीय है। क्योंकि हम लोग गृहस्थी हैं। हमको स्वादिष्ट भोजन भी खाना है, संगीत भी सुनना है, आँखों का आनन्द भी लेना है, त्वचा का सुख भी लेना है व कामादि सुख भी लेने हैं। तो **'सरस-साधना'** क्या है? इसका एक आध्यात्मिक पहलू बता रहा हूँ आपको, बहुत एकाग्रता चाहूँगा।

नाम तो **सरस-साधना** है, पर कठिन है। देह में पाँच प्राण हैं—**समान, प्राण, उदान, व्यान, अपान**। इन्द्रियों का सुख लेने के लिये सुख-साधनों और स्वस्थ इन्द्रियों के अतिरिक्त हमारे इन प्राणों के सम्पर्क की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए जब नेत्र सुख लेते हैं तो तीन प्राणों की आवश्यकता पड़ती है, आध्यात्मिक सत्य बता रहा हूँ आपको। जब नाक व कान सुख लेते हैं तो उनको दो प्राणों की आवश्यकता पड़ती है। यदि प्राणों का सम्पर्क न हो तो नेत्र व कान सुख नहीं दे सकते। जब काम सुख लिया जाता है तो पाँच-प्राणों की आवश्यकता पड़ती है, इसलिए इसे कहा है **महारति।** यह पशुओं वाला काम नहीं है, महामानवों का, शिव-शक्ति का काम है, इसलिए इसे कहा है **महारति**। इसमें पाँच प्राण आपके मूलाधार में एकत्रित होते हैं। पातांजल योग में या अष्टांग योग में कोई भी ऐसी प्रक्रिया, कोई भी ऐसा योग नहीं है जिसमें आप देह के किसी अंग में पाँचों-प्राण एकत्रित कर सकें। महारति क्रीड़ा में पाँच-प्राण, पंच-महाभूत—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश पाँच तंत्रिका-तंत्र, पाँच-भावों—(**आस्था, समर्पण, विश्वास, प्रेम, श्रद्धा**) के साथ पंच-भावातीत स्थिति होती है—**कर्मातीत, देशातीत, सम्बन्धातीत, कालातीत एवं लिंगातीत।** भगवान श्रीकृष्ण राधा को प्रेम पत्र लिख रहे हैं और आधा पत्र लिखने के बाद वो राधामय हो जाते हैं और बाकी का आधा पत्र कृष्ण के नाम लिख देते हैं। इसे कहा है लिंगातीत स्थिति। आधा पत्र लिखने के बाद वे भूल जाते हैं कि मैं राधा हूँ,

कि कृष्ण हूँ? **राधा को पत्र लिखते-लिखते वो राधामय हो जाते हैं और शेष आधा पत्र कृष्ण, कृष्ण को लिख देता है। इस स्थिति को कहा है लिंगातीत।** तो पाँच-प्राण, पाँच-महाभूत, पंच-तंत्र, पाँच-रस, पाँच-भावों से युक्त, पंच- भावातीत और पाँच देह की स्थितियों—हर्ष, उल्लास, अभय, आरोग्यता एवं साहस से परिपूरित यह महारति क्रीड़ा जब ईश्वर-कृपा से होती है, तो पाँचों-प्राण मूलाधार में एकत्रित हो जाते हैं।

इस महारति से उत्कृष्ट गृहस्थों में यदि संतान उत्पन्न हो तो या वह महायति होगा, या महामति होगा, या महानृप होगा, या महारथी होगा। जैसे भारत में महापुरुष उत्पन्न हुए हैं, अभी भी हैं। ऐसी संतान पैदा नहीं होगी जो समाज के लिए विध्वंसकारी हो और यदि योगी पाँच-प्राण की शक्तियाँ उर्ध्व ले जायें, अपने इष्ट का ध्यान करते हुए तो इससे महाज्ञान उत्पन्न होगा और महाज्ञान के साथ तीन और विभूतियाँ स्वतः उत्पन्न होंगी—**अजरता, अमरता और ऐश्वर्य।** इसी प्रकार जब हम कानों का सुख लेते हैं, तो हम कानों का सुख लेते-लेते संगीत को बंद कर दें। इसके लिये पहले धारणा बनानी पड़ेगी कि मुझे अपने स्वरूप का चिंतन करना है, मुझे साधना करनी है। सरसतापूर्वक संगीत का सुख लीजिये लेकिन इतना मत लीजिये कि आपका सिर-दर्द हो जाये। इसी प्रकार जीभ का सुख लेते-लेते उसको बीच में छोड़ दीजिये। जब हम यह प्रक्रिया रोज़ करते हैं तो हमको साधना के लिए जंगलों में जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। हमारी इन्द्रियाँ स्वतः ही, अपने स्वरूप की ओर जाने लगती हैं, क्योंकि इन्द्रियों के पास अपना सुख नहीं है। यह हमारे आनन्दस्वरूप से सुख लेकर हमको देती हैं। साधनों से जो सुख मिलता है वो सुख हमारे आनन्द-स्वरूप का होता है, जो हमारे भीतर है। योगियों ने व तपस्वियों ने इन्द्रियों को उनके सुख से वंचित कर दिया, मैं उसे **इन्द्रिय-निग्रह** नहीं **इन्द्रिय-दमन** कहता हूँ। निग्रह तब है जब इन्द्रियों को प्रयोग करें और जब इन्द्रियाँ अपने सुख में विभोर हो जायें तब उनको विराम दें। उसके बाद वही इन्द्रियाँ आपको अपने आनन्द-स्वरूप में ले जायेंगीं।

एक युवा जिसके पिता स्वर्ग सिधार चुके थे, माता वृद्धा थीं जिन्हें छोड़कर वो जंगल में चला गया। वहाँ उसने प्राणायाम आदि बहुत तप किया और उसके फलस्वरूप उसमें कुछ शक्ति आ गई। वह एक दिन पेड़ के नीचे बैठा ध्यान में और उस पर एक चिड़िया ने बीट कर दी। वह बहुत क्रोधित हुआ और चिड़िया की ओर क्रोध से देखा तो चिड़िया भस्मित हो गई। वह बहुत प्रसन्न हुआ। यह मैं **इन्द्रिय-दमन** की बात कर रहा हूँ, कि **इन्द्रिय-दमन** से कुछ न कुछ शक्ति आ जाती है। अब यह नौजवान भिक्षा लेने गया, जब उसने भिक्षा के लिए आवाज़ दी तो इतने में उस माता का पति घर में आ गया और माता अपने पति की सेवा में व्यस्त हो गई। उसने अपने पति के हाथ-पैर धुलाये और भोजन परोसा। बाहर यह युवा भिक्षुक खड़ा प्रतीक्षा करता रहा। सोचता रहा कि यह वृद्धा जानती नहीं है कि मैं कौन हूँ? जब वह वृद्धा अपने पति को भोजन करवा कर भिक्षा देने बाहर निकली तो इसकी आँखें क्रोध से लाल थीं। उस माता ने कहा कि बच्चे ! तेरी ये लाल आँखें मेरा कुछ नहीं कर सकतीं, मैं वो चिड़िया नहीं हूँ, जिसे तुम जला दो। अब यह नौजवान हक्का-बक्का रह गया और पूछा कि आपको यह कैसे पता चला? तो वह बोली कि मेरा पहला कर्त्तव्य है पति-सेवा। उसने कहा माता जी मुझे कुछ उपदेश दीजिये। माता ने कहा कि अमुक-अमुक गाँव में एक कसाई रहता है। आप वहाँ चले जाओ। आपको वहाँ इसका उत्तर मिल जायेगा। उस गाँव में पहुँचा तो देखा कि कसाई माँस बेच रहा है, वह ब्रह्मचारी दूर खड़ा हो गया मुँह पर कपड़ा रख कर, कि यह मुझे क्या उपदेश देगा? कसाई ने उसे खड़े देखा, अपनी दुकान बंद की और उसको अपने घर ले गया। घर में वह क्या देखता है? कसाई के वृद्ध माता-पिता बिस्तर पर पड़े हैं और उसकी पत्नी, उसकी माँ के चरण दबा रही है, घर में रामायण का पाठ चल रहा है, तुलसी के पौधे लगे हुए हैं। उस कसाई ने ध्यान लगाया और उससे पूछा कि क्या अमुक-अमुक वृद्धा ने आपको यहाँ भेजा है, जिसे यह मालूम चल गया था कि आपने चिड़िया को भस्म किया है। वह हैरान हो गया कि यह तो उस

वृद्धा से भी आगे निकल गया है। तब कसाई ने उसे समझाया कि आप घर जाओ, आपकी माँ वृद्धा हैं, उनकी सेवा करो, उनके चरणों में बैठो बस और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। जो लोग **इन्द्रिय-दमन** करते हैं और **इन्द्रिय-दमन** करने के बाद उनको कुछ सिद्धियाँ मिल भी जाती हैं, उसके बाद जब वे संसार में आते हैं तो यही इन्द्रियाँ उनको भटका देती हैं। उसके बाद उनको बड़े-बड़े आश्रम चाहिये व अन्य बहुत कुछ चाहिये। इस प्रकार ये पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं।

आप तपस्वी हैं, सद्गृहस्थ तपस्वी होते हैं। आपको अपना लक्ष्य साधना चाहिये, **साधना का अर्थ है 'लक्ष्य-साधना'।** जब बच्चा घर में बीमार पड़ता है तो माता-पिता के दिल पर क्या बीतती है? सारी रात जागना पड़ता है। तभी कहा है कि कोई भी व्यक्ति कितना भी बड़ा क्यों न हो जाये, वह कभी अपने माँ-बाप से बड़ा नहीं हो सकता। जिस व्यक्ति को अपने माता-पिता में श्रद्धा नहीं है, उसको कभी संसार में यश नहीं मिल सकता, कभी उसको संसार में किसी पदार्थ का भोग नहीं मिल सकता। माता-पिता की सेवा करना एक तप है, जो परमावश्यक है उन महानुभावों के लिए जो पृथ्वी पर आकर **सरस-साधना** करना चाहते हैं, जो संसार को भोगना चाहते हैं। जिसके ऊपर उसके माता-पिता की कृपा नहीं होगी उसको कभी संत और सत्संग नहीं मिल सकता। आप सभी उत्कृष्ट मानव हैं। इस सत्संग में केवल वही आ सकता है जिसके ऊपर उसके माता-पिता की कृपा होती है। नहीं तो सबकुछ मिल सकता है लेकिन संत और सत्संग नहीं मिल सकता जब तक आपके माँ-बाप का आप पर वरद्हस्त न हो।

यदि आप सुबह बिस्तर छोड़ देते हैं सूर्योदय से मात्र पाँच मिनट पहले भी, तो आपके जीवन की धारायें बदल जायेंगी। उठना तो आपको है ही, तो क्या सूर्योदय से पाँच मिनट पहले आप नहीं उठ सकते? आपके जीवन में उत्कृष्टता आ जायेगी, विलक्षणता आ जायेगी एवं आप जीवन का भोग कर पायेंगे। जो मानव सूर्य उदय होने से पहले नहीं उठता, वो कभी सौभाग्यशाली नहीं होता। पदार्थ होंगे लेकिन संतुष्टि नहीं होगी। सब कुछ

होगा लेकिन उसके ह्रदय में भय होगा, त्रास होगा एवं विक्षेप होगा। अपने इष्ट के दरबार में हाज़िरी भरिये, थोड़ा हवन, यज्ञ, जप, तप होना चाहिये। जाप का बहुत बड़ा महातम् है, इसका बहुत लाभ होता है। हम खाली बैठे हैं तो जाप कर सकते हैं ईश्वर का। घर में काम करते हुये, खाना बनाते हुए एवं सफाई करते हुए, इस प्रकार बहुत समय होता है। हम जाप करते हुए मन-मस्तिष्क को व्यस्त कर सकते हैं। जाप एक बहुत बड़ा गुण है। जैसा कि मैं पहले भी बता चुका हूँ कि ईश्वर ने मानव को उत्कृष्टतम बुद्धि-शक्ति दी और इस मानव-बुद्धि का अगर सदुपयोग न हो तो यह विध्वंस का कारण बन जाती है। अब उसको रोकने के लिए महापुरुषों ने जाप का महातम् बताया है, कि आप अपने इष्ट का जाप करिये। आज कलिकाल में आपको कोई बड़ी साधना करने की आवश्यकता नहीं है। जाप करते रहिये। जाप कभी अपनी इच्छा से नहीं होता। आपको उसके लिए ईश्वर से प्रार्थना करनी पड़ेगी, कि हे प्रभु ! आप मुझे अपने नाम-जाप का वरदान दो। प्रार्थना करेंगे तो आपका जाप स्वतः चलने लगेगा। जिसको जाप का अमोघ शस्त्र मिल गया तो समझो वो जीवन में सुखी रहेगा। **'नानक दुखिया सब संसार, सो सुखिया जो नाम आधार।'** जाप द्वारा हमारे मस्तिष्क में उठने वाले निरर्थक विचार रुक जाते हैं। हमने कई बार कहा है कि कोई कार्य जब ईश्वर-इच्छा से होता है स्वतः होता है, उसके लिए आपकी बुद्धि को कोई विचार नहीं करना पड़ता। कभी आप अपने अतीत पर विचार करें तो आप पायेंगे कि जीवन में जो विशेष घटनायें हुईं एवं जो विशिष्टतम घटनायें आपके मानस-पटल पर अंकित हैं, उन घटनाओं के घटने में आपकी बुद्धि का कोई भी योगदान नहीं होता। वे घटनायें स्वतः होती हैं, आपकी बुद्धि उसके अनुसार प्रयोग कर ली जाती है, ईश्वर-द्वारा। उसके लिये हमें क्या करना है? **जाप ! जब प्रभु** ने आप से कुछ करवाना होगा तो वह आपकी बुद्धि से स्वयं करवा लेगा। जब आप बुद्धि का प्रयोग करेंगे तो आपको बहुत बड़ी योजनाएँ बनानी पड़ेंगी और जब ईश्वर इसका प्रयोग करता है तो योजनाएँ बनी बनाई आती हैं। उस ईश्वर-रचित कार्य में तीन आनन्द होते

हैं। **प्रथम– कार्य के आरम्भ में आनन्द,** मानों आप किसी व्यक्ति को मिलने जा रहे हैं या कोई व्यक्ति आपको मिलने आया है या आपने किसी व्यक्ति की विवाह-शादी पर विचार-विमर्श करना है, किसी को स्कूल में प्रवेश दिलवाना है, कोई व्यवसाय शुरू करना है तो करने से पहले प्रसन्नता जाग्रत हो, आनन्द हो। **दूसरा–उस कार्य के दौरान आनन्द हो और तीसरा–कार्य की समाप्ति पर आनन्द हो।** जो कार्य ईश्वर-द्वारा सम्पादित हुआ है, उसका अंत भी आनन्द में ही होगा। अपने इष्ट का नाम-जाप बहुत बड़ा अमोघ शस्त्र है, यह साधना का बहुत बड़ा आयाम है।

अपने बुजुर्गों की सेवा आपकी साधना की, उपासना की, एक बहुत बड़ी औपचारिकता है। इसके बिना आप साधना कर नहीं सकते और यदि करेंगे तो वह आपको विक्षिप्त कर देगी। **तो साधना के लिए यह एक और बहुत बड़ा आयाम है कि आप हर व्यक्ति में अपने इष्ट को ही देखें।** आप दुकानदार हैं या आप व्यवसायी हैं और आपके पास कोई ग्राहक आता है तो उस ग्राहक को अपने इष्ट के रूप में दखिये, अरे ! वह आपको कुछ देने आया है। एक चिकित्सक मरीज़ को भगवान के रूप में देखे तो वह आशीर्वाद देगा, वह आशीर्वाद आपकी साधना में जुड़ जायेगा। आपको परम संतुष्टि मिलेगी उस कार्य में। आपको भगवान ने बच्चे दिये हैं। थोड़ा समय उनके साथ बिताइये, आपके संस्कार उनमें पड़ेंगे व उनके विशुद्ध संस्कार जाग्रत होंगे। अपने बच्चों को स्वयं भी पढ़ाइये ! हर रोज़ एक-दो घंटे का समय दीजिये। धन ज्यादा खर्च करने से, मंहगे अध्यापक रखने से बच्चे पास तो हो जायेंगे लेकिन वो शिक्षित नहीं होंगे। उन्हें आप बताइये कि भारत क्या है, भारतीयता क्या है? उनको एक आसन में बिठाइये, आसन-सिद्धि करवाइये। यह शास्त्रीय नियम है योग का कि जब कोई बालक तीन घंटे तक एक आसन पर बैठ सकता है तो उसके अंदर दैवीय शक्तियाँ जाग्रत हो जाती हैं। इसे कहा है **आसन-सिद्धि**। अपने बच्चों को विलासी मत बनाइये। सुबह उठाइये, उनके पास बैठिये, उनकी शिक्षा, ज्ञान में परिवर्तित हो जायेगी। पाश्चात्यानुगमन को छोड़ दीजिये।

सरस-साधना में ब्रह्मचर्य के विषय का बहुत दुरुपयोग हुआ और पता नहीं क्यों हुआ? ब्रह्मचर्य का अर्थ है–**ब्रह्ममय आचरण।** अपने स्वयं के साथ ब्रह्ममय आचरण हो, अपने परिवार, अपनी स्त्री, अपनी संतान, अपने अतिथियों, अपने शत्रुओं, अपने मित्रों के साथ **ब्रह्ममय आचरण** हो। **जब राम उत्पन्न होता है तो रावण भी उत्पन्न होता है।** प्रभु लीला करने आते हैं तो अपनी सारी विधाओं के साथ आते हैं। कि राम और रावण का युद्ध कैसा था? जैसा राम और रावण का युद्ध था। युद्ध के मैदान में रावण जब मृत्यु-शय्या पर था, तो भगवान श्री राम ने अपने अनुज लक्ष्मण को उसके पास भेजा कि रावण महाविद्वान व पराक्रमी है। जाओ ! उससे कुछ सीख कर आओ। लक्ष्मण बहुत अचम्भित हुए। लखन का अर्थ है जो राम को लखता है, बस केवल राम को ही मानता है। अब, क्योंकि प्रभु राम की आज्ञा थी तो लक्ष्मण जी बड़े अनमने हृदय से रावण के पास गये और सिर के पास खड़े हो गये। तो रावण ने उनसे पूछा कि क्यों आये हैं आप? लक्ष्मण ने कहा कि मुझे मेरे भाई ने आपसे शिक्षा लेने भेजा है। रावण ने कहा कि वापिस चले जाइये ! आप शिक्षा लेने के योग्य नहीं हैं क्योंकि जब किसी से कुछ सीखने जाना हो या शिक्षा लेनी हो तो उसके चरणों की ओर खड़े होते हैं और खाली हाथ कभी नहीं जाते। तुम खाली हाथ आये हो और सिर के पास आकर खड़े हो गये हो। लौट जाओ। लक्ष्मण जी लौट आये और उन्होंने युद्ध-भूमि से कुछ लकड़ियाँ एकत्रित कीं और उनका पुलिन्दा उठाकर रावण के पास गये और पाँव की तरफ खड़े हो कर विनती की कि अब कुछ बताइये। लक्ष्मण को रावण ने राजनीति के उपदेश दिये और अंत में कहा कि, 'अपने भाई राम से कहना कि रावण ने जीते-जी उन्हें लंका में पैर नहीं रखने दिया और मैं उनके जीते-जी उनके वैकुण्ठधाम में जा रहा हूँ। यह कहकर रावण ने शरीर त्याग दिया। लक्ष्मण विस्मित हो गये कि अच्छा ! यह इतना विद्वान और ज्ञानी है कि इसे पता है कि भगवान राम कौन हैं?

जिस घर में अतिथि सत्कार होता है वो घर ऐश्वर्यवान हो जाता है। प्रसन्नता से आगंतुकों की सेवा कीजिये। तीन विशेष ऋण जिनसे प्रत्येक

व्यक्ति जन्म लेते ही युक्त हो जाता है यदि इन तीन ऋणों से आप अपने जीवन-काल में मुक्त हो जायें तो साधना द्वारा आप अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। वह तीन ऋण क्या हैं? **पितृ-ऋण, देव-ऋण और ऋषि-ऋण।**

इन्द्रियों का भोग आपको कभी संतुष्टि नहीं देगा क्योंकि इन्द्रियों के भोग के लिए आपको सुख-साधन चाहिए और तब कहीं जाकर आपको आनन्द मिलेगा। यदि आनन्द न हो, इन्द्रियाँ हों, पदार्थ हों, आप उनको भोग नहीं सकते। पाश्चात्य सभ्यता, मात्र इन्द्रियों के सुख-साधन तक है। हमारी संस्कृति शुरू होती है इन्द्रियों से आनन्द में, जबकि भौतिक दौड़ समाप्त होती है इन्द्रियों तक। इन्द्रियों की एक निश्चित क्षमता है। साधनों की भी एक सीमा है। जीवन में कभी ऐसा समय आता है कि आपके पास साधन नहीं होते और वृद्धावस्था में आपकी इन्द्रियाँ शिथिल पड़ जाती हैं तो निराशा हो जाती है क्योंकि अपनी जवानी के सुख याद आते हैं। अपना पद याद आता है, अपना स्वास्थ्य याद आता है। यदि हम अपनी इन्द्रियों को इनकी क्षमताओं के ह्रास से थोड़ा पहले ही छोड़ कर आनन्द में ले जायें तो इससे बड़ा कोई इन्द्रिय-निग्रह हो ही नहीं सकता। जीवन शून्य से प्रारम्भ होता है और शून्य में अंत हो जाता है। दो शून्यों के मध्य में भी शून्य है। यदि आपको यह ज्ञात हो कि इस प्रश्न का उत्तर शून्य आयेगा, तो उस प्रश्न की आप जितनी भी गणना करेंगे, जितनी भी जमा, घटा, भाग व गुणा करेंगे तो वो शून्य ही होगी। इसलिए हम जीवन में जो कुछ भी कर रहे हैं, अपनी बुद्धि के बल से वो शून्य ही है। उस शून्य को यदि आप मूल्य देना चाहते हैं तो उसकी बाईं तरफ एक लगा दीजिये। वह एक क्या है? **वह है–ईश्वर का नाम**। यदि आप एक हटा देंगे तो शून्य का कोई मूल्य नहीं है।

जब अगला साँस हमारे हाथ में नहीं है तो अगले साँस में होने वाला कर्म हमारा कैसे हो सकता है? हम हर कृत्य पर अपनी मोहर लगाते हैं और पकड़े जाते हैं। इसलिए जो कुछ भी हम कर रहे हैं, उसे ईश्वर-समर्पित करना परमावश्यक है। हे प्रभु! इच्छा, इच्छुक, इच्छापूरक एवं इच्छाफल तुम

ही हो। कोई इच्छा उठे तो भी प्रभु को कहना कि यह इच्छा आप ही की इच्छा से उठी है, आप इसे पूरा करो या न करो। यदि इच्छा पूरी नहीं भी हुई तो निराश कभी नहीं होना, आप देखेंगे कि उसके अंदर भी कोई रहस्य होगा। जब आप हृदय से यह समर्पण करेंगे, न केवल समर्पण बल्कि समर्पण का भी समर्पण:—

''जान दे दी, जो दी उन्हीं की थी, हक तो यह है कि हक अदा न हुआ।''

कि, हे प्रभु ! यदि मैं तुझे जान भी दे दूँ तेरे प्रेम में, तेरे इश्क में तो यह जान भी तो तेरी है। हकीकत यह है कि मैं तुझे कुछ नहीं दे सकता। हमें यह प्रार्थना करनी है कि—प्रभु ! इच्छा, इच्छुक, इच्छापूरक

और इच्छाफल तुम ही हो। शिक्षा, शिक्षक, शिक्षार्थी और शिक्षाफल तुम ही हो। परीक्षा, परीक्षक, परीक्षार्थी और परीक्षाफल तुम ही हो। यहाँ तक कि साधना का भी कभी अहम् मत रखना, साधक तुम हो, साधना तुम हो, साध्य तुम हो। जब हम साधना अपने अहम् से करेंगे तो साधना कभी फलित नहीं होगी।

हमने संसार को पकड़ा हुआ है, संसार ने हमको नहीं पकड़ा है। संसार चलता रहता है। हम अपने आपको बड़ा महत्त्वपूर्ण समझते हैं, किसी के जाने से संसार नहीं रुकता। हम भविष्य की चिंता करते हैं तो 100 साल के बाद की सोचो कि सौ साल बाद क्या होगा ? न वहाँ आप होंगे, न जिनकी चिंता है, वे होंगे। यह सरस-साधना का आयाम बता रहा हूँ। जैसे सुबह आप सैर करने जाते हैं ऐसे ही जन्म और मृत्यु के आगे भी चले जाया करिये। मेरे जन्म से पहले मैं कहाँ था ? मेरी मृत्यु के बाद मैं कहाँ होऊँगा ? तुम्हारे बिना दुनिया चल रही थी और तुम्हारे बिना भी चलती रहेगी, यदि आप साधना करना चाहते हैं, जप करना चाहते हैं, तप करना चाहते हैं, वह भी ईश्वर करवा रहे हैं। खुदा और बन्दे में अंतर क्या है ? खुदा अर्थात् खुला हुआ और बन्दा अर्थात् बँधा हुआ। तो हम स्वयं में खुदा हैं लेकिन हम **बँधे से** है। **बँधे से हैं हम। हम बँधे हुए नहीं हैं।** यदि हम किसी भी साधना द्वारा और किसी भी प्रकार से इस सत्य को सिद्ध कर लें तो हम तुरन्त मुक्त हो जाएँगे। यह

मोक्ष हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। हम मुक्त हैं, हमने अपनी मान्यताओं से अपने आपको बाँध लिया है। यह मेरी माँ, यह मेरा पिता, यह मेरी पत्नी, यह मेरा पद, यह मेरी शिक्षा, मैं यह, मैं वह। तो मनीषियों ने इन मान्यताओं से बाहर निकलने का जो सरलतम उपाय बताया वह यह कि इन मान्यताओं को काटने के लिए एक बड़ी मान्यता पर मोहर लगा दीजिये। यह हमारी मान्यताओं का परिणाम है कि हम संसार में फँसे हुए हैं। हमारा सारा संसार हमारे नाम और रूप की मान्यता पर आधारित है। यदि हम अपने नाम और रूप को हटा दें तो हमारा सारा संसार उसी समय ढह जायेगा, अपने नाम व रूप की मान्यता बहुत जटिल है। इससे छूटने के लिये ईश्वर के नाम व रूप की मान्यता, उसका जाप व भजन इत्यादि विभिन्न कृत्य करते हुए इस सरस-साधना द्वारा हम अवश्य कभी न कभी इष्ट-कृपा से **'जीवन-काल में ही जीवन-मुक्त हो सकते हैं।'**

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय।''

(25 जून, 2000)

कारण-देह

आज का विषय कुछ गंभीर है। प्रारम्भ से ही आपकी एकाग्रता चाहूँगा। किसी भी कर्म को जब हम करते हैं, तो उसके चार अंग होते हैं। **सर्वप्रथम** किसी भी कर्म का कोई **कारण** होता है। उसके बाद आता है **कर्त्ता**, तीसरा अंग है स्वयं **कर्म** और चौथा, जो बहुत आवश्यक अंग है, वह है **कर्मफल।** तो कारण, कर्त्ता, कर्म और कर्मफल, ये किसी भी कर्म के चार अंग हैं, जो अपने में अति आवश्यक हैं। उनमें से यदि हम कारण को हटा दें, तो वह कर्म निरर्थक कर्म कहलाता है और **निरर्थक कर्म का कोई फल मिल भी जाये, तो कर्त्ता उस कर्म के फल को भोग नहीं सकता।** मैं इस दिव्य अधिनियम से आज का प्रवचन प्रारम्भ करता हूँ।

परम विलक्षण व उत्कृष्ट मानव-देह ईश्वर ने हमको दी है। इसको बनाने के पीछे भी कुछ कारण था। माँ के गर्भ में इस देह का निर्माण हुआ, पूर्णतया स्वचलित एवं वातानुकूलित देह, जिसकी एक कोशिका का मानव-बुद्धि निर्माण नहीं कर सकती, एक बाल भी हम नहीं बना सकते, यह नौ महीने में हमको मिली। जिसका कारण कौन था? **ईश्वर।** उसका कर्त्ता कौन था? **ईश्वर।** क्या हम यह कह सकते हैं कि माँ के गर्भ में हमने अपनी देह का निर्माण स्वयं किया? **नहीं।** यह बहुत नया आयाम रख रहा हूँ आपके सामने। इस मानव-देह के निर्माण का कारण और कर्त्ता **ईश्वर** ही है। मानव-देह की प्राप्ति के चारों आयाम—**कारण, कर्त्ता, कर्म, कर्मफल** ईश्वर ही थे। यदि हम स्वयं से पूछें कि अमुक-अमुक समय पर हम उत्पन्न क्यों हुए, एक विशिष्ट स्थान पर, एक विशिष्ट माता-पिता से उत्पन्न क्यों

हुए? तो हमारा अति विलक्षणतम बुद्धि के द्वारा उत्तर होगा, कि हम नहीं जानते। अमुक परिवार में, अमुक परिस्थितियों में, हम उत्पन्न क्यों हुए? हम नहीं जानते। हम किसी विशिष्ट व्यवसाय में क्यों हैं, हमारी विवाह-शादी अमुक स्त्री अथवा पुरुष विशेष से क्यों होती है, हमारी संतान अमुक-अमुक प्रतिभाओं से युक्त क्यों होती है और हमारी मृत्यु कब होगी, कैसे होगी, कहाँ होगी? हम कुछ भी नहीं जानते अर्थात् जब जीव उत्पन्न होता है, मानव के रूप में और उसके बाद जो जीवन की विशिष्ट घटनायें होती हैं, उसका भी कारण कोई और है, आप मुझसे सहमत होंगे। **जिस भी परमोत्कृष्ट कृत्य के कारण को मानव-बुद्धि नहीं जानती और न जान सकती है, यदि वह कृत्य स्वतः भाव से हुआ है और आनन्दमय है तो वो कृत्य ईश्वरीय है।** हमारी देह के उत्पन्न होने का एक कारण है, हमारे मरने का एक कारण है, हमारी विवाह-शादी का एक कारण है, हमारी तथाकथित शिक्षा का कारण है, हमारे उठने का कारण है, हमारे बैठने का कारण है, हमारे हँसने का कारण है, रोने का कारण है। विलग हो गये हैं हम अपने कारण से।

हमारी उत्कृष्टतम बुद्धि यह नहीं जानती है कि हम विश्व में क्यों लाये गये हैं? लेकिन हम जी रहे हैं। इसमें हमारा कोई दोष नहीं है। जैसे ही हमारी बुद्धि का विकास हुआ तो हमें एक नाम-रूप दे दिया गया। रूप तो था ही, एक नाम भी दे दिया गया और हमने अपना भविष्य बनाना शुरू कर दिया। इस नाम-रूप की सृष्टि पर हमारा सारा जगत आधारित हो गया। कोई माँ, कोई पिता, कोई भाई, कोई बहिन, कोई संतान, कोई पद, कोई रहने का स्थान। यह समस्त आडम्बर हमारे नाम-रूप पर आधारित था और हम अपने कारण से वंचित हो गये। हम स्वयं इस जीवन के ठेकेदार बन गये, कि मुझे यह जीवन जीना है और यहाँ से सिलसिला शुरू होता है **जीव-सृष्टि का।** हमें तो यह भी नहीं मालूम कि हमें पृथ्वी पर लाया क्यों गया है, इसका कारण क्या है? इसको जानने की हमारे पास फुर्सत ही नहीं थी और हम स्वयं ठेकेदार बन गये, कि **''मुझे यह जीवन जीना है, मुझे अपनी संतान की रक्षा करनी है''। ''मुझे यह करना है, वो करना है,''** न

जाने कितने-कितने आडम्बर रच लिये और कितने तथाकथित कर्त्तव्य पाल लिये। तदनुसार उस कर्म को करना शुरू किया, जिसका कारण हम जानते हैं। **देह मिलने का कारण हम नहीं जानते, लेकिन इस देह से हमने वह कर्म किये जिसका कारण हम जानते थे और हमने भागना शुरू कर दिया।** आज सारे विश्व के बुद्धिजीवियों की यही तथाकथित दौड़ है। वहाँ से शुरू हुई जीव-सृष्टि। इस प्रकार मानव को कुछ प्राप्ति हुई, जिसका भोग वह मानवों कभी नहीं कर सकता क्योंकि वो प्राप्ति का कारण जानता है। बड़ी विचित्र बात रखी है आपके सामने, लेकिन यह परम सत्य है। इस भारत-भूमि कीआध्यात्मिक देन, आपके सम्मुख बहुत सरल करके रख रहा हूँ।

इतने बड़े-बड़े समुद्र, यह वसुन्धरा, वसुन्धरा के सातों तल, यह आकाश, यह नक्षत्र, यह सूर्य-चन्द्रमा, यह पर्वत-श्रंखलायें, असंख्य जीव-जन्तु, वनस्पतियाँ और न जाने क्या-क्या ईश्वर ने रचा। मानव-बुद्धि इसे जान नहीं सकती, पूरे ब्रह्माण्ड में एक ही बल्ब, एक ही सूर्य लगा दिया और सर्वोत्कृष्ट चमत्कार था—**मानव-देह।** एक कोशिका की संरचना जब हम देखते हैं, तो बुद्धि चकित हो जाती है। स्वयं कारण बनकर (स्वयंभू) अपने आप में ब्रह्मा, विष्णु और महेश बन कर हमने कार्य करना शुरू किया। जिस कार्य का कारण हम स्वयं जानते थे, उसके फल को हम भोग नहीं सकते। यह जीव-सृष्टि की बात कर रहा हूं उसको कौन भोग सकता है? उसको वो भोगता है, जो कि जीवन काहे के लिए मिला है, यह जानने के लिए कार्य कर रहा है। आज अशान्ति क्यों है? जिनको हम तथाकथित विकसित देश कहते हैं, वो निकृष्ट जीवन जी रहे हैं। बुद्धि बहुत तेज़ है, बहुत कुछ बना रहे हैं लेकिन रात को सोने के लिए शराब पीनी पड़ती है। भूख के लिए दवा लेनी पड़ती है। बहुत अकेले हो गये हैं वे। जब व्यक्ति अपने **'कारण'** से वंचित हो जाता है, उस ईश्वर से वंचित हो जाता है, तो भटक जाता है। तीन देह हमारे शास्त्रकारों ने कही हैं—**स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण।** ईश्वर हमारी देह का एवं हमारी देह परआधारित सृष्टि का **'कारण'** है। जब हम अपनी

बुद्धि के तथाकथित अहम् से **कारण** से वंचित हो कर दिन रात काम करते हैं तो जो कुछ प्राप्त होता है, कानूनन उसका भोग हम नहीं कर सकते, यह बुद्धिजीवी नहीं जानते। यदि हम भोग करना चाहते हैं तो हमें **'कारण'** से सम्पर्क करना होगा। यह दिव्य अधिनियम है। कोई भी इसे नकार नहीं सकता।

ईश्वर ने सृष्टि किसी कारण से बनाई है। मैं कई बार स्वप्न-सृष्टि, निद्रा का उदाहरण आपके सामने रख चुका हूँ। जब हम बहुत प्रगाढ़ निद्रा में सो रहे होते हैं, सुबह उठते हैं, आनन्दित होते हैं, कोई पूछता है कैसी नींद रही? तो हम कहते हैं बड़ा आनन्द आया। कैसा आनन्द? आपने अपनी इन्द्रियों का कोई सुख नहीं लिया। तो आनन्द काहे का लिया? इसको शास्त्रों ने कहा है **अभावमय आनन्द।** क्योंकि जब वो प्रगाढ़ निद्रा थी तो उसमें आनन्द की अनुभूति करने वाला मानव सो रहा था और जब वो जाग्रत होता है तो उस आनन्द का प्रभाव उसको यह कहने के लिए बाध्य करता है कि मैंने नींद का आनन्द लिया। जब हम सो रहे होते हैं तो अपने नाम-रूप की सृष्टि से परे होते हैं। हमारा कोई धर्म, कर्म, कर्त्तव्य, लिंग, कोई शिक्षा नहीं होती। हमारी डिग्रियाँ नहीं होती, कोई पदवी, कोई संतान, कोई सम्बन्धी नहीं होता। हम धर्मातीत, कर्मातीत, कर्त्तव्यातीत, देशातीत, लिंगातीत स्थिति में होते हैं। हम होते हैं, लेकिन हम अपने नाम और रूप से परे होते हैं। वह है—**हमारी कारण-देह, जो हमारी है।** पाँच स्थितियाँ हमने बताई थीं जब हम होते हैं लेकिन अपने नाम और रूप से परे होते हैं **प्रगाढ़ निद्रा, मूर्छा, विस्मृति, तुरिया-समाधि और मृत्यु।** योगियों ने अनुमान लगाया कि यदि उस प्रगाढ़ निद्रा जैसी स्थिति जागृति में बन जाये, जिसमें हम अपने नाम और रूप से परे हों, लेकिन हम हों, तो कितना विचित्र आनन्द आयेगा और वहाँ से दृष्टिकोण शुरू हुआ समाधि का। तुरिया अवस्था में हमें अपना अनुभव होता है, कि **'मैं हूँ',** लेकिन हम अपने नाम और रूप से परे होते हैं। वह परमानन्द की स्थिति यदि क्षण भर के लिए भी किसी को प्राप्त हो जाये, तो वह संसार के समस्त दुःखों को भूल जाता है। बार-बार उसको

उस स्थिति में जाने की इच्छा होती है।

हम अपनी जीव-सृष्टि में आये, बुद्धि का विकास हुआ और उसके साथ हमने अपनी सृष्टि का निर्माण शुरू किया। प्राप्तियों के पीछे भागने लगे हम। कोई धन की प्राप्ति के लिए, कोई पद की प्राप्ति के लिए, कोई नाम की प्राप्ति के लिए, कोई यश के लिए। सारा संसार भाग रहा है और वह प्राप्तियाँ हुईं, लेकिन उन प्राप्तियों को भोगने का अधिकार नहीं मिला। अगर हम आपसे प्रश्न पूछें कि जिन वस्तुओं को आप प्राप्त करना चाहते हैं, उपलब्ध करना चाहते हैं तो क्या यह आवश्यक है कि आप उनको प्राप्त कर लेंगे? **नहीं।** यह आवश्यक नहीं है। आपको वह वस्तु प्राप्त हो भी सकती है और प्राप्त नहीं भी हो सकती। क्यों प्राप्ति चाहते हैं आप? उसको भोगने के लिए। यदि आपको कोई वस्तु प्राप्त भी हो जाती है तो क्या उसका भोग निश्चित है? प्राप्त कोई और करता है, भोगता कोई और है। धन कोई कमाता है, खाता कोई और है। मकान किसी का होता है, उसमें रहता कोई और है, पद किसी का होता है, भोगता कोई और है। ऐसा क्यों है? इसका आज स्पष्ट निर्णय होना चाहिए। कानून क्या है?

प्राप्ति और भोग के बीच एक कड़ी है–**अधिकार।** भले ही आपके द्वारा प्राप्त कोई भी सुख-सुविधा की वस्तु हो, जब तक आपको उस पर अधिकार नहीं होगा आप उसको भोग नहीं सकते। आप पैसा देकर मकान की रजिस्ट्री करवा सकते हैं, न्यायालय आपको प्राप्ति का अधिकार तो दे देगा लेकिन आप उस मकान में आनन्दपूर्वक रह सकें, क्या कोई न्यायालय इसका हकूक दे सकता है? **नहीं।** आप धन प्राप्त कर सकते हैं, उस धन को सुख से, आनन्द से, संतोष से आप भोगें, कोई कोर्ट आपको इसका अधिकार नहीं दे सकता। तो यह अधिकार कौन देगा? **यह अधिकार देगा आपको आपका 'कारण' यानि–ईश्वर, जिसकी वजह से आप हैं।** हमें उस कोर्ट में प्रार्थना-पत्र देना पड़ेगा, कि हे प्रभु! अमुक-अमुक वस्तु मुझे तुम्हारी कृपा से प्राप्त हुई है, जो मेरी नहीं है। **उसके भोग के अधिकार के लिए आपको उसकी प्राप्ति के अधिकार का समर्पण करना होगा।** तो क्या प्रत्येक वस्तु

के लिए आप हर रोज़ प्रार्थना करते रहेंगे। इसके लिए एक छोटा सा तरीका बता रहा हूँ। जितना भी मेरा विश्व है उसकी नींव क्या है? मेरी अपनी **देह।** तो क्यों न हम अपनी देह का ही समर्पण कर दें तो देह पर आधारित सारी सृष्टि स्वतः ही ईश्वर-समर्पित हो जायेगी। इसके विपरीत हम अपनी देह के साथ तद्‌रूप हो जाते हैं, कि मैं यह देह हूँ, अपनी बुद्धि-द्वारा यह जानते हुए कि जिसका न मैं कारण हूँ, न कर्त्ता हूँ, न मैं वह कर्म हूँ, जिस कर्म के द्वारा यह देह बनी है और न मैं कर्मफल हूँ। हम जानते हैं कि अगला श्वास हमारे हाथ में नहीं है, लेकिन फिर भी हम इस देह पर अधिकार करते हैं और जीव-सृष्टि में उलझ जाते हैं और उलझते चले जाते हैं। जन्म-जन्मांतरों तक हम उलझते चले जाते हैं, फिर पैदा होते हैं, फिर मरते हैं और यह काल-चक्र चलता रहता है।

उत्कृष्टतम बुद्धि के मानव और निकृष्टतम बुद्धि के मानव में अंतर क्या है? पशु-सृष्टि में, पशु को भी अपने **'कारण'** का ज्ञान नहीं है और उत्कृष्टतम बुद्धि के मानव को अपने **'कारण'** ईश्वर का ज्ञान होते हुए भी वह **'कारण'** की उपेक्षा कर रहा है। पशु को यद्यपि अपने **'कारण'** का ज्ञान नहीं है लेकिन उसको अपने कृत्यों का अहम् भी नहीं है। जबकि मानव, जो अपने **'कारण'** को अनदेखा कर रहा है, उसको अपने कृत्यों का अभिमान है। इसलिए पशु पुण्य-पापों से रहित है। उदाहरण के लिए आप सड़क पर जा रहे हैं। एक साँड ने सींग मार दिया तो हम साँड को पापी नहीं कहते, बल्कि जिसको सींग मारा है, उसको कहते हैं कि तुमने पाप किया होगा इसलिए साँड ने सींग मारा है। दो आदमी सड़क पर जा रहे हैं, एक को कुत्ते ने काट लिया, कुत्ते को पापी क्यों नही कहते? क्योंकि उसको अपने कृत्य का अभिमान नहीं है। बहुत विचारणीय बात है। मानव-शिशु को न्यायालय सज़ा क्यों नहीं देता? क्योंकि उसने अपराध जानबूझ कर नहीं किया। न्यायालय भी सज़ा देने से पहले उम्र देखता है कि उसकी बुद्धि परिपक्व थी, कि नहीं थी। अर्थात् पुण्य-पाप, शुभ-अशुभ कृत्यों को करने वाली, उनको मान्यता देने वाली हमारी बुद्धि है। बुद्धि किसलिए ईश्वर ने मानव को

दी होगी? यह जानना बड़ा आवश्यक है। क्या अपनी देखभाल करने के लिए, क्या रोटी कमाने के लिए? जबकि उत्कृष्टतम बुद्धि का मानव यह जानता है कि विशालकाय ह्वेल मछली का कोई कारोबार नहीं चलता, कोई फैक्टरियाँ नहीं हैं, कोई उद्योग नहीं हैं। उनको भोजन मिलता है। उनको अनुकूल वातावरण मिलता है। उनके बच्चे पैदा होते हैं, उनकी भी देखभाल होती है और सबकुछ होता है। वो बीमार नहीं पड़ते। लेकिन मानव ने एक छोटे से पेट के लिए उस उत्कृष्टतम बुद्धि का प्रयोग करना शुरू किया, जिसके लिए जानवर भी नहीं करते। **महादुर्भाग्य !** यह दुर्भाग्य नहीं महादुर्भाग्य है।

दुर्भाग्य यह है कि **'कारण'** से जुड़े होने के बावजूद हम अपने आपको **'कारण'** से वंचित समझते हैं लेकिन **'कारण'** हमको नहीं छोड़ता क्योंकि सारी सृष्टि का रचयिता है **वह**। वह हमको कैसे छोड़ेगा? हम उससे अपनी बुद्धि के अहम् से **छुटे से हो जाते हैं** और संसार से बँधे जाते हैं। हम संसार से बँधे हुए नहीं है, संसार से **बँधे से** हैं। वहाँ से सिलसिला शुरू होता है हमारी जीव-सृष्टि का, हमारे दुखों, भय, विक्षेप, रोगों व त्रास का। कितना भारी जोखिम हम ले लेते हैं एक अपने **'कारण'** से वंचित से होकर। बुद्धि के अहम् से अपने आपको हम पूर्णतया नष्ट कर देते हैं और आगे आने वाली संतानों को भी। हमारी कारण-देह जो धर्मातीत, कालातीत, देशातीत है और जन्म-मृत्यु से रहित है, उससे हम सम्पर्क कैसे रखें? यह बहुत महत्त्वपूर्ण विषय है। बिना अधिकार के आप किसी वस्तु को भोग नहीं सकते। मात्र **'कारण'** ही आपको इसका अधिकार देगा। इसलिए **आप अपनी देह रोज़ ईश्वर को समर्पित अवश्य करिये।**

जो स्वयं में निराकार है, उस **'कारण'** के साथ हम सम्पर्क कैसे साधें? क्योंकि जब हम सम्पर्क साधना चाहेंगे, उस समय हम साकार होंगे एक नाम-रूप में होंगे, तो अपने **'कारण'** को भी एक नाम और रूप दे दीजिये, बड़ा आसान काम है। हमारा सारा जगत भावमय है। किसी ने अपने आपको पैदा होते नहीं देखा है। **हम एक अनजान को** अपनी मान्यता

से अपनी माँ बना लेते हैं, किसी को अपना पिता। यह सारी भावमय-सृष्टि है। इसी मान्यता से हम उस **'कारण'** को भी एक नाम और रूप दे दें। उसको नाम और रूप में मानकर उसके साथ एक सम्बन्ध स्थापित कर लीजिये, जैसे आपने संसार में स्थापित किये हुए हैं। **हमारा 'कारण' ही हमारा इष्ट है**, जिसके छः गुण हैं—**अति सौन्दर्यवान, महा ज्ञानवान, अति बलवान, ऐश्वर्यवान, त्यागवान, ख्यातिवान।** यह है **मेरा कारण-स्वरूप,** जो हर्ष, उल्लास, अभय, आरोग्यता, सर्वसम्पन्नता, शक्ति, मस्ती से परिपूरित है, जो कृपा का एवं आनन्द का सागर है। **ऐसा है मेरा कारण-स्वरूप, जो धर्मातीत, कर्मातीत, कालातीत, कर्त्तव्यातीत, देशातीत है।** उसको कोई नाम-रूप दे दीजिये और ईश्वर के लिए, कम से कम ईश्वर को धर्म-कर्म में मत बाँटिये। जो लोग बाँधते हैं, वहाँ से शुरू होती हैं लड़ाइयाँ। आज विश्व में 80 प्रतिशत लड़ाइयाँ इसलिये हैं क्योंकि हमने अपनी तुच्छ तथाकथित विलक्षण बुद्धि से अपने **'कारण'** को भी धर्म-कर्म में बाँट लिया है।

जब आपने अपने **'कारण'** को, अपने सद्गुरु को धर्म-कर्म में बाँट लिया तो लड़ाइयाँ होंगी, गोलियाँ चलेंगी, देश व समाज बँट जायेगा, जो आज बँट गया है। अपने **'कारण'** को, ईश्वर को तो बक्श दीजिये, हमने किसी को भी नहीं बक्शा है। इस बात का ख्याल रखना और इस बात का प्रचार-प्रसार करना। आपका **'कारण'** एक ही है, उसको कुछ भी नाम दे दो, कुछ भी रूप दे दो, साकार मान लो, निराकार मान लो, उसके साथ सम्बन्ध पैदा कर लीजिये। आप उस निराकार को साकार में प्रकट कर सकते हैं, यह सत्य है, ऐसा हो सकता है। मनीषियों ने खुली पसन्द रख दी। यदि आपको नदियाँ पसन्द हैं, तो आप गंगा मैया, जमुना मैया को इष्ट मान लो, पत्थर पसन्द हैं तो शिवलिंग को मान लो, ग्रह-नक्षत्र पसन्द हैं तो सूर्य भगवान, चन्द्र भगवान को मान लो, पेड़ अच्छे लगते हैं, पीपल नारायण को इष्ट मान लो। क्योंकि आपका अपना एक नाम और रूप है और आप अपने **'कारण'** से सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। **उससे सम्बन्ध स्थापित किये**

बिना आप अपनी देह व संसार की उपलब्धियों को भोग नहीं सकते। जो व्यक्ति अपने **'कारण'** से वंचित है, जैसा कि मैंने प्रारम्भ में कहा था, उसकी देह द्वारा जितनी भी प्राप्तियाँ होंगी, भले ही वो कितनी विलक्षण बुद्धि का हो, सम्पन्न हो, कितनी ही प्रतिभाओं से युक्त हो, वह प्राप्त उपलब्धियों का भोग नहीं कर सकता। भोग वो करेगा, जो "जीवन काहे के लिए है" यह जानने के लिये प्रयास कर रहा है, जो पुरुषार्थी है। **पुरुषार्थ = पुरुष + अर्थ।** पुरुष का अर्थ है चेतन सत्ता, मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मुझे कहाँ जाना है, मैं क्यों लाया गया हूँ? इसको जानने के लिए किए गये पुरुषार्थ कर्म भारत का ही उत्पाद है। पुरुषार्थ के चार सोपान हैं, **अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष** तथा दो आयाम हैं—**साधना और उपासना।**

प्रभु को किसी नाम-रूप में मानकर उससे सम्बन्ध स्थापित करें व उसका नाम-जाप करें। गुरु नानक देव जी महाराज ने कहा है, **"नानक दुखिया सब संसार, सो सुखिया जो नाम आधार।"** बहुत बड़ा दर्शन है यह। जिसने उस **'कारण'** के साथ सम्पर्क साध लिया है, उसका नाम जपता रहा है, उसका उसके साथ सम्पर्क हो ही जायेगा और वह **'कारण'** ही उसकी बुद्धि का इस्तेमाल करेगा। जो कुछ उसने करवाना होगा, वह स्वयं करवायेगा। जो प्रभु द्वारा **ईश-सृष्टि** में कृत्य होते हैं, वह स्वतः होते हैं। वह कभी भी आपकी बुद्धि से नहीं होते। आपकी बुद्धि तदनुसार प्रेरित और परिवर्तित कर दी जाती है। आप सोच कुछ और रहे होते हैं, हो कुछ और जाता है। जा कहीं और रहे होते हैं और पहुँच कहीं और जाते हैं। मिलना किसी को चाहते हैं, मिल कोई और जाता है। तो आप उसका नाम-जाप करते रहिये। उसका नाम-जाप करने से आपको अपने नाम-रूप की और उस पर आधारित सृष्टि की भ्रान्तियाँ समाप्त हो जायेंगी। अगर आप किसी वस्तु का भोग करना चाहते हैं तो सर्वप्रथम आपको **'कारण'** से जुड़ना होगा और दूसरे आपको उस वस्तु की अहमियत समाप्त करनी होगी। अगर आप धन का भोग करना चाहते हैं तो आपके दिल-दिमाग में जब तक धन का महत्त्व समाप्त नहीं होगा, आप धन का भोग नहीं कर सकते। आप अपने पद

का भोग करना चाहते हैं, आपको दिल-दिमाग से उस पद की अहमियत अवश्य खतम करनी होगी। **यदि आप अपने नाम का भोग करना चाहते हैं तो आपको अपने नाम को ईश्वर के नाम में समाहित करना होगा।** इसलिए नाम-जाप करते रहिये। यह दिव्य अधिनियम है। नहीं तो, इकट्ठा करेंगे आप और भोगेगा कोई और। जिसने अपने नाम को भोगा है, वह अपने **'कारण'** से जुड़ा हुआ है।

पहला आयाम कि उसको नाम-रूप में मानकर निरन्तर उसका जाप करिये। फिर उसका मनन करिये। यदि आप बुद्धिजीवी हैं, ईश्वर को मान्यता नहीं दे सकते तो बुद्धि से विचार करिये। जो बात आप किसी महापुरुष के सत्संग में सुनते हैं, पढ़ते हैं, उस पर ईमानदारी से विचार करिये और विचार के लिए बुद्धि नहीं, विवेक चाहिए। क्योंकि विवेक-बुद्धि और बुद्धि में बड़ा अंतर है। बुद्धि आपको **'कारण'** से वंचित कर देगी, **विवेक-बुद्धि आपको 'कारण' से जोड़गी।** तो दूसरा आयाम है कि आप विवेक-बुद्धि से विचार करिये, विचार के बाद उस पर चिंतन करिये और जब आपकी विवेक-बुद्धि निश्चयात्मक हो जाये कि हाँ ! कोई **'कारण'** है तो वह फाइल को मन के पास भेज देगी। यह क्रम बता रहा हूँ। मन को मनन करने दीजिये। मनन के बाद जब मन आश्वस्त हो जाता है तो उसके बाद होता है **नित्याध्यासन**, कि यही सत्य है, यही सत्य है, यही सत्य है और जब प्रभु-कृपा से, सद्गुरु-कृपा से, आत्म-कृपा से उस पर मोहर लग जाये आपके मन की, तो वो सिद्धि हो जाती है।

तीसरा आयाम जो बहुत कठिन है, उसमें अपनी देह को ही हटा दीजिये, उसको संतों ने कहा है **'लय-योग'**। लय का अर्थ है समाप्त। साधना द्वारा, ध्यान द्वारा, चिंतन द्वारा जब आप अपनी समस्त देह को लय कर देते हैं, ऐसी योगिक स्थिति है जिसे कहा है **लय-योग**, कुछ क्षण के लिए आप नाम और रूप से परे हो जाते हैं। तो लय-योग में एक मानसिक स्थिति उत्पन्न होती है, जिसका मैं पहले वर्णन कर चुका हूँ और वो स्थिति है **एकान्त।** एकान्त का सन्धिविच्छेद करिये **एक + अन्त। एकान्त** का अर्थ

यह नहीं कि आप किसी जंगल में, निर्जन स्थान पर बैठ गये, किसी नदिया के किनारे या समुद्र के किनारे बैठ गये। जहाँ एक अन्त होता है, वह मानसिक स्थिति उत्पन्न होती है लय-योग में, जब आप एक का अन्त करते हैं। उसको दो अन्त क्यों नहीं कहा? तीन अन्त क्यों नहीं कहा? यह बड़ी विचारणीय बात है। **एकान्त** क्योंकि मेरे एक नाम-रूप पर मेरी सारी सृष्टि का निर्माण है। यह मेरा देश, यह मेरा धर्म, यह मेरे माता-पिता, यह मेरी संतान, यह मेरा पद, यह मेरी डिग्री, तो जितनी हमारी सृष्टि है, वो सम्पूर्ण आधारित है हमारे एक नाम और रूप के ऊपर। जब आप अपनी देह को ध्यान के द्वारा कुछ क्षण के लिये हटा देते हैं, उसको कहा है **लययोग** और उस स्थिति में जो मानसिक स्थिति उत्पन्न होती है, उसे कहा है **'एकान्त'**। जब कभी सौभाग्यवश किसी रोज़ आपकी एकान्त की मानसिक स्थिति उत्पन्न हो जायेगी तो आपके भीतर से ज्ञान स्वयं प्रकट हो जायेगा। क्योंकि जो शेष रहेगा वह है **'कारण'**। जो स्वयं में सच्चिदानंद है। उसके बाद जो अनुभूतियाँ होती हैं, उसे कहा है आत्मानुभूति। जो आपकी अपनी अनुभूति होती है, आपको कहीं से ज्ञान लेने नहीं जाना पड़ता।

जैसा कि मैंने एक बार गुरु-पूर्णिमा के अवसर पर कहा था, सद्गुरु ज्ञान नहीं देता, सद्गुरु आपके भीतर के ज्ञान को जाग्रत करता है। यदि सद्गुरु का हँसना, सद्गुरु का रोना, सद्गुरु का जागना, सद्गुरु का प्यार करना आपके भीतर के ज्ञान को जाग्रत नहीं करता, आपके **'कारण'** से आपको जोड़ नहीं सकता तो वह समर्थ सद्गुरु नहीं है। उसका हर आयाम उसके पास बैठना, उसकी खामोशी, उसका बोलना आपको अपने **'कारण'** के साथ जोड़ने में समर्थ होता है। सद्गुरु किसी को ज्ञान नहीं देता, वह आपके अपने ज्ञान को जाग्रत करता है। इसलिए यदि आप आनन्दपूर्वक जीवन बिताना चाहते हैं तो कभी अपने **'कारण'** से, जो आपका सचिदानन्द स्वरूप है जो जन्म-मृत्यु से रहित है, जो अविरल है एवम् अकाट्य है, उससे विमुख नहीं होना।

ईश्वर ने अति विलक्षण मानव-देह का निर्माण किया, इस देह के

निर्माण का कारण स्वयं ईश्वर है; जिसको हम अपनी **कारण-देह** कहते हैं। हमारी देह के निर्माण का कारण हम नहीं हैं, हमारी देह के निर्माण का कारण **ईश्वर** है। उस ईश्वर ने इस देह को जो अपने आप में एक बहुत बड़ा चमत्कार है, पूर्णतया स्वचलित व वातानुकूलित बनाया है। पंच- महाभूतों **पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि एवं आकाश** से निर्मित इस मानव- देह में आकाश के समस्त नक्षत्र, सूर्य-चन्द्र तारागण एवं ऐसे नक्षत्र हैं जो हमारे ज्ञान में भी नहीं हैं। योगी लोग सूर्य-ग्रहण, चन्द्र-ग्रहण आदि का समय और सब कुछ अपने ध्यान में ही आभास कर लेते हैं। वायुमंडल में जितनी प्रकार की गैसें हैं, वे सारी मानव-देह में हैं। पृथ्वी में जितने तत्त्व हैं, जितनी धातुएँ हैं व अधातुएँ हैं सब मानव-देह में हैं। एक तत्त्व के थोड़ा सा भी कम होने पर कोई न कोई रोग उत्पन्न हो जाता है। 70 प्रतिशत देह का भार पानी के कारण है। मानव-देह पंच-महाभूतों की एक मुट्ठी, एक विशेष ईश्वरीय चमत्कार है जिसका हम चिकित्सक एक बाल तक नहीं बना सकते। जन्म-जन्मांतरों के संस्कार लिए हुए जीव प्रवेश करता है, माता के गर्भ में, पाँचवें महीने में। सबसे विचित्र बात यह है कि स्वयं ईश्वर उसके कारण हैं, स्वयं ईश्वर इसके कर्त्ता हैं और मानव-देह के निर्माण का सारा कार्यक्रम ईश्वर स्वयं करते हैं। जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण मानव-देह अपनी विभिन्न विधाओं, संस्कारों और अपनी प्रतिभाओं को लिए हुए तैयार होती है। लगभग साढ़े चार-पाँच महीने में माँ के गर्भ में मानव-देह पूर्णतया तैयार हो जाती है और उसके बाद यह दी जाती है, किसको ? **जीवात्मा को**। जैसी जीवात्मा इसमें प्रवेश करती है, उसी के अनुसार प्रभु उस देह का निर्माण स्वयं करते हैं। उसी के अनुसार देह का और समस्त परिस्थितियों का स्वतःभाव से प्रबन्ध होता है, भीतरी जगत में और बाहरी जगत में।

एक बात बहुत एकाग्र करने की है कि किसी कर्म का फल, उपलब्धि नहीं है। व्यक्ति कोई बहुत सुन्दर मकान बनाना चहता है, धन इकट्ठा करता है और अन्ततः बहुत सुन्दर मकान निर्मित कर लेता है। जब कोई विद्यार्थी डिग्री प्राप्त कर लेता है या कोई व्यक्ति जब कोई पद प्राप्त कर लेता है तो

वो प्राप्ति कर्मफल नहीं है, वह मात्र उपलब्धि है। कर्मफल है कि उस प्राप्ति का हम आनन्दपूर्वक भोग कर सकते हैं या नहीं। यदि हम उस प्राप्ति का आनन्दपूर्वक भोग नहीं कर सकते तो वह उपलब्धि हमारे लिए घातक होगी। वह हमारे जीवन को बहुत विक्षिप्त कर देगी। किसी कर्म का कर्मफल कोई उपलब्धि नहीं है बल्कि उस उपलब्धि के बाद की मानसिक स्थिति है। यदि आनन्दपूर्वक भोग का अधिकार आपको ईश्वर की ओर से मिल गया है तो आपको उपलब्धि की भी आवश्यकता नहीं है। यह बात बहुत समझने की है। आज समस्त ब्रह्माण्ड में जितने बुद्धिजीवी मानव हैं, सब उपलब्धियों की ओर भाग रहे हैं और अज्ञानवश उस प्राप्ति को ही कर्मफल मान रहे हैं। ऐसा नहीं है।

अब आ जाइये मानव-देह पर। स्वयं परमात्मा ने जीवात्मा की आवश्यकता के अनुसार, विशेष परिस्थितियों में एवं एक विशेषतम समय पर मानव-देह के निर्माण की नींव रखी। मैंने **'कर्म'** के चार अंग बताये थे। लेकिन यहाँ पर दो बातें और हैं, किसी भी **कर्म** का प्रथम एक कारण होता है और उसके बाद उसका **कर्त्ता** होता है। **कर्त्ता** और **कर्म** के बीच में बहुत महत्त्वपूर्ण अंग है, वो है **नीयत**, कि जो कार्य हम कर्त्ता बनकर कर रहे हैं, उसके पीछे हमारी नीयत क्या है? वही कर्म की गुणात्मकता को निर्धारित करती है। जो लोग यहाँ आये हैं कुछ उत्साहपूर्वक आये होंगे, कोई वैसे ही आ गये होंगे। भिन्न-भिन्न नीयतों से लोग यहाँ पहुँचे हैं। जो भी कार्य हम करते हैं उसके पीछे हमारी एक व्यक्तिगत नीयत होती है। इसी प्रकार इस देह को बनाने के पीछे ईश्वर की भी एक नीयत थी, कि इस भूले-भटके जीव को जो जन्म-जन्मांतरों में काल-चक्र में घूम रहा है, इसको पुनः एक मौका और देता हूँ। जिससे इसको कोई कष्ट न हो व जिन आसक्तियों को छोड़कर यह आया है उन्हें पूर्ण करते हुए पुनः जीवन जीते हुए यह समझ ले कि इसके हाथ में कुछ नहीं है। एक बार यह मेरी तरफ मुड़ जाए। संसारी पिता भी बड़े दयालु होते हैं, ईश्वर तो परम पिता है, वह आनन्द में देह बनाता है। सारा प्रबन्ध किया है प्रभु ने। प्रत्येक माता ने अनुभव किया होगा कि जब

पाँचवें महीने का गर्भ होता है और जब गर्भ में गति शुरू हो जाती है, उस समय कोई न कोई महापरिवर्तन अवश्य होता है। घर व परिवार की परिस्थितियों में, देश की परिस्थितियों में कोई न कोई बदलाव अवश्य आता है, जो इस जीवात्मा के प्रवेश के बाद उसके प्रभाव के कारण होता है।

मानव की अन्तिम वृत्ति **'अंत मति सो गति',** के अनुसार उसे अगली देह, ईश्वर की कृपा से मिलती है। अब प्रश्न यह उठता है कि यह गर्भ में गति, शिशु के पैदा होने के मात्र थोड़े ही दिन पहले क्यों नहीं होती? बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है कि जब मानव-देह बन चुकी है तो गर्भकाल के मध्य में ही क्यों जीवात्मा का प्रवेश होता है? उसके पीछे ईश्वर का सम्भवतः यही कारण रहा होगा, कि पृथ्वी पर उतरने से पहले मानव उस देह के साथ परिचित हो जाये। इसकी जो अंत मति थी, उसी के अनुसार मैं इसे गति दे रहा हूँ, उसी के अनुसार परिस्थितियाँ दे रहा हूँ। जो इसकी अन्तिम आसक्तियाँ थीं, उनको भी पूरा कर ले, लेकिन एक बार मेरी ओर मुड़ जाये। जैसे ही जीवात्मा को विलक्षणतम, उत्कृष्टतम देह मिली और जैसे ही बुद्धि का विकास हुआ उसका एक नाम रख दिया गया। पढ़ाई-लिखाई शुरू होती है, डिग्रियाँ मिलती हैं, एक अहम् और आ जाता है, परिवार का अहम्, कुल का अहम्, धन-सम्पत्ति का अहम्, अपनी डिग्रियों का अहम् व अपने पद का अहम्। अतः वह अपने **'कारण'** से परे हो गया, अपने ईश्वर से विमुख हो गया और स्वयं देह का स्वामी बन बैठा। इसने भैतिक अधिकार कर लिया, कि देह मेरी है, जबकि देह इसके लिए थी। देह देकर परमात्मा ने एक अवसर और दिया था, जिस देह का यह स्वामी बन बैठा। उसने वह कर्म, जो कि ईश्वर की कृपा से हो रहा था, उसकी योजना से हो रहा था, उसके द्वारा जुटाये हुए साधनों से हो रहा था वहाँ भी अपनी बुद्धि के अहम् से अपना हस्तक्षेप कर दिया। इसने कर्म का आनन्द खो दिया और कर्म शुरू करते ही माना कि जब इस कर्म का फल मुझे मिल जायेगा तो वह प्राप्ति मुझे हो जायेगी। उस उपलब्धि के बाद जो वृत्ति बनती है, जिसके ऊपर कर्म-फल निर्धारित होता है, उस वृत्ति का सम्पूर्ण निर्माण ईश्वर-इच्छा से होता है। दूध

का दूध और पानी का पानी हो जाता है। इस प्रकार किसी कर्म की समाप्ति के बाद जो **'वृत्ति'** बनती है वह पूर्णतया ईश्वरेच्छा से बनती है। यही वृत्ति कर्मफल का बीज बनकर प्रारब्ध का कारण बनती है। जन्म-जन्मान्तरों में मानव भटकते-भटकते जब कभी विशेष ईश्वर-कृपा से, सद्गुरु-कृपा से व आत्मकृपा से पुनः अपने वास्तविक **'कारण'** उस ईश्वर की ओर मुड़ता है तो प्रभु इसे हृदय से लगा लेते हैं। इसका समस्त अहम् समाप्त हो जाता है। एक अबोध बालक की तरह यह ईश्वर-सन्मुख होकर प्रारब्ध से मुक्त हो जाता है और प्रभु ही इसके जीवन का संचालन करते हैं एवं जीवन अति आनन्दमय हो जाता है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(22, 29 अक्टूबर, 2000)

अधिकार

इष्ट-कृपा से आप सब महाजिज्ञासुओं के सम्मुख, अति गम्भीर विषय जिसका उत्कृष्ट मानव-जीवन में एक विशेष महातम है, प्रस्तुत करूँगा। विषय का नाम है **'अधिकार', 'हक'।** जीवन को अत्यधिक विलक्षण एवं गुणात्मक बनाने के लिए समस्त मानव प्राप्तियों के पीछे भागते हैं। विशेषकर तथाकथित बहुत बुद्धिजीवी लोग जैसे ही उनकी बुद्धि विकसित होती है, होश संभालने के बाद, संस्कारों-वश, माता-पिता की प्रेरणावश प्राप्तियों के पीछे भागना शुरू कर देते है। प्राप्तियाँ हो जाती हैं लेकिन उन प्राप्तियों के पीछे जो उद्देश्य होता है भोग का, वह नहीं मिलता। उससे मानव हताश हो जाता है तथा उसी हताशा में एक दिन जीवन का अंत हो जाता है। जीवन के अंत में कुछ न कुछ आसक्तियाँ छोड़ कर जाता है। मानो जीवन उसके लिए कम पड़ जाता है और उन्हीं आसक्तियों को लेकर फिर जन्म लेता है। इस प्रकार इस महाकाल-चक्र में जन्म-जन्मांतरों तक मानव घूमता ही रहता है। इस सबके पीछे दर्शन क्या है? आज आपके सम्मुख इष्ट-कृपा से उसके कुछ आयाम रखूँगा और आपकी महाएकाग्रता चाहता हूँ।

जब मानव, धरा पर उतरता है तो प्रभु इसको तीन प्रकार की महाशक्तियों से सुसज्जित करके भेजते हैं, जिनका मैं पहले भी वर्णन कर चुका हूँ। प्रथम शक्ति है **दैहिक** यानि, शारीरिक बल, जो पशुओं में भी मानव से कहीं ज्यादा होता है। आप सब मुझसे सहमत होंगे। दूसरी विलक्षण शक्ति जो मानव को दी है प्रभु ने, वह है **बौद्धिक बल**, यह मात्र मानव को दिया है प्रभु ने। क्यों दिया है? बुद्धि से ही आज विचार करना है क्योंकि

इसकी सारी दौड़-भाग निरर्थक नहीं, नकारात्मक है और प्रभु- प्रदत्त बौद्धिक शक्ति का मात्र दुरुपयोग है, जो हम सभी कर रहे हैं और विशेषकर विलक्षण बुद्धि के लोग, जिनको हम बहुत विकसित कहते हैं। तीसरी शक्ति जो मानव को दी है वो है **मानसिक-शक्ति।** शारीरिक शक्ति का जो स्त्रोत हैं, हमारी माँस-पेशियाँ, और बौद्धिक शक्ति का स्त्रोत है, मानव-मस्तिष्क। माँस-पेशियाँ नज़र आती हैं, मानव-मस्तिष्क भी देखा जा सकता है लेकिन जो तीसरी शक्ति मानव को प्रभु ने प्रदान की है, मानसिक शक्ति, जिसको आध्यात्मिक शक्ति भी कहते हैं, उसका स्त्रोत प्रभु स्वयं हैं, जिसको कहा है **'कारण-देह'।** इन तीन शक्तियों से सुसज्जित मानव को तीन देह दी हैं। मानव की जो स्थूल-देह की रचना है वह हम सबको नाम-रूप में नज़र आती है और उस स्थूल-देह के साथ एक सूक्ष्म-मंडल दिया है। यह बहुत विचित्र बात है, मात्र हमारी भारतीय संस्कृति में ही इसका विवेचन है। हम अकेले मात्र एक व्यक्ति नहीं हैं। पृथ्वी पर उतरते ही हमारे साथ सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड आता है। बड़ी विलक्षण बात है। जो लोग स्वयं को अकेला समझते हैं, वे इस पाश्चात्य सोच को हटा दें। **इस भारतीय धरा पर उत्पन्न होने वाला कोई भी एक व्यक्ति नहीं होता।** हम मात्र स्थूल-देह नहीं है हमारे लिए सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड हमारे साथ उतरता है। हमारे सगे-सम्बन्धी, हमारी शिक्षा, हमारे निवास का स्थान, हमारी डिग्रियाँ, हमारा सब कुछ, धर्म, कर्म, देश-विदेश और जो कुछ भी बाहर के जगत में हम देखते हैं, वो हमारे भीतर से बाहर प्रकट होता है। इसको कहा है **सूक्ष्म-देह** जो हमारे लिए है। जैसे यह स्थूल-देह हमारे लिए है, वैसे ही सूक्ष्म-देह भी हमारे लिये है और इन देहों का कारण स्वयं प्रभु हैं, जिसे कहा है **'कारण-देह'।** मैं इसके बहुत विस्तार में नहीं जाऊँगा। क्योंकि **'कारण-देह'** शीर्षक प्रवचन में इसकी चर्चा हो चुकी है। लेकिन विलक्षणतम और सुन्दरतम जीवन जीने के लिए हम इसका प्रयोग कैसे करें? इसका आज समाधान होना चाहिये।

अपने नाम-रूप से हम स्वयं की पहचान करवाते हैं, कि मेरा नाम अमुक, मैं अमुक का पुत्र, मेरा अमुक पद, मेरी आर्थिक स्थिति आदि यही

हमारा सम्पूर्ण परिचय है। जो कि समुद्र में मात्र एक बूँद का परिचय है। हम सागर अपना परिचय देते हैं एक बूँद की तरह। यह महादुर्भाग्य है और इसके पीछे पाश्चात्यानुगमन का बड़ा हाथ है। हमने सागर को एक बूँद में उतार दिया, उसका परिणाम क्या हुआ? बहुत एकाग्रता चाहूँगा आपकी। तथाकथित स्थूल-देह जो कि हमें मिली थी प्रभु से, उसीको अपना पूर्ण स्वरूप जानकर हमने कार्य करना शुरू कर दिया। जैसे ही मानव-शिशु होश संभालता है वह तथाकथित कैरियर बनाना शुरू कर देता है। पब्लिक कैरियर बन जाता है वह। जैसे ट्रकों पर लिखा होता है पब्लिक कैरियर, जिसका मैं बहुत बार वर्णन कर चुका हूँ। तो अति बुद्धिजीवी लोग पब्लिक कैरियर बन जाते हैं और प्राप्तियों के पीछे दौड़ना शुरू कर देते हैं। शिक्षा की, पद की, नाम की, यश की, सम्पदा की और न जाने किन-किन प्राप्तियों के पीछे मानव की दौड़ शुरू हो जाती है। जैसे-जैसे उसकी बुद्धि का विकास होता है प्राप्तियाँ तो होती हैं लेकिन जीवन से सुख, संतोष, शान्ति और आनन्द लुप्त प्रायः हो जाता है। स्वयं विश्लेषण करें, जिसे आप अपनी देह कहते हैं, अपने नाम-रूप से पहचान करवाते हैं क्या आपको अपनी देह की समस्त शक्तियों पर अधिकार है? क्या उनका भोग है आपके पास? आपकी शारीरिक शक्तियों को कोई और प्रयोग कर रहा है, आपके मनोबल को कोई और इस्तेमाल कर रहा है। यह सत्य कह रहा हूँ। बुद्धि आपकी है, शिक्षा आपकी है, उसका प्रयोग कोई और कर रहा है। वह बिकी हुई है। आपका समय, प्रभु ने आपको जीवन दिया है और जीवन-काल आपके लिए है, लेकिन क्या आप अपने जीवन का समय खुद भोग सकते हैं! आप स्वयं से प्रश्न पूछिये आप कहीं जाना चाहते हैं जा नहीं सकते, बैठना चाहते हैं बैठ नहीं सकते, क्योंकि आपका समय बिका हुआ है। आपके जीवन-काल का समय आपका अपना नहीं है। धन-सम्पदा बहुत है लेकिन आप उसका भोग नहीं कर सकते। कमा कोई और रहा है, खा कोई और रहा है। मकान कोई और खड़ा करता है, उसमें रह कोई और रहा है। पद किसी का है उसका भोग कोई और कर रहा है। आपके धर्मों-कर्मों और अपनी प्रतिभाओं द्वारा जो सारा

जीवन भाग-दौड़ करके आप प्राप्त करते हैं, आपको उनका भोग नहीं है और यदि भोग भी है तो उसमें आनन्द नहीं है। मुझसे आप शत-प्रतिशत सहमत होंगे। तो कहाँ गलती है? आज हमें उसका विश्लेषण करना है।

मुझे मेरी देह का भोग क्यों नहीं है, मेरा समय मेरा अपना क्यों नहीं है, मेरी शारीरिक शक्ति मेरी अपनी क्यों नहीं है, मेरी बौद्धिक शक्तियाँ मेरी क्यों नहीं हैं, मेरी भौतिक प्राप्तियों का मुझे भोग क्यों नहीं है? जिन्हें हम सारा जीवन एकत्रित करते रहते हैं और दौड़ते-दौड़ते उन्हीं वस्तुओं को और-और प्राप्त करने की आकांक्षा में हमारा जीवन समाप्त हो जाता है। विषय तो बहुत साधारण सा लगता है लेकिन बहुत महत्त्वपूर्ण है। कहाँ त्रुटि है? हमें अवश्य मालूम होना चाहिये, जीवन को अति आनन्दमय बनाने के लिए।

यह मानव-देह प्रभु ने बनी बनाई हमको दी और हमने सबसे पहली भूल की अपनी बुद्धि के अहम् से, इस मानव-देह को अपना मान लिया। अनधिकृत कब्ज़ा कर लिया। सबसे पहला अपराध बुद्धि के विकसित होते ही हमने किया या हमसे करवाया गया, **कि 'यह देह मेरी है'।** आज मैं आप सबसे पूछता हूँ, अपने आपसे **5 – 7** प्रश्न करिये कि जिस दिन आप पैदा हुए क्या वो समय आपने निश्चित किया था? **नहीं !** अमुक-अमुक माता-पिता से आप पैदा हुए, क्या वो माता-पिता आपने स्वयं ढूँढे थे, आपकी विवाह-शादी हुई, क्या वो जीवन-साथी आपकी अपनी बुद्धि से था, आपकी संतान होती है विभिन्न प्रतिभाओं को लिए हुए, क्या वह आपके हाथ में है, क्या आपको अपनी पसन्दगी के स्थान पर मरना है? **नहीं !** जीवन की जो विलक्षण घटनायें हैं वो आपकी बुद्धि से नहीं होती हैं। घटनायें हो जाती हैं। आपकी बुद्धि उसी प्रकार से प्रेरित हो जाती है। परिस्थितियाँ उसी के अनुसार बनती हैं। आप इन सब पर दृष्टि डालें तो मेरी बात से पूर्णतया सहमत होंगे। अरे ! हमारे हाथ में क्या है? जिस देह का अगला साँस हमारे हाथ में नहीं है, जिसका अतीत हमारे हाथ में नहीं था, जिसका जन्म, जिसकी मृत्यु, विवाह-शादी, संतान कुछ भी हमारे हाथ में नहीं है तो यह हमारी कैसे हो

सकती है? **यह मानव-देह जो आपको मिली है और जिसको आपने अपनी बुद्धि के अहम् से अपना मान लिया, तद्रूप हो गये, यह आपकी नहीं बल्कि आपके लिये है।**

अधूरे हैं हम! अर्धसत्य विचरते हैं हम। उसका कारण है हमारी अधूरी मानव-बुद्धि! बुद्धि अपने में परिपूर्ण थी। ईश्वर ने सोच-समझ कर मानव को बुद्धि दी थी। उसके पीछे कारण था उसका। मैं कई बार वर्णन कर चुका हूँ। ऐ मानव! तू अपनी उत्कृष्टतम और विलक्षणतम बुद्धि से यह सोच कि तेरे हाथ में कुछ नहीं है। तेरा जन्म तेरे हाथ में नहीं है। तेरी मृत्यु तेरे हाथ में नहीं है, तेरी संतान, तेरी स्त्री, तेरा पुरुष, तेरी डिग्रियाँ, तेरा पद, आर्थिक स्तर, धर्म-कर्म, देश-समाज कुछ भी तेरे हाथ में नहीं है। इसलिए विलक्षण बुद्धि दी थी कि तू सोच। लेकिन बुद्धि को प्राप्त करते ही हम सारे ब्रह्माण्ड के ब्रह्मा, विष्णु, महेश बन गये कि मैं **'स्व-निर्मित'** हूँ। जैसे कि मैं ही स्वयं का निर्माता हूँ, स्वयं का पालनकर्त्ता हूँ और संहारकर्त्ता हूँ, विध्वंसकर्त्ता भी स्वयं ही बन जाते हैं हम। **सबसे पहला अपराध इस बुद्धि के दुरुपयोग से यही होता है कि हम ईश्वर-प्रदत्त मानव-देह को प्राप्त करने का कारण भूल जाते हैं और उस मानव-देह पर अपनी ग़ैरकानूनी मोहर लगा कर, इस संसार में अपनी बुद्धि का दुरुपयोग करते हुए विचरने लगते हैं।** हम नहीं जानते कि यह मानव-देह क्यों दी प्रभु ने हमको? और हम जानना भी नहीं चाहते। यह पहला अपराध था। इसको मैं ज़ोर इसलिए दे रहा हूँ कि आप सबको पूरी तरह से विश्वास हो जाये।

जब यह अपराध हो जाता है तो क्या होता है? ध्यान करिये, आपकी जो यह देह है, यह पाँच महाभूतों की मुट्ठी है। पाँचों ईश्वर के प्रतिनिधि हैं, पाँचों निराकार हैं और पाँचों निराकार को मिलाकर एक साकार-देह बना दी, जो अपने में बहुत बड़ा अजूबा है। इस देह पर हम अपनी मोहर लगा देते हैं। यह मेरी देह है, उसी वक्त एक सज़ा मिलती है, बहुत ही **कम्प्यूटराइज्ड सिस्टम** है ईश्वर का। उसी वक्त आप अपराधी हो जाते हैं। यह दिव्य कानून बता रहा हूँ जो अकाट्य हैं। विश्व में सरकारें बदलती हैं, बदलती

रहेंगी, कानून बदलते रहेंगे लेकिन दिव्य-कानून नहीं बदलते। आप मानव-देह पर जो आपको दी थी, किसी कारण के लिए दी थी, उसको जाने बिना अपनी मोहर लगाकर, अपने हिसाब से तथाकथित कैरियर बनाते हुए जब विश्व में विचरण करने लगते हैं तो एक सज़ा मिलती है। आप मेरे से सहमत होंगे और वो सज़ा क्या होती है? कि आपकी देह के सारे हक छिन जाते हैं। आपका समय किसी और के लिए होता है। आपकी बुद्धि किसी और के लिए होती है। आपकी शारीरिक शक्ति जानवरों की तरह किसी और के लिए होती है। जिस प्रकार कि हम बैल से, ऊँट से, घोड़े से, हाथी से, काम लेते हैं, उसी प्रकार आप से कोई दूसरा काम लेता है। जिस दिन आपने ये अपराध किया कि **'यह देह मेरी'** है, तभी से आपको हक नहीं मिलेगा। जब आपसे हक छिन जायेगा तो आप से उसका भोग भी छिन जायेगा।

जब आप किसी वस्तु को प्राप्त करते हैं और प्राप्त करने के बाद आप उस वस्तु का भोग नहीं कर सकते तो उसके बीच में एक कड़ी है जो खो जाती है और वो कड़ी क्या है? **'हक', 'अधिकार'।** आज यह पकड़कर जाइये कि वह कड़ी क्या जो ओझल हो रही है और उसको कैसे प्राप्त करना है। हम यहाँ जीवन जानवरों की तरह, पशुओं की तरह जीने नहीं आये हैं। हम मानव हैं, उत्कृष्टतम बुद्धि प्रदान की है प्रभु ने हमको और यहाँ किसी विशेष काम के लिए भेजा है जिसे हमें अवश्य जानना चाहिये।

बार-बार मैं इसे दोहरा रहा हूँ। **भारत आज भी जगद्‌गुरु है, भारत जगद्‌गुरु था और भारत ही जगद्‌गुरु रहेगा।** हम ईश्वर की विलक्षण संतान हैं। हमें इस पर गर्व होना चाहिये, कि हम भारतीय हैं। हमारे श्वासों में, इस वसुन्धरा पर, यहाँ की हवा में अध्यात्म बिखरा हुआ है। दिव्य-कानून के अनुसार हमारे ऊपर कोई हुकूमत नहीं कर सकता। हम विश्व पर हुकूमत करने के लिए पैदा होते हैं। यह है भारत-भूमि का महात्म्य। **तो जिस समय अपनी देह पर अज्ञानवश हमारे अहं की मोहर लग जाती है कि यह मेरी देह है, उस समय उसका अधिकार छिन जाता है।** किसी वस्तु के भोग के लिए मात्र प्राप्ति आवश्यक नहीं है, उस प्राप्ति के साथ उस पर

अधिकार भी चाहिये। यदि आपको अपनी देह पर अधिकार नहीं है तो आप अपनी देह का भोग नहीं कर सकते। तो इस अधिकार के लिए हम क्या करें? जिसने **देह आपको दी है उसको समर्पित कर दीजिये**:– ***'त्वदीयं वस्तुं प्रभु तुभ्यमेव समर्पये'***

मैं नहीं जानता, कि तुम पृथ्वी पर मुझे क्यों लाये हो, कब ले जाओगे, आप क्या करवाना चाहते हो? मैं नहीं जानता। आपके घर में बिजली के यन्त्र पड़े हैं, वी. सी. आर. है, टी. वी. है, कम्प्यूटर है, क्या आपको उनको चलाने की पूरी कार्य-शैली आती है? **नहीं आती,** तो प्रभु द्वारा निर्मित उत्कृष्ट बुद्धि के साथ आप छेड़-खानी क्यों करते हैं? समर्पित कर दीजिये कि प्रभु आपने इतनी बड़ी शक्ति मुझे दे दी, मैं इसका प्रयोग करना नहीं जानता। आप ही प्रयोग करिये। आप अपने दिमाग की कार्य-शैली नहीं जानते। आप उसको ऊत-पटाँग प्रयोग करके खराब कर देते हैं। इसलिए बहुत बुद्धिजीवियों का दिमाग खराब ही होता है। खराब बुद्धि का प्रमाण क्या है? मैं गप नहीं मार रहा हूँ, मैं चिकित्सक हूँ। इस खराब बुद्धि का प्रमाण यह है कि आज सभी रोगी हैं। जितनी भयानक बिमारियाँ मानव को होती हैं, गठिया, अल्सर, मधुमेह, एलर्जी, दमा आदि, जिनका इलाज किसी के पास नहीं है, वह मात्र बुद्धिजीवियों को होती हैं। मोटी बुद्धि के लोगों को ये बिमारियाँ होती ही नहीं हैं। मोटी बुद्धि के व्यक्ति को कभी एलर्जी नहीं होती, उसको जो भी दवाई दे दो। एलर्जी हमेशा तेज़ बुद्धि वाले को ही होती है, हमें तो यह मालूम नहीं है कि बुद्धि क्यों दी और इसका गलत प्रयोग करने से हम बाज़ नहीं आये, इसलिए बुद्धि खराब हो गई। उस खराब बुद्धि से हम दुखों, भय, त्रास, विक्षेप में घिर गये और इसके बावजूद भी हम नहीं समझे। इसलिए हर रोज़ प्रभु को अपनी देह का समर्पण करिये कि प्रभु! यह आपने मुझे क्या बनाकर दे दिया? इतनी तेज बुद्धि दे दी, मैं इसका प्रयोग कैसे करूँ? तुम, प्रभु, अपनी बल-बुद्धि से इसका प्रयोग करो! मुझे तमाशा देखने दो, आप भी आनन्द लो और मुझे भी आनन्द लेने दो प्रभु! मैं तो इसका इस्तेमाल नहीं जानता।

जिस दिन आपको यह ज्ञात हो जायेगा कि यह देह प्रभु ने आपको क्यों दी है. आपकी समस्त शक्तियाँ असंख्य गुणा हो जायेंगी। यह परम आध्यात्मिक सत्य और नियम मैं आपके सामने रख रहा हूँ। हम यह जानना नहीं चाहते कि प्रभु ने पृथ्वी पर मुझे क्यों भेजा है? उसके लिए आपको मात्र इष्ट के दरबार में बैठना होगा और उसी से पूछना होगा कि प्रभु ! मुझे क्यों भेजा है? आप जो भी कर रहे हैं, आप एकाग्र करिये वह तो आपके बिना भी हो सकता था, लेकिन आपको क्यों भेजा है? राजनेता बैठे हैं यहाँ, बड़े-बड़े अफसर बैठे हैं, जिस समय आप सेवा-निवृत्त हो जायेंगे उसी दिन आपको प्रेम-पत्र आ जायेगा कि कृपया कुर्सी और ऑफिस खाली कर दीजिये। आपकी कुर्सी पर कोई दूसरा लपकने को तैयार बैठा होगा और आपका जो वास्तविक महात्म्य है, आप जानना नहीं चाहते कि आप पृथ्वी पर क्यों लाए गये हैं? क्या प्रभु को शौक है कि एक-दो लाख बच्चे रोज़ बनाए? ऐसा नहीं है। हम मानव अपने हाथों से किसी चीज़ का निर्माण करते हैं तो उसके पीछे कोई अर्थ होता है। तो प्रभु नौ महीने सात दिन में विलक्षणतम मानव-देह तैयार कर देते हैं, उनका भी इसके पीछे कोई अर्थ होता है। प्रभु निरर्थक कार्य नहीं कर सकते। इसके लिए देव-दरबार में बैठकर आपको अपने इष्ट से पूछना होगा, कि प्रभु मुझे क्यों भेजा है? उसके लिये आपके पास समय नहीं है। हम अपनी बुद्धि से बटन दबाते रहते हैं। अनावश्यक काम करके खुद तो दुविधा में पड़ते ही हैं और लोगों को भी दुविधा-ग्रस्त कर देते हैं। ऐसा करने से हमारे अधिकार छिन जाते हैं। हमारा समय किसी और के लिए होता है। हमारी शारीरिक शक्ति किसी और के लिए होती है। यदि आप ईश्वर-प्रदत्त अपनी देह का आनन्दमय भोग करना चाहते हैं, तो आप हर रोज़ देह को, कुछ देर के लिए प्रभु को समर्पित करिये कि यह देह मेरी नहीं है। यह बहुत ज़रूरी है। नहीं तो सम्पूर्ण जीवन आप हताश रहेंगे क्योंकि उपलब्ध वस्तु आपको भोग नहीं दे सकेगी। दिव्य कानून के तहत वहाँ भी धारायें लग जाती हैं। वो महाकालेश्वर किसी न किसी धारा के तहत अवश्य आपको सज़ा देते हैं कि इसके सारे अधिकार छीन लिए जायें। यदि

आप अपनी प्रतिभाओं को, अपनी देह की शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक शक्तियों का भोग करना चाहते हैं तो आपको उसको तहेदिल से समर्पित करना पड़ेगा कि यह मेरी नहीं है, यह आपकी है। आपने मुझे दी है, मैं नहीं जानता आपने मुझे क्यों दी है?

यह तो आपकी स्थूल-देह की बात करता हूँ और स्थूल-देह पर आधारित आपका जो सम्पूर्ण सूक्ष्म-मंडल है, आपकी संतान, स्त्री, पति, पद, माता-पिता, उनका भोग नहीं है, सम्बन्धों का भोग नहीं है। यह कौन है? मेरी संतान है, कि इन्हें आज्ञा दीजिये! आज्ञा कैसे दें? यह तो मेरी बात ही नहीं सुनते। आपके पास अपनी डिग्रियों का भोग नहीं है। देह पर आधारित आपको जो जगत मिला, जितना भी सम्पूर्ण सूक्ष्म मंडल है, आप विचार करके देखिये वो सारा आपकी देह पर आधारित है। माता-पिता, भाई-बहिन, आपकी संतान, पति-पत्नी, जितने भी आपके सम्बन्ध हैं **उन सबका आधार आपकी देह है।** तो इन सम्बन्धों का भोग कैसे हो, उसके लिए क्या चाहिये? **अधिकार!** प्राप्ति महत्त्वपूर्ण नहीं है। पति-पत्नी सात फेरे ले लेते हैं, शादी हो जाती है, सात की जगह सात सौ फेरे ले लें अगर एक-दूसरे पर अधिकार नहीं होगा तो वे नाम के ही पति-पत्नी होंगे। ऐसे ही पैदा हुए, ऐसे ही मर जायेंगे। मानव का मानव पर अधिकार कैसे होगा? जब आपके हृदय में श्रद्धा और समर्पण होगा। अधिकार के लिए एक ही सूत्र याद रखिये **'श्रद्धा और समर्पण'।** जब तक पति को पत्नी में और पत्नी को पति में श्रद्धा और समर्पण नहीं होगा तब तक अधिकार नहीं होगा। आपको संतान का भोग नहीं मिलेगा जब तक आपको संतान पर अधिकार नहीं होगा और अधिकार के लिए क्या चाहिये? **समर्पण।** क्या आप अपने छोटे बच्चों को अपने हाथ से खिलाते हैं, क्या रात भर उनके साथ जागते हैं, जब उनको कोई कष्ट होता है। क्या आप उनको पढ़ाते हैं? बहुत महंगे स्कूलों में डालने से या ट्यूशन रखने से बच्चों में अधिकार पैदा नहीं होगा। हमारी आयु के लोग जो यहाँ बैठे हैं, सब फट्टी बस्ते के स्कूल में पढ़े हुए हैं। सभी सहमत होंगे। सब टाट वाले स्कूल में पढ़े हुए हैं। चाहे कह दो सेंट टॉट्स में पढ़े हैं। तीन-चार

मित्र बैठे हुए थे कि आप कहाँ से पढ़े हैं? सेंट थोमस में, सेंट मेरी में और एक हमारे मित्र ने कहा सेंट टॉट्स में। मैंने कहा तुम तो हमारे साथ पढ़ते थे तो परिहास में वह बोले मैंने सेंट टॉट्स कहा है, 'टाट वाले स्कूल' में।

हमें अपनी शिक्षा पर अधिकार क्यों था? हमारे अध्यापक हमारी श्रद्धा के पात्र थे। अध्यापकों के साथ हमारा मात्र पैसे का सम्बन्ध नहीं था। आज हम बच्चों को जिन स्कूलों में पढ़ा रहे हैं वहाँ पर अधिकार नहीं है। हमें सिखाया जाता था कि अध्यापक की मार खाओ, अध्यापक के आगे सिर नहीं उठाना है। उनके चरण छूने हैं, उन्हें 'गुरु' सम्बोधित करना है। अध्यापक जो हमें भौतिक डिग्रियाँ देते थे, हम उनके घरों में जाकर उनका काम करते थे, उनकी साइकिल साफ करते थे और जो बाज़ार का काम करना होता था, करके आते थे। उससे शिक्षा पर आपको अधिकार मिल जाता था। आज आप बहुत बड़े-बड़े इंगलिश स्कूलों में बच्चों को डाल रहे हैं, लेकिन अध्यापक और शिष्य का रिश्ता समाप्त हो गया है। आज के स्कूल व्यवसायिक हो गये हैं। यह पाश्चात्य अनुगमन की देन है। जब तक कोई विद्यार्थी अपने अध्यापक के आगे नतमस्तक नहीं होगा, श्रद्धा नहीं रखेगा, डिग्रियाँ मिल जायेंगी, लेकिन उसकी डिग्रियाँ उसको हताश कर देंगी। आज शिक्षित लोग बहुत हताश हैं। अधिकांश अपनी नौकरी बदलते रहते हैं। जिनके पास नौकरी नहीं हैं वो भी हताश हैं और जिनके पास नौकरी है वो ज़्यादा हताश हैं। एक साल में तीन-तीन नौकरी बदलते हैं, क्योंकि संतोष नहीं है। बहुत नग्न सत्य रख रहा हूँ आपके सामने। अगर आप अपनी डिग्रियों पर, अपनी तथाकथित भौतिक शिक्षा पर अधिकार चाहते हैं तो आपको अपने शिक्षकों में श्रद्धा रखनी होगी, प्रभु से प्रार्थना करनी होगी कि हे प्रभु ! शिक्षा, शिक्षक, शिक्षार्थी और शिक्षाफल तुम ही हो। वह शिक्षा आध्यात्मिक हो जायेगी और उस पर आपको अधिकार हो जायेगा। बिना अधिकार के आप उसका भोग नहीं कर सकते।

ध्यान से सुनिये ! ये बातें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। किसी किताब में नहीं लिखी हैं। जब माता सीता को हनुमान जी ने अँगूठी भेंट की, माता प्रसन्न हो

गईं गद्गद् हो गईं। माता सीता कौन हैं? साक्षात् लक्ष्मी का अवतार हैं। पहला वरदान दिया, **'अष्टसिद्धि नवनिधि के दाता'**, कि हे हनुमान! जाओ मैं तुम्हें वरदान देती हूँ कि तुम अष्टसिद्धियों और नवनिधियों के दाता हो जाओ। तुम जिसे चाहो, उसे कोई सिद्धि, निधि दे सकते हो। पूरे विश्व में मात्र नौ निधियाँ हैं। जिनको हनुमान जी जिस पर प्रसन्न हों, उसको दे सकते हैं। आठ महासिद्धियाँ हैं। आज विश्व में इन आठ महासिद्धियों में से एक भी महासिद्धि किसी के पास नहीं है। पहला वरदान दिया कि अष्टसिद्धि-नवनिधि के दाता और हनुमान जी की वो ही पुरानी समस्या, वो खुश नहीं हुए। जब हम किसी को कोई चीज़ खुशी से भेंट करें तो हम उसकी शक्ल की तरफ देखते हैं कि चीज़ लेकर वो प्रसन्न हुआ है कि नहीं। तो हनुमान जी थोड़ा सा मुस्कुरा दिये और फिर मुँह उनका वैसे का वैसा। माता सीता ने सोचा कुछ और देती हूँ, शायद खुश हो जाये **''अजर अमर गुणनिधि सुत होहू''** कि हे बेटा, तू कभी बूढ़ा नहीं होगा, हमेशा जवान रहेगा। हनुमान जी पर कोई असर नहीं हुआ। **अमर**, कि तू कभी नहीं मरेगा और फिर वही विचित्र मुस्कुराहट, सीता जी तुली हुई थीं! कि मैं इस कपि को प्रसन्न करके भेजूँगी। इसने मुझे प्रसन्न किया है, मैं इसे प्रसन्न करूँगी, मैं महालक्ष्मी हूँ। अब सीता माता परेशान हो गईं। उन्होंने भगवान राम का ध्यान किया कि हे प्रभु! यह जो कपि आपने भेजा है इसको कैसे खुश करूँ? तो प्रभु राम की प्रेरणा से सीता जी ने कहा, **'करहु बहुत रघुनायक छोहू'** हे हनुमान! तुम्हें प्रभु श्रीराम बहुत प्रेम करें और उनको तो वही चाहिये था, उनका काम बन गया, तो क्या कहते हैं, **'करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना, निर्भर प्रेम मगन हनुमाना'....'अब कृत-कृत्य भयऊँ मैं माता।'** हनुमान जी बोले कि मैं तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूँ। जहाँ किसी बच्चे को हम प्रसन्न करें, उसके मन की बात कह दें तो बच्चा अपनी माँ से, पापा से ज़रूर कुछ माँगता है कि पापा, हम वहाँ जायेंगे, मम्मी हमको यह लेकर दो। अब हनुमान जी की एक मुश्किल है, उनको भूख बहुत लगती है और अशोक वाटिका फलों से लदी हुई थी, कहीं आम, कहीं अमरूद, कहीं केले लटक रहे

थे। हनुमान जी बोले, **'सुनहु मातु ! मोहि अतिसय भूखा, लागि देखि सुन्दर फल रूखा'**। माँ मुझे भूख लगी है। बहुत सुन्दर फल लगे हैं। आप कहें तो मैं फल खा लूँ। अब माँ सीता वरदान दे चुकी हैं कि तुम अजर-अमर रहोगे, तुम मरोगे नहीं। न कोई तुम्हें मार सकता है। तो भी माँ हैं अतः डर जाती है और कहती हैं :—

''सुनु सुत करहिं विपिन रखवारी, परम सुभट रजनीचर भारी''

कि बड़े-बड़े राक्षस यहाँ रखवारी करते हैं, वे तुझे मारेंगे। तो हनुमान जी क्या कहते हैं, बहुत विचारणीय बात है, एकाग्र करिये :—

''तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं, जौं तुम सुख मानहु मन माहीं।''

विचार करिये ! कोई और बलवान या कम बुद्धि का होता तो क्या कहता, कि माँ तुम परवाह मत करो ! मैं इन सबको मार सकता हूँ। लेकिने उन्होंने क्या कहा—माँ मुझे इनका भय नहीं है। यदि तुम सुख मानती हो कि मैं फल खा लूँ, तुम आज्ञा देती हो तो माँ मुझे इन राक्षसों का भय नहीं है। यह बहुत बड़ी सीख है। जिस व्यक्ति को अपनी माँ में श्रद्धा होती है, तो माँ के आशीर्वाद में इतनी शक्ति है कि आपको कभी भय नहीं लग सकता। यह बहुत बड़ा दिव्य नियम है, कि **जो आपकी भौतिक माँ है, अगर उसके साथ आपने आध्यात्मिक रिश्ता पैदा किया है, श्रद्धा रखी है तो उसके आशीर्वाद में इतनी शक्ति है कि आपको कभी भय नहीं लगेगा।** सीता जी ने सोचा कि यह बलवान के साथ-साथ बुद्धिमान भी है। तो सीता जी ने कहा :—

''देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकी जाहु।,
रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु।''

कि हे तात ! यदि तुम मुझे माँ मानते हो, तो भगवान श्रीराम तुम्हारे पिता हुए, तो जाओ ! मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ और विशेष हिदायत दी कि हे बेटा ! भगवान श्रीराम के चरणों को हृदय में रखो और जाओ मीठे फल खाओ। ऐसे आदेश दे दिया जैसे बाग उन्हीं का हो। अर्थात् जिस व्यक्ति के हृदय में उसके पिता के चरण हैं, अपने माता-पिता में श्रद्धा है तो वही आप संसार के समस्त फल भोग सकते हैं।

अपने माता-पिता में श्रद्धा रखिये। उनको वृद्धाश्रमों में मत भेजिये, अपने हाथों से सेवा करिये। कल आपको भी वृद्ध होना है। हमारी भारतीय परम्परा को समाप्त मत होने दीजिये। अरे ! अंग्रेज़ों ने हमारा आर्थिक रूप में तो कुछ नहीं बिगाड़ा। हमारे हीरे-जवाहरात, सोना ले गये, वह बहुत है हमारे देश में, लेकिन हमारी संस्कृति को नष्ट करने की कुचेष्टा करके गये जिसके दुष्प्रभाव से हम अभी तक उबरे नहीं हैं। बूढ़े लोगों को वृद्ध-आश्रमों में मत भेजिये। उनकी अपने हाथों से सेवा करिये। उनसे आशीर्वाद लीजिये, तभी आप संसार के भोग, भोग सकते हैं। आपको यश मिलेगा, आपको सत्संग मिलेगा। **जिस व्यक्ति पर उसके माता-पिता की कृपा नहीं होती, उसको कभी सत्संग नहीं मिलता।** आज आप सब सत्संग में बैठे हुए हैं, निस्संस्देह आपके ऊपर माता-पिता का आशीर्वाद है। माता-पिता के आशीर्वाद के बिना उसको कभी सत्संग नहीं मिलता। उसको कितनी बढ़िया शिक्षा मिल जाये, उसको यश नहीं मिलेगा। कितना बड़ा कोई डाक्टर बन जाये, लेकिन जिस मरीज़ को वह पकड़ेगा, वह कभी ठीक नहीं होगा। बड़े-बड़े वकील बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ ले लेंगे लेकिन जो केस हाथ में पकड़ेंगे, वे केस हारेंगे। आप देख लीजिये, कहीं कोई हलवाई मशहूर होता है, कहीं कोई छोले-भठूरे वाला मशहूर होता है, कोई पनवाड़ी मशहूर होता है, तो उसको साफ कह दीजिये कि तुम्हारे ऊपर तुम्हारे माँ-बाप की कृपा है। वो बड़ा हैरान होगा कि इसको कैसे मालूम? भारतीय संस्कृति ! मत भूलिये, बड़ी उदात्त संस्कृति है। मैंने पिछले प्रवचन में कहा था कि मात्र अपने पूर्वजों में और अपने माता-पिता में श्रद्धा रखिये, आपको कुछ करने की ज़रूरत नहीं है। आप ऐश्वर्यवान हो जायेंगे। पूरे विश्व में यदि कोई एक भी देश ऐश्वर्यवान है, तो वह **भारत है।**

मैंने एक प्रवचन में धन-लक्ष्मी के सात स्वरूप बताये थे। जिसको हम लक्ष्मी कहते हैं, यह भौतिक धन नहीं है। लक्ष्मी के सात अंग हैं? सुख, शान्ति, संतोष, समृद्धि, स्वजन, स्वास्थ्य और सत्संग। ये सब लक्ष्मी के स्वरूप हैं। बड़े-बड़े तथाकथित लक्ष्मीपतियों को पूछो कि आपका कोई

स्वजन है, आपका कोई अपना है? **'नहीं'।** जो लोग उनके साथ होते हैं वो सब स्वार्थजन होते हैं, स्वजन नहीं होते। स्वजन की परिभाषा मैं पहले भी बता चुका हूँ, आज भी बताता हूँ कि **स्वजन** का मतलब खून का रिश्ता नहीं है। वैसे खून के रिश्तों में भी स्वजन हो सकते हैं। वह व्यक्ति जो आपकी प्रसन्नता में प्रसन्न होता हो और आपके दुःखों में दुःखी, आपका दुःख कम हो जाये उससे मिलने से आपकी प्रसन्नता और बढ़ जाये, उसको कहा है—**स्वजन।** स्वजन के लिए आवश्यक है कि हम उस व्यक्ति के लिए अपने देव-दरबार में प्रार्थना करें, उसके हित-चिंतक हों, ये सूत्र याद कर लीजिये। **आपका कोई व्यक्ति अपना कब बनेगा, जब आप उसके लिए देव-दरबार में प्रार्थना करेंगे।** दरबार में अपने इष्ट के सामने किसी के लिए प्रार्थना करना बड़ा मुश्किल है। टेलिफोन पर हम बधाइयाँ दे देते हैं, अफसोस प्रकट कर देते हैं, लेकिन क्या हम किसी की खुशी को और बढ़ाने के लिए, क्या किसी की विवाह-शादी पर हम अपने प्रभु से उसके लिए प्रार्थना करते हैं? यदि हम करते हैं तो हमें औपचारिकताओं की आवश्यकता नहीं है, वह बनता है—**स्वजन।**

धन पर अधिकार करने के लिए, धन के भोग के लिए आवश्यक है कि आप उसको भी प्रभु के चरणों में समर्पित करें, कि प्रभु यह आपका है। धन महाशक्ति है, ऐश्वर्य बहुत बड़ी उपलब्धि है। उसको प्राप्त करने के लिए आपको पूर्ण शुद्धता चाहिये। आप ईश्वर को नमन करिये, उससे प्रार्थना करिये, उसका जाप करिये और उस धन में से कुछ धन अवश्य दान करिये। दान का दर्शन मैं पहले ही बता चुका हूँ। लोग कहते हैं कि अपना कमाया धन हम किसी को क्यों दें? संक्षेप में, मैं फिर बता देता हूँ। मान लीजिये आपके पास सौ रुपये हैं आपके अपने और उसमें से आपने बीस रुपये किसी को दान दे दिये, तो शेष जो आपके पास अस्सी रुपये बचे, उस पर तुरन्त भोग का अधिकार आपको मिल जायेगा। आप मुझसे सहमत होंगे कि आपका अपना जो धन है, उस पर आपका भोग का अधिकार भी हो, यह आवश्यक नहीं है। कमाता कोई और है, खाता कोई और है। लेकिन आप

अगर अपने धन का भोग चाहते हैं तो आप धन का दान भी करिये। तो दान के बाद जो आपके पास धन बचता है उस पर तुरन्त आपको भोग का अधिकार मिल जायेगा। जो धन आपने दान में दिया है वो बहुत जल्दी कई गुणा होकर कहाँ से आकर आपको मिल जायेगा, आप नहीं जानते। उस धन के आनन्दपूर्वक भोग का अधिकार भी आपको मिल जायेगा, यह दिव्य कानून बता रहा हूँ। जो धन आपने दान में दे दिया है, वह कई गुणा होकर मिलेगा, जो निर्भर करता है इस बात पर कि किस भाव से आप ने दान दिया है। उसके पीछे आपकी वृत्ति क्या थी? जब आप किसी को कुछ देते हैं, उसको देते हुए आपको एक विशेष आनन्द व संतोष की अनुभूति होती है। करोड़ों रुपये सुख-सुविधायों पर खर्च करने पर भी वह आनन्द नहीं आयेगा जो कि आपको थोड़ा सा किसी को देने में आता है। उस आनन्द की अनुभूति में आपका दिव्य आपा जाग्रत हो जाता है। उस व्यक्ति का जो आशीर्वाद आपको मिलेगा, वह आशीर्वाद आपके दिव्य जमाखाते में चला जाता है। इसको कहा है, जो कभी भी नष्ट नहीं होता और जो इतना ज्यादा बढ़ जाता है कि हज़ारों वर्षों तक जो आपमें श्रद्धा रखते हैं, आपको चाहने वाले हैं, उनको उससे मिलता रहता है। जो आपका नाम ध्यायेगा और आपमें श्रद्धा रखेगा उस दिव्य जमाखाते से उसको धन सदैव मिलता रहेगा। इसलिए अपने पूर्वजों को नमन करते रहिये, आपको धन कमाने की आवश्यकता नहीं है। यह लक्ष्मी के दिव्य नियम बता रहा हूँ। तो रिश्तों पर, अपने सम्बन्धों पर हम अधिकार कैसे करें? शिक्षक से शिक्षा लेते हैं आपके बच्चे, तो उस शिक्षक में आप समर्पण भाव रखिये। यह दिव्य-कानून है।

अब उसके अलावा जो आगे बात सुना रहा हूँ, आपकी बहुत सावधानी चाहता हूँ, जब बुद्धि का समर्पण करते हैं, जब हम अपनी प्राप्त व उन्हें भोगने का अधिकार मिल जाता है। बिना अधिकार के आप किसी वस्तु का भोग नहीं कर सकते। यदि आपको ईश्वर से अधिकार मिल जाये तो आपको वस्तु की प्राप्ति की आवश्यकता नहीं है। **तो हम भाग रहे हैं प्राप्तियों की ओर और अधिकार खोते जा रहे हैं। जब हमको अधिकार मिल जायेगा,**

तो वस्तुएँ स्वयं चलकर हमारे पास आयेंगी। भोग चलकर हमारे चरणों में आ जायेंगे। उस अधिकार के लिए ईश्वर के दरबार में बैठना, समर्पण करना अति आवश्यक है। जब हम मन का समर्पण करते हैं तब क्या होता है, तब हमें अपने सम्पूर्ण सूक्ष्म जगत को भोगने का अधिकार मिल जाता है। जितनी हमारी सृष्टि है, जिसमें हमारी देह भी है, हमारा घर, हमारी शिक्षा, हमारी डिग्रियाँ, देश, समाज, हमारा आस-पड़ोस, बॉस, जूनियर्स, पड़ोसी, पति-पत्नी जो कुछ भी हमारा है, वह हमारा सूक्ष्म-जगत है। यदि हम अपने तुच्छ मन को ईश्वर को समर्पित कर दें, कि प्रभु यह मन भी आपका है तो आपको न केवल अपनी देह बल्कि आपको अपने सम्पूर्ण सूक्ष्म-जगत को भोगने का अधिकार मिल जायेगा। बहुत तकनीकी विषय है, बहुत एकाग्र करिये। पहले तो मैंने कहा है देह का अधिकार, फिर देह से सम्बन्धित रिश्तों पर अधिकार, प्राप्तियों का अधिकार और अब आपको सम्पूर्ण सूक्ष्म-मंडल को भोगने के अधिकार के लिए काहे का समर्पण करना पड़ेगा? **अपने मन का।** अब एक सीढ़ी और ऊपर ले जाता हूँ। जब आप अपनी **'कारण-देह'** पर अधिकार कर लेते हैं, **'कारण-देह'** कौन है? आपका इष्ट। कारण-देह पर अधिकार बहुत कठिन है:—***'बहुत कठिन है डगर पनघट की'***

जब आपको अपने खुदा पर, अपने ईश्वर पर अधिकार हो जायेगा तो औपचारिकताएँ समाप्त हो जायेंगी, आपस में नोंक-झोंक शुरू हो जायेगी। ईश्वर को मानना, उसके साथ सम्बन्ध स्थापित करना, आप कर सकते हैं लेकिन ईश्वर जब आपके सम्बन्धों को स्वीकार कर लेगा तो आपका अधिकार अथाह हो जायेगा और आप कह सकेंगे:—

''मुझे माफ कर खुदाया, मैंने तुझे खुदा बनाया,
अरे ! तुझे कौन पूछता था, मेरी बन्दगी से पहले,
मुझे कोई गम नहीं था ग़मे आशिकी से पहले,
न थी दुश्मनी किसी से तेरी दोस्ती से पहले।''

जब आप अनौपचारिक हो जाते हैं अपने खुदा के साथ, जब आपको अपने इष्ट पर अधिकार हो जाता है, उस समय आपको सम्पूर्ण अधिकार

मिल जाता है। आप अपने सूक्ष्म-मंडल को स्वयं बना सकते हैं, स्वयं पालन कर सकते हैं और स्वयं संहार कर सकते हैं।

बड़े-बड़े रामायणी बैठे हैं यहाँ पर। क्यों रखा तुलसीदास ने इसका नाम **'रामचरित मानस'।** क्योंकि जितनी भी रामलीला हुई, उस पर मात्र राम का अधिकार था। अगर मंथरा ने कैकेयी की बुद्धि बदली तो राम के कारण बदली। अगर रावण ने सीता को उठाया तो राम के कारण उठाया। राम-रावण युद्ध हुआ तो वो राम के कारण हुआ, क्योंकि राम ऐसा चाहते थे। कृष्ण-लीला, कृष्ण-मानस है। एक उदाहरण बताता हूँ। महाभारत के युद्ध से पहले भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि मैं सन्धि का प्रस्ताव लेकर जाता हूँ, युद्ध शायद टल जाये, वो जानते हैं कि युद्ध टलेगा नहीं। तो प्रभु श्रीकृष्ण, (आपने सुनी होगी यह बात) दुर्योधन के सम्मुख जाते हैं कि—हे दुर्योधन ! हमारा एक प्रस्ताव है कि तुम पाँचों पाँडवों को मात्र पाँच गाँव दे दो। अब यहाँ पर बड़ी विचारणीय बात है कि दुर्योधन जैसे साधारण राजा के सामने कौन खड़े हैं? भगवान श्रीकृष्ण! जो स्वयं साक्षात् भगवान विष्णु का अवतार हैं, भगवान विष्णु दुर्योधन से कहें कि पाँच गाँव दे दो ! जो स्वयं द्वारिकाधीश हैं। दुर्योधन उनको मना कर देता है, कि नहीं ! मैं सुई की नोक के बराबर भी ज़मीन नहीं दूँगा। इसका अर्थ क्या है? इसका अर्थ है कि कृष्ण यह चाहते थे। जब आप अपने इष्ट को सम्पूर्ण रूप से समर्पित हो जाते हैं तो आपको अपने सूक्ष्म- जगत के भोगने का अधिकार ही नहीं, बल्कि आपको अपने सूक्ष्म-जगत के निर्माण का, उसके पालन का और उसके संहार का अधिकार मिल जाता है। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने शरीर त्यागने से पहले अपना पूरा यदुवंश नष्ट कर दिया था। जितने अवतार हुए हैं मात्र भारत में हुए हैं। विष्णु- अवतार, ब्रह्मा-अवतार, शंकर-अवतार आदि-आदि। वह पूरे मानस पर अधिकार करके आते हैं। रावण के छोटे भाई विभीषण गिड़गिड़ाते हुए प्रभु राम के चरणों में पहुँचते हैं कि हे प्रभु ! मैं राक्षस हूँ, राक्षस का भाई हूँ। राक्षस-कुल में उत्पन्न हुआ हूँ। त्राहिमाम् ! त्राहिमाम् ! त्राहिमाम् ! तो भगवान राम उसको आश्वासन देते हैं, कि हे

विभीषण ! उठिये ! मेरा कानून सुनिये, जब कोई जीव मेरे सन्मुख होता है तो मैं उसके करोड़ों जन्मों का पाप नष्ट कर देता हूँ:—

''सन्मुख होई जीव मोहि जबहीं, कोटि जन्म अघ नासेहिं तबही।''

पाप नष्ट करके उसका हाथ किसी सन्त को पकड़ा देता हूँ ताकि वह सत्संग करता रहे, उसकी बुद्धि स्थिर रहे, शुद्ध रहे। गुरु महाराज ने कहा था, हम पूरा ब्रह्माण्ड समेटे हुए आते हैं पृथ्वी पर और ब्रह्माण्ड को साथ ले जाते हैं। इसलिए आज से अपनी हर चीज़ को समर्पित करिये, उसका आपको आनन्दपूर्वक भोग का अधिकार तुरन्त मिल जायेगा।

''बोलिये सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(12 दिसम्बर, 2000)

पंच-महाभूत

आज इष्ट व सद्‌गुरु के आदेश और आप सब परम सौभाग्यशाली जिज्ञासुओं की प्रेरणा से एक बहुत अद्‌भुत विषय आपके सम्मुख रखूँगा। विषय का नाम है **'पंच-महाभूत'**। सम्पूर्ण विश्व के प्राणी और पदार्थ जो आज तक पैदा हुए हैं और जो भविष्य में भी पैदा होंगे, उनका निर्माण पंच-महाभूतों से ही हुआ है। ईश्वर ने मानव-देह का निर्माण भी **पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश** के सम्मिश्रण से किया है। इन्हीं **'पंच- महाभूतों'** से इस मानव-देह का पालन होता है और जब संहार होता है तो यह देह **'पंच-महाभूतों'** में ही विलीन हो जाती है। यह सारा खेल **'पंच-महाभूतों'** का ही है। सबसे बड़ा चमत्कार है कि पंच-महाभूत स्वयं में निराकार हैं। जल को आप कटोरी में रखिये वह कटोरी का रूप ले लेगा, बाल्टी में रखिये वह बाल्टी बन जायेगा, लोटे में रखिये लोटा बन जायेगा, इसी प्रकार अग्नि, आकाश व वायु आदि स्वयं निराकार हैं लेकिन इनके संमिश्रण से जो मानव-देह बनती है, वह **साकार** है। **यह महाचमत्कार है ईश्वरीय माया का। इस शब्द को आप पकड़ लीजिये कि यह चमत्कार है ईश्वरीय माया का, मानव-माया का नहीं।** साधु-संत और महापुरुष जो माया को वश में करने को कहते हैं, **वह ईश्वरीय माया नहीं है। वह मानव-माया है** जिसमें मानव फँस गया, उलझ गया और उसके प्रारब्ध का निर्माण हुआ। पंचमहाभूतों से निर्मित यह मानव-देह पाकर जीव पृथ्वी पर अवतरित हुआ।

सबसे बड़ी बात जो मैं कई बार कह चुका हूँ कि मानव-देह जब माँ के गर्भ में निर्मित हो रही होती है तो मस्तिष्क का निर्माण लगभग दूसरे या तीसरे महीने में होता है अर्थात् हमारी मानव-देह की नींव ईश्वरीय-मन ने

रखी है, हमने स्वयं नहीं रखी। मानव-शिशु को सारी सुख-सुविधाएं मिलती हैं। उसकी देखभाल, खाना-पीना व चिकित्सा आदि का प्रबन्ध सब स्वतः होता है। कभी आप अपने जीवन के विभिन्न पहलुओं पर विचार करें तो आप मेरी बात से सहमत होंगे कि सबसे ज़्यादा सुविधाएँ आपको मिली तो कब मिलीं? जब आप शिशु थे। आपको ज्ञान नहीं था, कि मेरी माँ कौन है? मेरा पिता कौन है? मेरे भाई-बन्धु कौन हैं? मैं कौन हूँ? जैसे-जैसे बुद्धि का विकास हुआ तो वे सुविधाएँ छिनती गईं। जब बुद्धि का विकास हुआ और हम इस संसार के तथाकथित ठेकेदार बन गये, कि मैं पृथ्वी का पालनकर्त्ता हूँ, मुझे अपना परिवार चलाना है, अपना धर्म चलाना है, मुझे अपना समाज चलाना है, अपना देश चलाना है। हम स्वयं में ब्रह्मा, विष्णु और महेश बन गये। मैं चाहूँ तो उसको बर्बाद कर दूं, मैं चाहूँ तो आबाद कर दूँ। जब हमारी बुद्धि के साथ अहम् जाग्रत हुआ तो हमारी सुविधाएँ छिन गईं। अब रात को सोने के लिये गोली खानी पड़ती है। वातानुकूलित कमरे में नींद नहीं आती। भूख के लिये भी गोली खानी पड़ती है। कब? जब हमारी बुद्धि का तथाकथित विकास होता है। ईश-सृष्टि तो बहुत आनन्दमय बनी थी। इसमें कोई पुण्य, पाप, शुभ, अशुभ हो ही नहीं सकता। पशुओं का कोई प्रारब्ध नहीं होता। इन्हीं **'पंच-महाभूतों'** से वे भी निर्मित होते हैं। फिर मानव दुःखों व रोगों इत्यादि से पीड़ित क्यों हुआ? ईश्वर ने मानव को बुद्धि मात्र इसलिये दी थी कि **ऐ मानव ! देख मैं तुझे विलक्षणतम बुद्धि केवल इसलिये दे रहा हूँ ताकि तू संसार में जाकर मेरे कृत्यों की प्रशंसा कर सके।** मानव के अलावा जितने भी जीव-जन्तु हैं, नभचर, जलचर, थलचर उनमें किसी में इतनी बुद्धि नहीं है कि वे ईश्वर की प्रशंसा कर सकें।

इन पाँच-महाभूतों से देह निर्मित हुई और इन पंच-महाभूतों का प्रतिनिधित्व देह में है। जैसा कि मैं बता चुका हूँ कि पृथ्वी का प्रतिनिधित्व करती है आपकी **नासिका** (गंध), वायु का प्रतिनिधित्व करती है **त्वचा** ('स्पर्श), जल का प्रतिनिधित्व **जीभ** (रस), आकाश का प्रतिनिधित्व करते हैं **कान** (नाद) और अग्नि का प्रतिनिधित्व करते हैं **नेत्र** (तेज)। जब हम किसी

का या अपना परिचय करवाते हैं तो मुख की तरफ देखते हैं। किसी का परिचय हम उसके हाथ या पैर से नहीं करवाते। तो परिचय मुख से ही क्यों करवाया जाता है? क्योंकि नाक, आँखें, जीभ, कान और त्वचा सभी मुख पर हैं। ईश्वर के पाँचों प्रतिनिधि हमारे मुख पर ही हैं। यद्यपि वही शिरायें, धमनियाँ, और तंत्रिकाएँ देह के अन्य भागों में भी हैं लेकिन चूँकि ये पंच-महाभूतों के प्रतिनिधि मानव के मुख पर हैं, इसलिये कोई भी मानव पहचाना जाता है तो मुख से।

मुख में सबसे महत्त्वपूर्ण अंग हैं **'नेत्र'**। क्योंकि नेत्र **अग्नि** के प्रतिनिधि हैं और पंच-महाभूतों में से सबसे पवित्र महाभूत है **'अग्नि'**। मात्र अग्नि ही ऐसा महाभूत है जिसको प्रदूषित नहीं किया जा सकता। कोई पदार्थ चाहे कितना भी प्रदूषित हो, गंदा हो, जब अग्नि उसको दाह करती है तो विशुद्ध भस्मी बना देती है। इसलिये हम हिन्दुओं में विवाह-संस्कार में अग्नि के सम्मुख फेरे लिये जाते हैं। यह सब बातें आपकी देखी हुई हैं, लेकिन मैं उनसे आपको परिचित करवा रहा हूँ। **वायु प्रदूषित हो सकती है, जल प्रदूषित हो सकता है, आकाश प्रदूषित हो सकता है, पृथ्वी भी प्रदूषित हो सकती है लेकिन अग्नि कभी प्रदूषित नहीं हो सकती।** यह पांचों महाभूत निरन्तर गतिमान रहते हैं। पृथ्वी देखने में स्थिर लगती है, लेकिन यह सदैव गतिमान रहती है, न केवल अपनी धुरी पर घूमती है लेकिन सूर्य का चक्कर भी लगाती है। वायु गतिमान, जल गतिमान, आकाश भी गतिमान। एक दिन में कितनी बार आकाश अपना रंग बदलता है!

ये **'पंच-महाभूत'** मात्र ईश्वर के इशारे पर काम करते हैं, इसलिये ये ईश्वर के सीधे प्रतिनिधि हैं। याद रखिए, कोई भी ऐसा व्यक्ति, कोई भी ऐसा महामानव, जो अपना निर्णय नहीं देता, अपनी बुद्धि से हस्तक्षेप नहीं करता, जो ईश्वर द्वारा दी गई बुद्धि को मात्र उसके चिंतन, उसके मनन, उसके ध्यान में ही प्रयोग करता है और जो कुछ करता है ईश्वर के इशारे पर ही करता है, वह ईश्वर का सीधा प्रतिनिधित्व करता है। ईश्वर उसको यह शक्ति भी दे देते हैं कि वह पृथ्वी पर किसी भी सूक्ष्म-मंडल का निर्माण कर

सकता है, पालन कर सकता व संहार भी कर सकता है। इसलिये संतों में बहुत शक्ति होती है। उनके संकल्प-मात्र से सृष्टि का निर्माण हो जाता है। भगवान उन्हें यह अधिकार दे देते हैं। भूकम्प नामक पृथ्वी-प्रलय होती है। जल-प्रलय होती है व आकाश-प्रलय होती है। आकाश से उल्का पिंड गिरते हैं जो पृथ्वी को पाताल में धंसा देने की शक्ति रखते हैं। अग्नि-प्रलय होती है, वायु-प्रलय होती है। ये आपने सुना भी होगा और देखा भी होगा व पढ़ा भी होगा।

लोग पूछते हैं कि भगवान का ध्यान कैसे करें ? ईश्वर का ध्यान करने के लिये पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ, जो पंच-महाभूतों की प्रतिनिधि हैं, उनका अवरोध करना आवश्यक है। जैसे, जब हम ईश्वर का ध्यान करते हैं तो हम अपने नेत्र बंद करते हैं, कान बंद करते हैं, त्वचा से कोई स्पर्श नहीं करते, मुख में कुछ खाने के लिये नहीं रखते और नाक से किसी गंध का सेवन नहीं करते। बड़ी विचित्र बात है। इन पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का, जो ईश्वर का सीधा प्रतिनिधित्व करती हैं, हम निग्रह करते हैं, ईश्वर के ध्यान के लिये। इन्हीं पाँचों ज्ञानेन्द्रियों द्वारा हम संसार में फंसते हैं। जैसे **नेत्रों** द्वारा कोई सुन्दर दृश्य देखा, आप मोहित हो गये, वह है आपकी **'अग्नि-शक्ति'**। **कानों** से किसी की मीठी-मीठी बातें सुनी और फंस गये, यह आपकी **'आकाश-शक्ति'**। **नाक** से कोई सुगन्ध ली, यह है आपका **'पृथ्वी-तत्त्व'**। **जीभ** से कोई स्वाद लिया तो वह इतना लिया की रोगी हो गये, यह है आपकी **'जल-शक्ति'**। किसी का **स्पर्श** बहुत कोमल होता है, याद आता रहता है, वह है आपकी **'वायु-शक्ति'**। इन पाँचों-महाभूतों को ईश्वर-ध्यान के लिये बांधना पड़ता है। **संसार में फँसने के लिये भी ये पाँचों सहायक होते हैं और संसार से निकलने के लिये भी।**

यदि हम ईश्वर को भी साकार रूप में ले लें तो ये पाँचों उसमें सहायक हो जाते हैं। जब हम ईश्वर को साकार रूप में लेते हैं, अपने इष्ट के स्वरूप में लेते हैं तो आँखें बंद नहीं करते, आँखों खुली रहती हैं, ईश्वर से प्रार्थना करते हैं, उसी का श्रवण अच्छा लगता है, उसी के बारे में सोचना अच्छा

लगता है। उसको याद करके रोना अच्छा लगता है। आँखें मात्र उसे देखती ही नहीं हैं बल्कि उसकी याद में रोती भी हैं। अपने प्यारे की याद में जो आँसू बहते हैं, उनकी दिशा अलग होती है। वे आँख के बाहरी कोये से बहते हैं। कोई व्यक्ति संसार के लिये रो रहा है या ईश्वर के लिये रो रहा है, उसकी पहचान है कि ईश्वर के प्रेम में, उसकी याद में बहे हुए आँसू, आँख के बाहरी कोये से बहते हैं। वह दूसरी बात है कि जब आँसुओं का सैलाब आ जाये तो दिशा का अन्तर नहीं होता। जो संसार के आँसू हैं, वह अन्दर के कोये से बहते हैं। ईश्वर ने नेत्रों के आँसुओं की दिशा का भी ख्याल रखा है, कि मेरी याद में कोई रो रहा है तो आँसुओं की दिशा वह न हो जो संसार के लिये रोने में हो। जब हम ईश्वर की याद में उसके पास, उसके समीप बैठते हैं तो यही पांचों महाभूत ईश्वर के ध्यान में, उसकी आसक्ति में सहायक होते हैं और **वासना, उपासना** बन जाती है।

संसार की आसक्तियाँ भय पैदा कर देती हैं हमारे अन्दर। जबकि ईश्वर की आसक्ति भक्ति-आराधना बन जाती है तो उसमें भी पाँचों महाभूत सहायक होते हैं। अब इन पाँचों-महाभूतों का निग्रह ध्यान में जाने के लिये कौन करता है, संसार में फंसने के लिये पाँचों-महाभूतों को प्रेरित कौन करता है, ईश्वर के साकार दर्शन के लिये इन पंच-महाभूतों का नियन्त्रण कौन करता है? **वह करती है—मानव-बुद्धि।** यदि किसी मानव की बुद्धि विवेकमयी नहीं होती, तो मानव-बुद्धि गलती पर गलतियाँ करती है सबसे पहली गलती करती है, कि वह इस देह के नाम-रूप को अपना स्वरूप समझ लेती है। हम बच्चे को विशेष अवस्था में नाम देते हैं। जिस समय बच्चा उत्पन्न होता है, उस समय उसका कोई नाम नहीं होता। एक सूत्र बता रहा हूँ **'समाधि'—वह मानसिक अवस्था जिसमें हम जाग्रत होते हैं और अपने आपकी, अपने नाम-रूप में पहचान नहीं करते, उस समय हमारा अस्तित्व हमारे लिये नहीं होता और उस समय हमारी देह और देह पर आधारित जगत भी नहीं होता।** यह आध्यात्मिक तकनीक है जो केवल भारत की देन है। आजकल विज्ञान का बड़ा बोलबाला है, आप सभी

बुद्धिजीवी बैठे हैं लेकिन अध्यात्म भारत का ही उत्पाद है। आध्यात्मिक विज्ञान भारत की देन है। यहाँ की वादियों में, यहाँ की मिट्टी में, यहाँ की फिज़ाओं में आध्यात्मिकता की सुगन्ध है। थोड़ा एकाग्र करिए, आपको यह तकनीक मिल जायेगी। आप स्वयं अपने जीवन को सौंदर्यवान करिए। अरे ! मशीनी विज्ञान ने आपको तनावित कर दिया, आपको समय ही नहीं मिलता स्वयं के लिये। लेकिन आध्यात्मिक तकनीक ऐसी है कि जन्म बीत जाता है, समय का पता ही नहीं चलता। इतनी आनन्दमय स्थिति होती है—**महा-आनन्द।** यह मशीनीकरण आपको सुख तो दे सकता है पर आनन्द नहीं दे सकता। एक बात याद रखिए जिस वस्तु से सुख मिला है, चाहे वह आपकी देह हो, चाहे आपकी संतान हो, चाहे आपका घर हो, चाहे आपकी पदवी हो, चाहे आपकी डिग्रियाँ हों **जिससे भी सुख मिला, उससे आपको दुख भी अवश्य ही मिलेगा। यह निश्चित है, लेकिन जहाँ से आनन्द मिला वहाँ से आनन्द ही मिलेगा**, क्योंकि आनन्द का ताल्लुक दुख व सुख दोनों से है। माता कुंती ने भगवान श्री कृष्ण से कष्ट मांगे थे, कि बुआ तुम क्या चाहती हो? कि हे कृष्ण ! तुम मुझे कष्ट ही देना। क्यों? क्योंकि जब कष्ट होता है, तो मुझे तुम्हारी याद आती है। इसलिये मुझे सुख मत देना। श्री कृष्ण ने कहा तथास्तु। बुआ तुम कष्टों में ही रहोगी।

पंच-महाभूतों पर बात चल रही थी, पाँचों-महाभूत पृथ्वी, जल, वायु, आकाश व अग्नि से अलग-अलग खेल कौन खेलता है? **यह मानव-बुद्धि।** यह बुद्धि जानती है कि जब वह विकसित नहीं हुई थी, जब हम शिशु थे तब हमें अत्यधिक सुविधाएँ मिलती थीं और वे सभी सुविधाएँ कब छिन गईं, जब इस बुद्धि का तथाकथित विकास हुआ। मैं बुद्धि के विरोध में नहीं हूँ। बुद्धि की गलत दिशा के विरोध में हूँ। तथाकथित बुद्धि का जब विकास हुआ तो हमारी सुविधाएँ छिन गईं, तनाव हो गया और सारी बिमारियाँ हमारे पास आ गईं, घेर लिया बिमारियों ने हमें। अत्यधिक बुद्धिजीवी अधिक बीमार रहते हैं:—

'चकवा, चकवी, चतुर नर तीनों रहन उदास।'

बहुत बुद्धिजीवी कभी खुश नहीं रहते। वे अधिकतर सकारात्मक के

बजाय नकारात्मक होते हैं। प्रत्येक बुद्धिजीवी यह सोचे कि जब हम पृथ्वी पर आये तो क्या पैदा होना हमारे हाथ में था? नहीं ! हमारे अमुक-अमुक माता-पिता होंगे यह हमारे हाथ में नहीं है। हमारा परिवार हमारे हाथ में नहीं था। हमारा अगला श्वास हमारे हाथ में नहीं था। हमारी मृत्यु कब होगी? वह भी हमें ज्ञात नहीं है। मानव-बुद्धि का दुरुपयोग हुआ जो कि मात्र ईश्वर की सराहना के लिये थी। अतएव हमने इस बुद्धि से स्वयं को ब्रह्मा मान लिया कि मैं निर्माणकर्त्ता हूँ, अपना परिवार मेरा बनाया हुआ है, मैं ही किस्मत को निर्धारित करता हूँ। जब यह **'अहम्'** बुद्धि में आया तो बुद्धि जड़ हो गई। उस चेतन से हम विमुख हुए, चेतन कौन है? **ईश्वर।** उसी ने हमारा निर्माण किया था, वह ही हमारा पालनकर्त्ता है, वह जब चाहे हमारा श्वास बंद कर हमारे जीवन को समाप्त कर सकता है।

जब मानव-बुद्धि ईश्वर से विमुख हो जाती है तो सम नहीं रहती, विक्षिप्त हो जाती है तो उस विक्षेप से पैदा होते हैं रोग, दोष, भय, त्रास आदि। उसको कहा है शास्त्र ने **मलिनता।** इसके विपरीत विवेक-बुद्धि **'ईश्वर'** के साथ सम्पृक्त रहती है। ब्रह्म-चिंतन में लिप्त रहती है। विचार करती है, चिंतन करती है। उसके बाद विचारधारा पहुँचती है मन के पास, तो मन मनन करता है। मनन के बाद उसका **नित्याध्यासन** होता है। यह शास्त्रोक्ति है कि आपको सत्य को दोहराना है, इसे कहा है नित्याध्यासन। नित्याध्यासन के बाद जब ईश्वर-कृपा हो तो वह सिद्धि बन जाती है जो आपके साथ जन्म-जन्मान्तरों तक चलती है, जबकि संसार की सारी उपलब्धियाँ डेढ़ किलो राख बनकर रह जाती हैं। आपका बैंक में जितना भी धन हो, आप अगले जन्म में यह जान भी जाएँ कि इस बैंक में मेरा इतने करोड़ रुपया था, आप एक पैसा भी नहीं निकलवा सकते। यदि आप निकलवाने के लिये कहेंगे तो वह पुलिस को फोन कर देंगे कि यह पागल है। कितना शानदार बंगला बनाया है, अगले जन्म में आप उसमें कदम भी नहीं रख सकते। आपकी देह, आपकी डिग्रियाँ, आपका पद सब यहीं रह जाता है। आपके साथ क्या जाता है? **आपका नित्याध्यासन, आपका**

मनन जो आपकी विवेक-बुद्धि से हुआ। विवेक-बुद्धि वह है जो आपकी समाधि-स्थिति के अनुभव का, वेदों का, शास्त्रों का, उपनिषदों का श्रवण करती है, पढ़ती है, मनन करती है। विवेक-बुद्धि का उत्पाद जो सिद्धि है, जो सद्गुरु की उत्कृष्ट कृपा से मिलती है, जो आपके साथ चलेगी। वह निर्धारित करेगी आपका अगला जन्म।

अगले जन्म में आपका नाम-रूप, आपका ऐश्वर्य आदि आपके तप पर आधारित होता है। तपस्वी बच्चे जब पैदा होते हैं, वे शक्ल से ही तपस्वी लगते है, उनका सारा कार्य-कलाप, सारा व्यवहार, बातचीत, उनका मिलना-जुलना सब कुछ तप पर आधारित होता है। वे पैदायशी ऐश्वर्यवान होते हैं। आपने अपने घरों में भी देखा होगा कि बच्चे-बच्चे में अन्तर होता है। यह अन्तर उसके प्रारब्ध के कारण होता है। जो उसी की जड़ता एवं अहं बुद्धि से बना है। मानव का नाम व रूप एक प्रकार का आभूषण है, उपाधि है। यदि यह दिन-रात आपके साथ चिपका रहेगा तो अवश्य व्याधि बन जायेगा। यदि आप आभूषणों को पहन कर बिस्तर पर लेट जायें तो आपको नींद नहीं आयेगी। आपको वह उतारने पड़ेंगे। तो नाम-रूप की वह उपाधि एक वह अलंकार है, वह आभूषण एक समय आवश्यक थे आपकी पहचान एवं सम्पर्क के लिये। यदि आप उनको 24 घंटे लटका कर रखेंगे तो आपको नींद नहीं आयेगी। हर आदमी हर रोज़ मरता है लेकिन अनुभव नहीं करता। सुबह-सवेरे उठकर हम अपनी फैक्टरी में जाते हैं, ऑफिस में जाते हैं और न जाने कहाँ-कहाँ जाते हैं, धन कमाना चाहते हैं हम। धन कमाते हैं लेकिन जब रात को नींद आती है, उस समय हमारा कोई मुनीम धन की बात करे तो हमें बुरा लगता है। जिस धन को कमाने के लिये आप दिन में कितनी हेराफेरियाँ करते हैं, रात को आप उसका नाम भी सुनना नहीं चाहते। आप बहुत सुन्दर हैं, दिन में कई बार शीशा देखते हैं लेकिन रात को नींद से उठाकर कोई आपको शीशा दिखाये तो आप शीशे को उठा कर फेंक देंगे। आपको अपना श्रंगार, अपना पद, धन-सम्पत्ति, सगे-सम्बन्धी सब बुरे लगते हैं क्योंकि उस समय आपके नाम-रूप की उपाधि, व्याधि बन

जाती है और इस व्याधि से मुक्ति के लिये चाहिये—**संहार।** वहाँ पर शिवत्व काम करता है यदि जन्म आनन्दमय है तो मृत्यु भी आनन्दमय होती है और जीवन चलता भी आनन्द में ही है।

एक सम्बन्ध हमने बुद्धि से बनाया कि यह मेरा देवर है क्योंकि यह मेरे पति का छोटा भाई है। यह मेरा ससुर है क्योंकि यह मेरे पति का पिता है। चाहे उनसे आपकी बात करने की इच्छा भी न हो लेकिन व्यवहार रखना पड़ेगा। उस नाम-रूप की सृष्टि से बाहर आने के लिये महापुरुषों ने एक उपाय बताया जो आपके सम्मुख रख रहा हूँ। आप अपना एक सम्बन्ध ईश्वर के साथ बना लें और फिर नाम-रूप की सृष्टि का भरपूर प्रयोग करें तो आप नाम-रूप की सृष्टि से बाहर आ जायेंगे। जैसे पति के कारण ससुराल के सारे सम्बन्ध होते हैं, उन सम्बन्धों को कहा है—**स्वार्थ सम्बन्ध**—जो मात्र भौतिक होते हैं। इस प्रकार अपने सम्बन्ध हम ईश्वर के द्वारा, अपने इष्ट के द्वारा रखते हैं, उन सम्बन्धों को कहा है—**आध्यात्मिक सम्बन्ध।** इन सम्बन्धों में अपनत्व पहले होता है और इन्हें नाम बाद में दिया जाता है जबकि भौतिक सम्बन्धों को नाम पहले दिया जाता है चाहे अधिकार हो या न हो। आज आप जिस प्रेम से बैठकर सुन रहे हैं और जिस प्रेम से हम बोल रहे हैं, यह है **आध्यात्मिक सम्बन्ध।** आध्यात्मिक सम्बन्धों में कोई औपचारिकता नहीं होती जबकि भौतिक सम्बन्धों में बन्धन होता है और यह सम्बन्ध दुखों में प्रवेश करवा देते हैं जबकि आध्यात्मिक सम्बन्ध हमें आनन्द में ले जाते हैं। यदि **सद्गुरु सद्शिष्य को अध्यात्म के सागर में न ले जाये तो वह समर्थ गुरु नहीं है।**

पहले हैं स्वार्थजन, स्वार्थजन हमारे भौतिक सम्बन्धी होते हैं, उन भौतिक सम्बन्धों में भी कई बार आध्यात्मिक सम्बन्ध मिल जाते हैं। कई बार आपकी कोख से बेटा पैदा होता है जो हो सकता है पूर्व-जन्म में आपका गुरु रहा हो। इसलिये आपको पहचानना आवश्यक है कि जिनको हम भौतिक सम्बन्धी कहते हैं वे वास्तव में हमारे क्या लगते हैं? भौतिक सम्बन्धियों को कहा है स्वार्थजन या स्वजन। तो स्वजन की पहचान क्या होती है? जब वह

दुखों में, कष्टों में हमारे पास आते हैं तो हमारा दुख कम हो जाता है। स्वजन को याद करने से ही हमारा दुख कम हो जाता है और जब वह हमारी खुशी में आते हैं तो हमारी खुशी कई गुणा बढ़ जाती है, जबकि स्वार्थजनों से ऐसा नहीं होता। वे मुँह पर तो मुस्कुराते हैं लेकिन भीतर ईर्ष्यावश जले होते हैं। सावधान ! आज से हम केवल उन्हीं सम्बन्धियों में विचरण करेंगे जो हमारे स्वजन हैं, जो हमारे लिये प्रार्थना करते हैं। यह केवल आध्यात्मिक जगत में ही सम्भव है। तीसरे जो सम्बन्ध हैं वे हैं—**स्वरूपजन**।

जो लोग नशा करते हैं, ज़रा विचार करें कि वे नशा क्यों करना चाहते हैं, वह अपने से दूर क्यों जाना चाहते हैं ? जब आप स्वयं से प्यार करेंगे तो आपको नशे की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। अरे ! यदि नशा करना है तो ईश्वर के नाम का नशा करिये :—

''नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात।''

किसी को यदि इस नशे की दो-चार बूँद भी मिल जायें तो वे बड़े भाग्यशाली हैं। सत्संग, उपनिषदों एवं वेद-वेदान्तों के पठन-पाठन द्वारा, कीर्तन-द्वारा, मनन-द्वारा, नित्याध्यासन-द्वारा, श्रुतियों व एकान्त-द्वारा, भजन-द्वारा, विचार द्वारा आपको अपने स्वरूप का नशा अवश्य मिल सकता है, यदि आपको अपने ईश्वर में, अपने इष्ट में परम विश्वास हो तो। इस नशे से आपको जो सरूर आता है वह किसी दूसरे नशे में नहीं है। जबकि शराब का नशा तो बर्बादी का मार्ग है। मैं कई बार कह चुका हूँ लेकिन हर बार दोहराना अच्छा लगता है। मैं इस बात को विश्व स्तर पर बोलता हूँ और कोई इसको आज तक काट नहीं सका है कि जिस व्यक्ति के घर में शराब रखी है चाहे वह पीता न भी हो, तो भी उसके घर में दो बातें ज़रूर होंगी, एक तो उसके घर में कितनी भी कमाई क्यों न हो, पैसे की कभी बरकत नहीं पड़ सकती, हमेशा पैसे की कमी बनी रहेगी और दूसरा उस घर में कोई न कोई क्लेश अवश्य रहेगा ही।

नशा यदि करना है तो आप ईश्वर के नाम का करिए और नाम व रूप से बचने के लिये, जिसकी वजह से आप पाप-पुण्य, अच्छे-बुरे में फँसे, तो

इस नाम-रूप को ईश्वर के नाम-रूप में मिला दीजिए। इसके लिये आपको अपने इष्ट को साकार रूप में लेना होगा क्योंकि आप बाखुद साकार हैं। आप साकार हैं, आपका एक नाम व रूप है और इस नाम-रूप पर आधारित सम्पूर्ण जगत है। इसलिये ईश्वर को भी साकार मान लीजिए और उस परम सत्ता को साकार मानकर उसके साथ एक सम्बन्ध पैदा कर लीजिए क्योंकि किसी व्यक्ति के साथ हमारा उठना-बैठना तब शुरू होता है जब हमारा उसके साथ सम्बन्ध होता है। यदि हमारा सम्बन्ध नहीं होता तो हम उसके साथ व्यवहार नहीं कर सकते। केवल ईश्वर को मानना और ईश्वर को नाम व रूप में मानना ही काफी नहीं है। उसके साथ एक सम्बन्ध भी अवश्य होना चाहिये और जब आपका इष्ट के साथ व ईश्वर के साथ सम्बन्ध हो जाये तो उसके साथ वह व्यवहार करिये जो आपको अच्छा लगे। जब ईश्वर के साथ आपका सम्बन्ध घनिष्ठ हो जायेगा तो आपको ईश्वर भी मान्यता दे देंगे। जब ईश्वर आपके सम्बन्ध को मान लेंगे तो आपकी मलिनता, आपका विक्षेप हट जायेगा। अंत में आपका आवरण हट जायेगा। जो पर्दा पड़ा हुआ था वह भी हट जायेगा और आपको अपने स्वरूप का दर्शन हो जायेगा। ईश्वर के मैंने छः गुण बताये थे, वे छः गुण हम सब में हैं। लेकिन इस नाम-रूप के बंधन में हम खुद को खुद से ही ढके हुए हैं।

अपने यार के दर्शन करके, उसकी एक झलक पाने के बाद आप नशई हो जाते हैं, एक नशा हो जाता है। मुदिता, प्रसन्नता नहीं मुदिता, मुदिता का कोई अंग्रेजी अनुवाद नहीं है, तो उस नशे से आप जीवन जीते हैं। महापुरुष कभी वृद्ध नहीं होते। वे अजर रहते है, अमर रहते हैं, कभी मरते नहीं हैं। जैसेकि हम भारतीय, आध्यात्मिक जगत में उत्पन्न होने वाले लोग हमेशा अजर हैं, अमर हैं, जगद्गुरु हैं। हमको यह ज्ञान पूरे विश्व को देना है। हमारे देश जितना विकसित कोई और देश हो ही नहीं सकता। इन शब्दों के साथ मैं अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय।''

(4 फरवरी, 2001)

गृहस्थ

आज की संध्या में हम सौभाग्य से एक परम गृहस्थ के घर में बैठे हैं, तो आज जो कुछ भी कहेंगे, गृहस्थ के बारे में कहेंगे। गृहस्थ का दार्शनिक पहलू क्या है? भारतीय संस्कृति में गृहस्थ-आश्रम का बहुत महात्म्य है। इष्ट-कृपा से गृहस्थ के दार्शनिक पहलू के बारे में जो कुछ भी कहेंगे, उस पर चिन्तन-मनन करियेगा, निस्संदेह आपका जीवन अति आनन्दमय हो जाएगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

यह गृहस्थ-आश्रम शुरू होता है, विवाह के बाद। हमारे यहाँ विवाह से पहले गृहस्थ शुरू नहीं होता। भारतीय संस्कृति के अनुसार गृहस्थ आश्रम परमपावन है, जो धार्मिक-कृत्यों के अन्तर्गत, माता-पिता और बुज़ुर्गों के आशीर्वाद तथा धार्मिक रिवाजों के परिवेश में विवाह के बाद शुरू होता है। विवाह का अर्थ क्या है, विवाह की आवश्यकता क्या है? जिस माता-पिता ने हमें उत्पन्न किया है, जिस देह के अभिव्यक्त होने के वे निमित्त बने हैं, आगे हमको भी अपनी संतान ऐसी उत्पन्न करनी है जोकि हमारे से ज्यादा उत्कृष्ट हो, अधिक सद्‌गुणों से युक्त हो, विशुद्ध संस्कारों से परिपूरित हों और जो हमारे समाज, देश और विश्व के लिये कल्याणकारी हो। जिससे हम पितृ-ऋण से उऋण हो सकें। दूसरा है **देव-ऋण**। पंच-महाभूतों—पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश से हमारी यह काया निर्मित है। इन्हीं पंच-महाभूतों का पूजन हो एवं विशुद्धीकरण हो यह है **देव-ऋण।** क्योंकि हम आय-कर देते हैं, गृह-कर देते हैं वैसे ही जिन पाँच-महाभूतों से यह मानव-देह 9 महीने 7 दिन में माँ के गर्भ में बनती है पूर्णतया स्वचलित एवं

वातानुकूलित, तो हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम इन पाँच-महाभूतों का ऋण भी दें। जो मैंने अपने श्री-फोर्ट के प्रवचन में इंगित किया था कि यद्यपि ईश्वर हमसे **कर** (Tax) मांगता नहीं है, तो भी हमें देना अवश्य चाहिये। पृथ्वी-पूजन, जल-पूजन, आकाश-पूजन, वायु-पूजन, अग्नि-पूजन द्वारा यदि हम इनका टैक्स नहीं देते तो हमको सज़ा मिलती है और तीसरा ऋण है **ऋषि-ऋण**। क्योंकि हम विशुद्ध कुलीन भारतीय अपने साथ ऋषियों का ज्ञान लेकर पैदा होते हैं, हमको ज्ञान अर्जित नहीं करना पड़ता। वह ज्ञान यदा-कदा समय-समय पर महापुरुषों व संतों की कृपा, स्वाध्याय, जप-तप से बढ़ता है और उस ज्ञान को हम विश्व में फैलायें, तो यह है **ऋषि-ऋण।** गृहस्थ-आश्रम में इन तीन ऋणों को चुकाये बिना जो संसार छोड़ देता है वो पाप का भागी बनता है।

विवाह के बारे में अपनी आत्मानुभूति के आधार पर कुछ विचार प्रकट करूँगा। जब लड़का या लड़की का विवाह योग्य होते हैं तो आज पाश्चात्यानुगमन के कारण हम उनके विवाह के लिए केवल भौतिक पक्ष को ही देखते हैं। लड़की-लड़के की आयु, उनकी सुन्दरता और विशेषतः लड़के के धन-अर्जन का साधन, उसका पद व आर्थिक स्थिति इत्यादि देखी जाती है। वे सब चीज़ें देखी जाती हैं जो परिवर्तनशील हैं। जब इन सब परिवर्तनशील आधारों पर शादी तय होती है तो वह शादी भी परिवर्तनशील हो जाती है। जो परम सत्य है वही हम बता रहे हैं। आप मेरी बात से सहमत होंगे कि मानव-देह में एक ऐसी चीज़ है जो बचपन से लेकर मृत्यु तक नहीं बदलती, वह है–**उसका नाम**। किसी भी व्यक्ति का नाम नहीं बदलता और यह नाम आधारित होता है–धर्म पर। थोड़ा सा गहन विचारणीय विषय है। अगर हमें शक हो जाय कि यह व्यक्ति हिन्दू है या मुसलमान है, तो बोलेंगे कि इसका नाम पूछिये। कि–मोहम्मद याकूब। बोले–मुसलमान है। तो नाम आधारित है धर्म पर। **धर्म नाम पर आधारित नहीं है।** थोड़ा सा गहरा लेकर जाऊँगा, एकाग्र करिये। किसी भी व्यक्ति का नाम उसके धर्म पर आधारित है। तो एक देह में, नाम ही ऐसा है जो शुरू से लेकर अंत तक वही

रहता है। शेष जितनी वस्तुएँ देह पर आधारित हैं, जैसे—मकान, शिक्षा, धन-सम्पदा व पद ये सब अन्य धर्मों में भी हो सकती हैं। अगर एक हिन्दू एम. बी. बी. एस. है तो एक ईसाई भी एम. बी. बी. एस. हो सकता है, इंजीनियर हो सकता है, छोले भठूरे की दुकान सभी लोग कर सकते हैं, इसके लिये धर्म की आवश्यकता नहीं है। जिन चीज़ों को हम विवाह का आधार मानते हैं उनमें से मात्र एक नाम ही ऐसा है जो धर्म का सूचक है। पहली बार यह सत्य आपके सामने रख रहा हूँ।

निस्संदेह विवाह एक धार्मिक कृत्य है और विवाह को यदि हम स्थायी चाहते हैं तो विवाह भी धर्म पर ही आधारित होना चाहिए। भारतीय विवाह स्थायी क्यों होते हैं? क्योंकि धर्म पर आधारित होते हैं। जब धार्मिक-कृत्यों में लोग शराब पी कर आते हैं, नाचते हैं तो वो विवाह धार्मिक नहीं हो सकते। आज भारतीय संस्कृति को पाश्चात्यानुगमन ने आच्छादित कर दिया है। सभी यहाँ शूरवीर बैठे हैं। हमको यह बीड़ा उठाना है कि भारतीयता को पुनः जाग्रत करें ताकि घर-घर में जो आग लगी हुई है वो शान्त हो जाये। हम भारतीय अपनी विवाह-पद्धतियों और चिरस्थायी विवाह के कारण विश्व में विख्यात हैं क्योंकि हमारे यहाँ विवाह एक विशुद्ध धार्मिक-कृत्य है। यदि आप चाहते हैं कि विवाह चिरस्थायी हो तो उसके लिये यह परमावश्यक है कि विवाह भी धार्मिक पूजाओं की तरह होने चाहिये। अगर आप चाहते हैं कि आपके बेटे-बेटी विवाह के बाद सुखी रहें और एक दूसरे के प्रति श्रद्धा रखें तो यह परमावश्यक कानून है। आजकल इधर फेरे होते हैं और उधर शराब पीकर नृत्य होते हैं, वहाँ पर भूत-प्रेतों का आगमन होता है। जो लोग शराब पीकर आते हैं वे आपके बेटे-बेटी को कभी आशीर्वाद नहीं देंगे और न उनमें आशीर्वाद देने की क्षमता होती है।

जब कोई शराब पीता है तो उसमें तामसिक शक्तियाँ जाग्रत हो जाती हैं और तामसिक शक्तियाँ जाग्रत होने के बाद वो व्यक्ति प्रेत बन जाता है। आज इस दरबार से यह प्रतिज्ञा लेकर जाइये कि यदि आप किसी के विवाह में आमंत्रित हैं आशीर्वाद देने के लिए, तो आप व्रत रखकर जाइये। आपके

ऊपर वर-वधु के माता-पिता ने बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी दी है, आशीर्वचनों सहित जाइये विवाह में। यदि आप दम्पत्ति के सुखद जीवन की अभिलाषा करना चाहते हैं, कामना करना चाहते हैं, तो न स्वयं शराब पीजिये और न किसी को पीकर आने दीजिये। कोई भी नशा करके वहाँ न आये क्योंकि यह एक धार्मिक-कृत्य है और यदि यह भौतिक कृत्य होगा तो भौतिक परिस्थितियाँ जैसे बदलती हैं इसी प्रकार विवाह भी अवश्य बदल जायेगा, यह परम सत्य है। अपनी अनुभूति के आधार पर कह रहे हैं हम।

जब धर्म अग्रसर होता है, उत्थान होता है धर्म का, तो अध्यात्म में बदल जाता है और जब धर्म का पतन होता है तो वह भौतिकता में बदल जाता है, नये सूत्र दे रहा हूँ। कोई धार्मिक विवाह जिसमें पति-पत्नी को एक दूसरे में अगाध श्रद्धा हो, निष्ठा हो, अपनत्व हो, विश्वास हो तो उनका जीवन आध्यात्मिक हो जाता है। यदि आप चाहते हैं कि आपका साथी जन्म-जन्मान्तर तक आप के साथ चले, तो विवाह का आध्यात्मिक होना आवश्यक है और ऐसे विवाह में एक देह में दोनों समा जाते हैं। जब दो नदियाँ मिलती हैं तो मिलने के बाद अपना नाम-रूप खो देती हैं। वो लिगांतीत, देशातीत, सीमातीत, कर्मातीत, धर्मातीत होती हैं, दोनों का अपना धर्म खो जाता है। इसका विशुद्धतम उदाहरण हमारे भारत में है। यदि आप आध्यात्मिक गृहस्थ का सर्वोत्तम उदाहरण पूछना चाहते हैं तो वो हैं प्रभु श्री हनुमान जी। आप हमारी बात से बहुत हैरान हो गये होंगे ! अगर विश्व में आज तक कोई सर्वोत्कृष्ट परमगृहस्थ हुआ है तो वो हैं—प्रभु श्रीहनुमान जी। सर्वोत्कृष्ट गृहस्थ की संक्षेप में एक पौराणिक कथा सुनाउँगा, जिसके पीछे बहुत महान दर्शन है।

रावण बहुत प्रतापी और बली राजा था, आज तक पृथ्वी पर यदि कोई महाशिव-भक्त हुआ है तो वो रावण से बढ़कर कोई नहीं हुआ। रावण हर रोज़ कैलाश पर्वत पर भगवान शंकर की पूजा के लिये जाता था और अपने सिर काटकर चढ़ाता था उनको। स्वभाव से राक्षस था और वहाँ जाकर वो पूरे पर्वत को हिलाता, पेड़ों को हिलाता, बहुत उत्पात करता था। रावण की

शक्ल देखकर माता पार्वती और गणेश जी बहुत परेशान हो जाते थे। जब रावण पूजा के लिये आता था तब गणेश जी रोते हुए अपनी माँ के पास चले जाते थे, कि आ गया वही कल वाला। माँ पार्वती ने बहुत दिनों तक झेला रावण को। एक दिन रावण ने आकर गणेश जी का दांत खींच दिया प्यार से। वह इसके स्पर्श से भयभीत हो गये और बहुत चिल्लाये व रोये। माता पार्वती ने शंकर जी से कह ही दिया कि—प्रभु ! यह जो आपका भक्त है, यहां न आये तो बड़ा अच्छा हो। भगवान शंकर ने कहा—यह तो हमारा परम भक्त है, यह तो आएगा ही। माँ पार्वती कहने लगीं—मैं तो जानती ही थी कि आप यही उत्तर देंगे, लेकिन प्रभु ! क्या ऐसा नहीं हो सकता कि आपको इतना ही प्यार है अपने भक्त से, तो आप स्वयं इसके घर में जाकर इसकी पूजा ले आया करिये। भगवान शंकर बोले—यह ठीक है। तब से ही भोले-भडांरी रोज़ लंका जाकर रावण की पूजा ग्रहण करते थे।

जिस समय हनुमान जी ने लंका-दहन किया और रावण ने जलती हुई लंका और हनुमान जी का वह स्वरूप देखा तो भयभीत हो गया। जब राजा भयभीत हो जाता है तो वो अपना भय प्रजा के सामने प्रकट नहीं करता। रावण भी अपने महल की छत पर इधर-उधर घूमने लगा और विचार करने लगा कि यह वानर कोई साधारण वानर नहीं है। तो यह वानर कौन हो सकता है? जब आदमी कष्ट में होता है, चिन्ता में होता है तो वो अपने आराध्य देव को पुकारता है। रावण भी भगवान शिव के मन्दिर में गया, जो महल के गर्भ-गृह में ही था। कहते हैं रावण जब तीन बार **'ॐ नमः शिवाय'** का जाप करके रावण ने जब शंकर भगवान का आह्वान किया तो भगवान शंकर मुस्कराते हुए प्रकट हो गये—कहो रावण। उसने कहा—प्रभु ! मैं बहुत दुखी हूँ। यह वानर कौन है? मैंने सब शास्त्र, देवी-देवता सिद्ध कर लिये, लेकिन मैंने इसके बारे में न सुना न देखा, यह कौन है? तो भगवान शंकर ने कहा, रावण ! यह मैं हूँ। यह मेरा एकादश रूद्र-रूप है। जिसके बारे में हम संक्षेप में सुनायेंगे।

एक बार कैलाश पर्वत पर बैठे भगवान शंकर को ध्यान आया कि

भगवान विष्णु राम-रूप में अवतार लेने वाले हैं, जब तक राम अवतार रहे, मैं उनकी सेवा में रहूँ। सेवा में वो शंकर बनकर नहीं जा सकते थे क्योंकि विष्णु शंकर के उपासक हैं। उन्होंने माँ पार्वती को बुलाया कि पार्वती ! विष्णु राम-अवतार लेने वाले हैं अयोध्या में और हमारी इच्छा है कि हम उनकी सेवा में जाएँ। सेवक के लिए भोग का कोई अर्थ ही नहीं है, इसलिए हम तुम्हें साथ नहीं लेकर जाएँगे। राज-सेवा में न जाने कौन, कब, किस कार्य पर लगा दे। 24 घंटे काम होता है, हम तुम्हें नहीं ले जा सकते। अब पार्वती को सेवा वाली बात तो बहुत अच्छी लगी पर यह अच्छा नहीं लगा कि शंकर जी उनको छोड़कर जायेंगे। बोलीं—महाराज ! ऐसा है, आप सेवा में जाइये लेकिन आपको मुझे साथ लेकर ही जाना पड़ेगा। शिव-शक्ति में तू-तू, मैं-मैं हो गई, शिव-शंकर का मुहँ इधर और पार्वती का उधर। बोलचाल बन्द। तो देवी-देवताओं ने बैठकर विचार-विमर्श किया कि शिव-शक्ति में झगड़ा हो गया है और शिव-संकल्प हो चुका है कि मैं जाऊँगा और देवी कह रहीं हैं कि मैं नहीं जाने दूँगी, इनका फैसला कैसे करवायें। कन्दराओं में देवताओं की सभायें होने लगीं, अन्ततः वो एक नतीजे पर पहुँचे और उन्होंने भगवान शंकर और पार्वती के चारों ओर खड़े होकर वन्दना करनी शुरू की, स्तुति शुरू की और कहा—महाराज ! ऐसा है, भगवान विष्णु, अयोध्यापति राजा राम के रूप में अवतार ले रहे हैं। आप सेवा में वानर-रूप लेकर जाइये और माता जी आपकी पूँछ बनकर जायेंगी। अब माता जी बहुत प्रसन्न हो गईं कि वो पूँछ बनकर साथ जायेंगी। उन्होंने वायदा किया कि राज-सेवा में जो मारधाड़ करनी पड़ेगी तो वह मैं करूँगी। हनुमान जी ने जितने भी मारधाड़ के कृत्य किये तो वो पूँछ से ही किये।

भगवान शंकर ने कहा—रावण ! इस प्रकार मैंने वानर-रूप लिया। लेकिन एक समस्या है इस स्वरूप में ! क्योंकि हम दोनों एक देह में आ गये हैं, इसलिए इस देह में मेरी कितनी अपार शक्ति है, मैं नहीं जानता और साक्षात् शक्ति भगवती भी इस देह में अपनी अथाह शक्ति को नहीं जानतीं। जब भी हनुमान जी से कोई कार्य लेना होता है तो उनको जाग्रत करना

पड़ता है, क्योंकि हनुमान जी को अपनी शक्ति का कोई आभास ही नहीं है। जब विवाह धार्मिक रूप से आध्यात्मिक हो जाता है, तब पति-पत्नी दोनों एक देह में आ जाते हैं, जो मात्र भारत और भारतीयता में ही सम्भव है, तब उस गृहस्थ में हनुमन्त-शक्ति का अवतार हो जाता है और वह गृह परम तीर्थ बन जाता है। लोगों की कामनायें इस घर में आकर पूर्ण हो जाती हैं। तप के लिए हिमालय की कन्दराओं में लोग जाते हैं, गंगा-जमुना के किनारे जाते हैं, लेकिन ऐसे गृह जहाँ पर हनुमंत-शक्ति अवतरित हो जाती है, पति-पत्नी का सामंजस्य हो जाता है तो वो गृह भी तप के लिये परम उचित हैं, वहाँ पर जाते ही आप समाधिस्थ हो जाते हैं। आपके ज्ञान की जागृति हो जाती है। इस घर में जो संतान उत्पन्न होती है वो महायति, महामति, महानृप और महायोद्धा होती हैं। यहाँ भी कुछ ऐसे महायोद्धा बैठे हैं, जो विश्व को हिला सकते हैं अपने विचारों से, अपनी शक्ति से। जब लड़के और लड़की का विवाह होता है, गृहस्थ शुरू हो जाता है। अतः किस प्रकार हम आनन्दमय गृहस्थ बितायें, क्योंकि सबसे ज्यादा कष्ट आज गृहस्थों में हैं। कष्ट इसलिये हैं कि हम यह भूल गये हैं कि गृहस्थ का आधार क्या है। आज न केवल हमें इन सिद्धान्तों को स्वयं मानना है, बल्कि विश्व में भी फैलाना है।

सर्वप्रथम, आनन्दमय गृहस्थ बिताने के लिये ऐश्वर्य चाहिये। पूर्ण ऐश्वर्य के 7 अंग हैं—सम्पन्नता या समृद्धि, सुख, शान्ति, संतोष, स्वजन, स्वास्थ्य और सत्संग। ये सम्पूर्ण अंग हैं ऐश्वर्य के। पूर्ण ऐश्वर्य का अर्थ केवल धन नहीं है। अब यह कैसे आये? भारत आध्यात्मिक तकनीक में सर्वश्रेष्ठ है। हमें अपनी इस आध्यात्मिकता पर गर्व होना चाहिए। अगर हम अपनी इस आध्यात्मिक तकनीक को बाहर के देशों में निर्यात करें तो यह वहाँ जाकर नष्ट हो जाएगी। **जो ज्ञान-विज्ञान यूरोप और अमेरिका के पास है, वह हमारे पास भी है लेकिन आध्यात्मिक विज्ञान हमारे पास ही है।** किस प्रकार ऐश्वर्य आता है, हर व्यक्ति ऐश्वर्यवान क्यों नहीं है, जो हैं वो क्यों हैं? ऐश्वर्य का बहाव पूर्ण शुद्धता की ओर होता है। सर्वप्रथम वातावरण की शुद्धता चाहिए, **आप 10 – 20 मिनट हर रोज़ हवन किया करें।** पृथ्वी,

जल, वायु, आकाश व अग्नि का पूजन है—**हवन**। अपने हिसाब से अपने इष्ट के नाम से आहूतियाँ अग्नि में डालिए, आप ऐश्वर्यवान हो जाएँगे। पर्यावरण की शुद्धता एक विस्तृत विषय है, इस विषय को अभी नहीं लूँगा।

दूसरा, शारीरिक शुद्धता तो आपको मालूम ही है कि कैसे शरीर को शुद्ध रखते हैं और खान-पान की शुद्धता भी ज़रूरी है। खान-पान की शुद्धता में आपका भोजन विशुद्ध शाकाहारी और सुगन्धित होना आवश्यक है। माँसाहारी भोजन मत करिये। मरे हुए पशु में सड़न पैदा होती है जो भयंकर बिमारियाँ पैदा करती है। जैसे कैंसर, दिल का दौरा आदि बिमारियाँ माँसाहारियों में 5 – 10 गुणा ज्यादा होती हैं क्योंकि माँस में पाये जाने वाले अनगिनत टौक्सिन जिनकी गणना न है, न हो सकती है क्या वो ज़हरीले पदार्थ बिमारियों को उत्पन्न करने के लिये ज़िम्मेदार नहीं हैं वे स्वास्थ्य के लिये महा हानिकारक हैं। कोई भी दुर्गन्धित भोजन आपके दिल-दिमाग को दुर्गन्धित कर देगा।

शराब चौथी श्रेणी के पाप में आती है, इसको कहा है घोर-पाप। शराब पीना मात्र दुर्व्यसन ही नहीं है, अपितु घोर पाप है। **जिस घर में शराब का सेवन होता है वहाँ दो चीज़ें अवश्य होती हैं, एक तो उस घर में कभी शान्ति नहीं होगी और दूसरा वहाँ पैसे की हमेशा बे-बरकती होगी। यह दैवीय अधिनियम है** और यदि व्यक्ति कहे कि मैं शराब पीता हूँ और मेरे घर में बहुत शान्ति है, मुझे पैसे की कोई कमी नहीं है, तो समझ लीजिये वो झूठा भी है। बहुत लोग आपको ऐसे मिलेंगे जिन्होंने जीवन भर शराब छुई नहीं है, कोई बड़ी बात नहीं है, लेकिन यह बहुत बड़ी बात है कि जो शराब का आदी होकर शराब पीना छोड़ दे। इसका मतलब उसके ऊपर कोई विशेष इष्ट-कृपा और संत-कृपा हुई है। वे लोग पूजनीय हैं जिन्होंने इसे छोड़ दिया है क्योंकि वे संत की, ईश्वर की कृपा के पात्र हैं। अगर कोई कहे कि मैंने शराब छोड़ दी है तो उसके चरण छू लीजिये क्योंकि उसके ऊपर कृपा हो चुकी है, यह परम सत्य है। इसलिये परम गृहस्थ में इसको छूना और घर में रखना महा पाप है। अगर आप घर में ऐश्वर्य चाहते हैं तो इसे घर में मत

रखिये। उसके बाद आती है **मानसिक शुद्धता**, जिसके लिये परम आवश्यक है नाम-जाप। जब हम ईश्वर का नाम जपते हैं तो हम नाम-रूप की सृष्टि की उलझन से छूट जाते हैं:–

'नानक दुखिया सब संसार, सो सुखिया जो नाम आधार।'

कलिकाल में बहुत ज्यादा तपस्या नहीं हो सकती। लोगों में इतनी शक्ति नहीं है इसलिये आप श्रद्धा से अपने इष्ट का नाम-जाप करिये। नाम-जाप से आपके मन को शान्ति मिलेगी, संतोष मिलेगा। यह बहुत आवश्यक है कि हम गृहस्थ में विभिन्न परिस्थितियों में सामान्य रहकर आनन्दित रह सकें क्योंकि जीवन एक उबड़-खाबड़ सड़क है। आप अपनी गाड़ी को एक ही चाल पर खासतौर पर भारत में नहीं चला सकते, न जाने कब कोई मोड़ आ जाये, कोई कितना बड़ा खड्डा आ जाये। जीवन में विपरीत परिस्थितियों में पति-पत्नी को अपनी मानसिकता को कैसे संतुलित रखना है, उसके लिये एक पौराणिक कथा सुनाता हूँ। गरुड़ जी को अपने ऊपर बड़ा अभिमान हो गया कि मैं भगवान विष्णु की सवारी हूँ। विष्णु भगवान ने उनको कागभुसुंडी जी के पास भेजा। काग जी परम भक्त थे और बड़े भावुक थे। वे गंगा जी के किनारे राम-कथा किया करते थे और उस दिन काग जी प्रलय का वर्णन कर रहे थे। हे गरुड जी ! हमने जल-प्रलय देखी, हमने पृथ्वी-प्रलय देखी, वायु-प्रलय देखी, अग्नि-प्रलय देखी। अब गरुड़ जी बहुत बुद्धिजीवी थे। बुद्धिजीवी लोगों का दिमाग बहुत तेज़ चलता है अतः उन्हें लोगों की बात पर सहज विश्वास नहीं होता। जब काग जी ने कथा समाप्त की तो उन्होंने पूछा–महाराज ! मुझे एक शंका है, आपने अग्नि-प्रलय, जल-प्रलय, वायु-प्रलय देखी और प्रलय में सारी सृष्टि समाप्त हो गई, तो आप कैसे बचे ? कागभुसुंडी जी ने कहा–कि गरुड़ जी ! मैं अपनी योगशक्ति से प्रलय का स्वरूप ले लेता था। जब अग्नि-प्रलय होती थी तो मैं अग्नि बन जाता था, जब जल-प्रलय होती थी तो मैं अपनी योग शक्ति से जल बन जाता था। जल, जल को कैसे डुबोयेगा और जब वायु-प्रलय होती थी तो मैं वायु बन जाता था इसलिए प्रलय मेरा कोई

नुकसान नहीं कर सकी, मैं जीवित रहा। यह बहुत ही सारगर्भित कहानी है।

जीवन में जिस प्रकार का कष्ट आये आप उसका स्वरूप धारण कर लीजिये वो कष्ट नष्ट हो जायेंगे। यह आध्यात्मिक सत्य है। घबराइये मत, क्योंकि जीवन में जहाँ सुख आयेंगे वहाँ दुख-कष्ट भी आयेंगे, लेकिन आप अपना मानसिक-स्वरूप वैसा ही बना लीजिये तो वह कष्ट आपके तप के खाते में चला जाएगा। **'सूक्ष्म रूप धरि सियहिं दिखावा'** हनुमान जी जब सीता-माता के सामने जाते हैं तो छोटे बच्चे का रूप धारण करके। **''विकट रूप धरि लंका जरावा, भीम रूप धरि असुर संहारे। मसक समान रूप कपि धरि।''** इसी प्रकार लंका जलाते समय हनुमान जी ने विशाल रूप धारण किया, चोरी से लंका में प्रवेश करते समय मच्छर का रूप धर लिया। अतः आप भी जहाँ जैसी परिस्थिति आये, वहाँ वैसा रूप बना लीजिये। शर्म मत करिये कि लो मैं तो इतना बड़ा आदमी हूँ। बना लीजिये वो रूप, आप बड़े सुखी रहेंगे। आपका वह कष्ट आनन्दमय हो जाएगा और तप के खाते में चला जाएगा। न केवल वह समय आपके लिए आनंदमय होगा बल्कि दूसरों को भी आप प्रेरणा देंगे। अरे ! जिस जीवन में कष्ट नहीं आया वो जीवन क्या है? ज्वार-भाटा समुद्र में आता है, कभी ताल-तलैया में नहीं आता। बड़े लोगों के जीवन में बड़े कष्ट आते हैं, गर्व होना चाहिए। लेकिन अपना स्वरूप वैसा बना लीजिये ताकि आप किसी को कहानी सुनायें तो अपनी सुनायें कि ऐसा हुआ था। यह तभी संभव है जब आप अपने मानसिक-स्वरूप को वैसा बना लें। पर कैसे बनायें? बड़ी अच्छी बात लगी कि वैसा रूप बना लें, लेकिन बनायें कैसे?

बिल्ली के गले में घंटी कौन बाँधे, आध्यात्मिक तकनीक क्या है? अगर आपके पास कोई मिट्टी की मूर्ति बनी है, मान लीजिये, भगवान शंकर की मूर्ति बनी है। बहुत आसान करके समझा रहा हूँ। आपको कोई कहे कि इसका हनुमान बना दीजिये तो आपको उस मूर्ति को पहले ढालना होगा फिर से उसका गोला बनाना पड़ेगा, फिर आप उस मिट्टी से हनुमान जी बना पाएँगे। यदि आप अपने जीवन को आनन्दमय बनाना चाहते हैं तो जैसी

परिस्थिति आये उसी के अनुसार अपना मानसिक स्वरूप बना लें। आपको उसका अभ्यास करना पड़ेगा और वो अभ्यास क्या है? आप सुबह-शाम अपने आपको शून्य के स्तर पर लाने का अभ्यास करिये क्योंकि हमारा जीवन शून्य से आरम्भ होता है और शून्य पर ही समाप्त हो जाता है। जो सवाल शून्य से शुरू होता है और शून्य पर ही समाप्त होता है उसके बीच में जितनी भी गणना होगी वो सब शून्य ही होगी। आप जो भी दौड़-भाग कर रहे हैं वह शून्य है। अगर आप शून्य को अहमियत देना चाहते है तो इसके बाईं तरफ **एक** लगा दीजिये। वह एक है **ईश्वर का नाम, ईश्वरत्व**। आप पुण्य-पाप से मुक्त हो जायेंगे, नहीं तो आप अपने बनाये हुए पुण्यों-पापों में फँस जायेंगे। तो शून्य पर आने के लिए आपको थोड़ा सा कष्ट करना पड़ेगा।

आपको मालूम है कि जो पैदा हुआ है वो मरेगा ज़रूर, तो अपनी मृत्यु को थोड़ा पूर्व निर्धारित करना है, बस इतना काम करना है। मरना तो है ही और कब मरना है किसी को मालूम नहीं है। 10 मिनट के लिए, आपने जो कफन माना है, चाहे वो बढ़िया साड़ी हो, कोई बात नहीं, अपने ऊपर ले लीजिये और यह समझना है कि मैं मर गया हूँ। 10 मिनट ध्यान करिये इस बात पर। यह कोई कल्पना नहीं है, मात्र जो एक अकाट्य घटना घटने वाली है उसका पूर्व निर्धारण करना है, डरने की कोई बात नहीं। 40 दिन में आपके जीवन का परिदृश्य बदल जायेगा। लक्ष्मी आपसे समय लेगी कि मैं आपसे मिलना चाहती हूँ। हम परमसत्य कह रहे हैं। यह आध्यामिक तकनीक है। आपका ऐश्वर्य, आपकी भौतिक सुख- सुविधायें आपके चरणों में आ जाएँगी। **यदि जीवन का भरपूर आनन्द लेना है तो या शिव बन जाइये या शव बन जायें।** शिव परम समर्थवान है, पाप-पुण्य से रहित है और शव असमर्थ है, इसलिए वो आनन्द लेता है। कभी आप निगम-बोध घाट पर जाकर देखें, शव आराम से लेटा होता है। सभी लोग तैयारियाँ कर रहे होते हैं, कुछ लकड़ियाँ इकट्ठी कर रहे होते हैं, कुछ ब्राह्मण को बुला रहे होते हैं। शव पूजनीय है, लोग प्रणाम करते हैं। शत्रु के शव को भी लोग

प्रणाम करते हैं। यदि आप जीवन का आनन्द लेना चाहते हैं उस शव की स्थिति को धारण कर लीजिए, जहाँ पर आप अपने नाम-रूप से परे हों। हमारी सारी सृष्टि हमारे माता-पिता, भाई-बहन, हमारे शुभ-अशुभ, मित्र-शत्रु, डिग्रियाँ, हमारे पड़ोसी, मालिक-नौकर, धर्म-कर्म, देश- विदेश जो भी किसी भी व्यक्ति का है वह नाम-रूप पर आधारित है। यदि आप अपने नाम-रूप से अपने आपको पृथक कर लें तो आपकी समस्त सृष्टि समाप्त हो जाएगी, जिस प्रकार रात को प्रगाढ़ निद्रा में आप अपने नाम-रूप से परे होते हैं। वह आपकी परम विश्राम की स्थिति होती है।

पाँच ऐसी स्थितियाँ है जिनमें कोई भी मानव अपने नाम-रूप से परे होता है–**प्रगाढ़ निद्रा, मूर्छा, विस्मृति, मृत्यु व तुरिया-समाधि।** तुरिया-समाधि में आप जाग्रत रहते हैं मगर अपने नाम-रूप से परे होते हैं और कई बार आपको अपनी देह अपने सामने अलग से नज़र आती है। कभी-कभी इष्ट-कृपा से जब आपको इस अवस्था का अनुभव होता है तो वो परमानन्द की अवस्था होती है क्योंकि आप होते हैं लेकिन अपने नाम और रूप से परे होते हैं। जो कभी नाम और रूप से परे नहीं होते वे मृत्यु के बाद भी प्रेतयोनि में जाते हैं। डाक-डाकिनी, शाक-शाकिनी, भूत-प्रेत, चुड़ैल इत्यादि बनते हैं। जैसेकि कोई व्यक्ति अगर दिन भर के कार्यो में उलझा हुआ सोता है तो उसकी निद्रा कभी प्रगाढ़ निद्रा नहीं होगी, स्वप्नों वाली निद्रा होगी। रात की स्वप्न-सृष्टि एक प्रकार से सोये हुए व्यक्ति की प्रेत-योनि है। समझाने के लिये उदाहरण दे रहा हूँ। इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति अति आसक्तियों को लेकर मरता है तो कभी उसकी गति नहीं होती। विशेषकर जो अस्पताल में मरता है। इसलिये कृपा करके जब पता चले किसी वृद्ध के प्राण निकलने वाले हैं तो घर में ले आइये उनको। जिस व्यक्ति के सारे शरीर में सुइयाँ व नलियाँ लगी होंगी वो कभी चैन की मृत्यु नहीं मरेगा। भारतीय संस्कृति के अनुसार उसको घर ले आइये, ज़मीन पर आसन दीजिये, गीता-पाठ करिये, मुहँ में गंगाजल, चरणामृत डालिये, उसकी गति हो जाएगी। पाश्चात्यानुगामी न बनें। यह आयात्मिक सत्य है। यदि 10 – 15 मिनट हर

रोज़ आपका मानस शून्य के स्तर पर आ जाता है, तो आपको अभ्यास हो जाएगा। इस मानस को आप किसी समय आवश्यकता पड़ने पर कोई भी दिशा दे सकते हैं। भूल जाइये कि जीवन में सदा सुख ही सुख होते हैं, दुख भी होते हैं, बड़े कष्ट भी आते हैं। क्योंकि ज्वार-भाटा सागर में ही आता है। तो आप जीवन में कैसे हैं, स्वयं आत्मनिरीक्षण करिए, यदि आपने जीवन के बड़े-बड़े कष्टों को आनन्दपूर्वक झेला है तो समझिये आपके ऊपर ईश्वर की कृपा है। यह गृहस्थ का दूसरा सत्य मैंने आपके सामने रखा है। अपने मानस को शून्य पर लाने के लिये रोज़ अपनी मृत्यु का दिग्दर्शन अवश्य करना है।

साथ ही **जब तक आपके दिल-दिमाग में किसी चीज़ का महात्म्य रहेगा आप उसका भोग नहीं कर सकते,** यह दिव्य अधिनियम है। अगर आप अपने जीवन का, अपने पद का, अपने धन का, अपनी सम्पदा का और अपनी सब उपाधियों का भोग करना चाहते हैं तो आप उनका महत्त्व समाप्त कर दीजिये और उसके लिये आपको कफ़न वाला सूत्र लागू करना होगा। कई बार घरवाले चिन्तित हो जाते हैं कि यह क्या कर रहा है। कोई पूछे कि क्या कर रहे हैं तो कहो, आराम कर रहा हूँ। लेकिन अपने ध्यान में सोचिये कि मैं मर गया हूँ। आपका मानस रोज़ शून्य स्तर पर आ जाएगा, आपको भूख अच्छी लगेगी, आपको नींद अच्छी आएगी, आपको जीवन का आनन्द आना शुरू हो जाएगा। आप लीला करेंगे, आनन्दमय जीवन को कहा है—**लीला**। महापुरुष पृथ्वी पर लीला करने के लिये आते हैं। आप भी उस श्रेणी में आ जाएँगे। आपका हर कष्ट आनन्दमय हो जायेगा। जैसी परिस्थिति आई वैसा रूप धारण कर लिया। रूप-धारण का मतलब यह नहीं है कि आप चेहरे पर मेकअप चढ़ा लें, ऐसा नहीं है अपितु आपका मानसिक रूप वैसा हो जाये, आपका दिल-दिमाग वैसा बन जाये।

एक विशेष समस्या हम गृहस्थों में है कि छोटी-मोटी तकलीफ के लिए हम तंत्र-मंत्र वालों के पास भागते हैं। खूबसूरती के लिये तो आपने बहुत कम अंगूठियाँ पहनी होंगी लेकिन ज्योतिषियों के परामर्श पर किसी ने

पुखराज, किसी ने नीलम, कुछ न कुछ पहना हुआ है। काहे के लिये? ग्रहों की शान्ति के लिये। इसके लिए हनुमान जी का एक उदाहरण देता हूँ। जब प्रभु श्री हनुमानजी लंका को जलाकर और अपना सब काम निबटा कर समुद्र के किनारे आये, पूँछ की अग्नि को बुझाया तो उन्हें किसी के करहाने की आवाज़ आई। हनुमान जी ने घूम कर देखा कि एक विशाल पर्वत-शिला पर एक बहुत अद्भुत आकृति बँधी हुई है। आधा नीला, आधा काला, एक हाथ छोटा, एक बड़ा, कहीं से मोटा तो कहीं से पतला, बड़ी बेडौल और अजीब सी आकृति बँधी हुई थी। उसकी पीठ लंका की तरफ थी और वह कराह रहा था। हनुमान जी ने पूछा–प्रभु ! आप कौन हैं? उन्होंने कहा–प्रभु ! मैं शनि देवता हूँ। रावण मुझ से नाराज़ हो गया था और उसने बहुत वर्षों पहले मुझे यहाँ शिला से बाँध दिया था, लंका की तरफ पीठ करके। क्योंकि जिस तरफ मेरा मुँह होता है मैं उसे काला कर देता हूँ। आप कृपा करके मुझे मुक्त कर दीजिए। अब हनुमान जी को एक कौतूहल हुआ कि मैं इनका मुँह लंका की तरफ करता हूँ क्योंकि अभी-अभी लंका जलाई गई है। अब वह काली भी हो जाएगी, बड़ा मज़ा आ जाएगा। उन्होंने कहा कि कोई बात नहीं, हम आपको खोल देते हैं लेकिन इससे पहले आपको लंका काली करनी पड़ेगी। शनि देवता बोले–बिना खोले कैसे करेंगे। हनुमान जी ने 'जय श्रीराम' कहते हुए शिला को लंका की तरफ घुमा दिया। शनि बड़ा प्रसन्न हुआ कि यह तो सोने पर सुहागा हो गया कि लंका जलाई हनुमान ने और मैंने काली कर दी। हनुमान जी ने शनि देवता को शीघ्रता से बन्धनमुक्त किया, समुद्र के किनारे ले गये और जल छिड़का, अपना हाथ फेरा। शनि बिल्कुल स्वस्थ हो गया। बड़ा प्रसन्न हुआ व चरणों में पड़ गया कि–''महाराज बड़ी कृपा की आपने, मैं आपके सम्मुख बहुत छोटा हूँ। मैं आपको क्या दे सकता हूँ ! लेकिन मैं आपको यह वर देता हूँ कि जहाँ आपकी कृपा होगी वहाँ मेरी भी कृपा होगी।

इस कहानी का अर्थ है कि **''एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाइ।''** कि आपको ज्योतिषियों,श्तंत्र-मंत्र वालों के पास न जाना पड़े। मैं

अपना चिकित्सा अनुभव बता रहा हूँ कि जो मनोरोगी हमारे पास आते हैं, उनमें अधिकतर वे होते हैं जो तन्त्र-मन्त्र के चक्कर में पड़कर भ्रमित हो जाते हैं। किसी ने शुक्र की दशा बताई, किसी ने मंगल की, तो किसी ने शनि की। अतः कष्ट तो आयेंगे, समय का परिवर्तन होगा, आप अपने इष्ट के दरबार में बैठिये। इष्ट क्या है? आप जिस नाम-रूप में प्रभु को मानते हैं वो ही आपका इष्ट है, वो ही आपका सद्गुरु है। आप उसके दरबार मे बैठिये और बोलकर अपना कष्ट प्रकट करिये। आपका कष्ट उसी समय आधा हो जायेगा। अपनहर रूप में इष्ट का ही स्वरूप देखिये कि प्रभु आप ही मंगल हो, आप ही शुक्र, शनि, राहु, केतु आप ही हो, सूर्य-चन्द्रमा आप ही हैं। यह सभी पूजनीय शक्तियाँ हैं और उनकी पूजा आप अपने इष्ट-रूप में करें तो घर बैठे आपका कष्ट कम हो जाएगा। कष्ट आयेंगे, इसके लिये ज्योतिषियों के पास मत जाइये क्योंकि भविष्य बताना और भविष्य पूछना यह दोनों शास्त्रीय निषेध हैं। यदि आपको ईश्वर में विश्वास है तो आपका कष्ट अवश्य समाप्त हो जाएगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

एक बहुत महत्त्वपूर्ण गुण है हमारे विशुद्ध कुलीन भारतीय गृहस्थों में और वह है—**अपने बुजुर्गों का सम्मान**। अपने बुजुर्गों की कदर, उनकी इज्ज़त व उनकी सेवा के पीछे आध्यात्मिक कारण है कि हमारी देह हमारे माता-पिता से बनी है। यदि हमने माता-पिता को उपेक्षित कर दिया, उनका सम्मान नहीं किया तो इससे क्या होगा? इससे चार-पाँच बहुत भंयकर बातें होंगी। पहला, जिस व्यक्ति के दिल-दिमाग में उसके माता-पिता की कद्र नहीं है, वो स्वयं कभी अपनी संतान का सुख नहीं भोग सकता। दूसरा, वह कभी अपनी देह का सुख नहीं भोग सकता। तीसरा, उसका कोई स्वजन कभी नहीं होगा, जितने भी आस-पास होंगे वो स्वार्थजन होंगे। देव-दरबार में बैठकर किसी के लिये प्रार्थना करना बड़ा मुश्किल काम है। एक माता-पिता ही ऐसे स्वजन हैं जो देव-दरबार में हमारे लिये प्रार्थना करते हैं। यदि आपने उनको उपेक्षित किया, उनकी सेवा नहीं की तो आपका कोई स्वजन नहीं होगा। होंगे तो केवल स्वार्थजन। स्वार्थजन वे हैं जो हमारे साथ किसी न

किसी मतलब से जुड़े हुए हैं और स्वजन वे हैं जो हमारे लोग हैं, जो हमारे लिये प्रार्थना करते हैं, हमारे लिये दुआ करते हैं और जिनके लिये हम दुआ करते हैं। यह मात्र आध्यात्मिक जगत में ही सम्भव है। यदि आप किसी व्यक्ति को अपना बनाना चाहते हैं तो आपको उन्हें कार्ड, मिठाइयाँ या तोहफे भेजने की आवश्यकता नहीं है। आप पाँच मिनट उनके लिये जोत जलाकर प्रार्थना करिये वो हमेशा के लिये आपके हो जायेंगे। उसको कहा है—स्वजन। अपने आपको भूलाकर यदि तीन व्यक्ति देव-दरबार में एक साथ पूजा के लिये बैठें तो वहाँ कोई दैवीय चमत्कार अवश्य होता है। जिसके तीन से अधिक स्वरूपजन हों तो समझें ईश्वर उसके साथ ही रहते हैं। यह तभी संभव है जब आप आध्यात्मिक जगत में प्रवेश कर जायें। उसका अपना एक नशा होता है। यह नशा बयान नहीं किया जा सकता। वो आपके अपने स्वरूप होते हैं। आप जैसा सोचते हैं वो भी वैसा ही सोचते हैं चाहे कितनी दूर बैठे हों।

जिस व्यक्ति ने अपने माता-पिता का अनादर किया है उसको कभी यश नहीं मिलेगा। भले ही ड़िग्रियाँ बड़ी-बड़ी होंगी, बहुत बड़ा सी. ए. होगा या डॉक्टर होगा, पर वह डॉक्टर जिस मरीज़ को हाथ लगायेगा उस मरीज़ की बीमारी बढ़ जाएगी। आपने सुना होगा अमुक डॉक्टर है जिसके पास भीड़ लगी रहती है वह जिसको हाथ लगाता है ठीक हो जाता है। कभी-कभी कोई पान वाला प्रसिद्ध होता है तो लोग दूर-दूर से उसका पान खाने उसके पास जाते हैं। कोई छोले भठूरे वाला मशहूर होता है, कोई जलेबी वाला मशहूर होता है तो समझ लीजिये उस पर उसके बुजुर्गों का आशीर्वाद अवश्य है। नहीं तो वो आदमी मशहूर नहीं हो सकता, यह दिव्य अधिनियम है। इसलिये अपने बुजुर्गों का सम्मान अवश्य करिये क्योंकि यदि हमने अपनी देह बनाने वाले निमित्त का अनादर कर दिया तो हमारी देह भी हमको उपेक्षित करेगी। हमारा समय किसी और के लिये होगा, हमारा शारीरिक बल किसी और के लिये होगा, हमारी प्रतिभाएँ किसी और के लिये होंगी। हम अपनी ज़िन्दगी का स्वयं आनन्द नहीं ले सकते। बहुत कम लोग

ऐसे हैं जो अपनी देह का भोग करते हैं। बड़ों का अनादर करने वालों को अपनी देह और देह की प्रतिभाओं का कभी भोग नहीं मिलेगा, अपनी संतान का भोग नहीं मिलेगा, अपनी डिग्रियों का, प्राप्तियों का, पैसे का भोग नहीं मिलेगा। जब अपनी देह से डर लगता है, तो व्यक्ति अपने आपसे दूर भागना चाहता है तो वह क्या करता है? वह घर में आकर नशा करता है और नशा वो ही व्यक्ति करता है जिसे अपनी देह से डर लगता है, अपने आपसे डर लगता है। नशा दो तरह का होता है—एक खुदाई नशा है और एक शराब का नशा है। **सन्त, योगी खुदाई नशा करता है और नशा करके जब वो अपनी देह में आता है तो उसकी देह उसका स्वागत करती है। उसकी देह पूजनीय हो जाती है।** जब व्यक्ति देह को उपेक्षित करके शराब पीता है तो शराब का नशा जब उतरता है तब वह आदमी ग्लानि से भर जाता है। सोचता है—आज से नहीं पिऊँगा लेकिन शाम को फिर पी लेता है। उसकी अपनी देह उसका निरादर करने लगती है। **''नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात''** वह भी नशा है, तो इसलिये यदि आप भोगृका परमानन्द लेना चाहते हैं तो अपने बुजुर्गों का सम्मान अवश्य करिये, उनको वृद्धाश्रमों में मत भेजिये, अपने हाथों से उनकी सेवा करिये।

आप सभी लोग सत्संग में बैठे हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं कि सबके ऊपर खूब माता-पिता की कृपा है। जिस व्यक्ति के ऊपर माता-पिता की कृपा होगी मात्र उसको ही सन्त और सत्संग मिलेगा। मैं अक्सर अपने प्रवचनों में बोलता हूँ, कि एक है प्राप्ति, धन-सम्पत्ति की, पद की। पर किसी वस्तु को प्राप्त कर लेना ही काफी नहीं है जब तक प्राप्ति का भोग न हो। लोगों के पास वस्तुएँ बहुत हैं, धन बहुत है, सम्पदा बहुत है, शिक्षा भी बहुत है, पद बहुत बड़ा है लेकिन रात को सोने के लिए वातानुकूलित कमरों में भी उनको नींद की गोली खानी पड़ती है। खाने-पीने के लिये बहुत कुछ है लेकिन भूख नहीं लगती, भूख के लिये गोली खानी पड़ती है। क्यों? प्राप्ति है, लेकिन प्राप्तियों का भोग नहीं है और भोग क्यों नहीं है? क्योंकि प्राप्ति के भोग के लिये एक कड़ी होती है और वह है—**अधिकार**। वह हक क्या है?

जब तक आपको अपनी प्राप्ति पर अधिकार नहीं मिलेगा तब तक आप प्राप्ति का भोग नहीं ले सकते और यह अधिकार कब मिलेगा इसके लिये भी एक आध्यात्मिक नियम है कि आपको अपनी समस्त प्राप्तियों को उन्हें देने वाले, ईश्वर को समर्पित करना पड़ेगा। यदि आप अपनी प्राप्त चीज़ों को ईश्वर-समर्पित नहीं करेंगे तो आपको उनके भोग का अधिकार नहीं मिलेगा। बिना समर्पण के आपको भोगने का अधिकार नहीं मिल सकता यह दैवीय नियम है। वस्तु आपकी है, लेकिन भोग का हक नहीं है, धन कोई और कमा रहा है खा कोई और रहा है, इसलिये आप अपनी देह को 10 – 20 मिनट रोज़ ईश्वर के दरबार में बैठकर समर्पित करिये, कि प्रभु ! यह साँस आपके हैं, यह प्राण आपके हैं, यह समय का एक-एक पल आपका है, आप जिस समय चाहे इन्हें छीन सकते हैं। यह गुजरात के भूकम्प में आपने देखा, हमने उत्तरकाशी में 9 साल पहले देखा था। वह सर्वशक्तिमान है। उसके आगे किसी की मर्ज़ी नहीं चलती। तो गृहस्थ में परम आवश्यक है कि पूरा परिवार रोज़ देव-दरबार में बैठ कर धूप-बत्ती करे और आत्मसमर्पण करे। इन सूत्रों का यदि आप अनुसरण करेंगे तो निस्संदेह आनन्दमय गृहस्थ-जीवन व्यतीत करेंगे।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(4 मार्च, 2001)

तीन ऋण

आज इष्ट-कृपा से आपके सम्मुख—**'तीन ऋण'** विषय रखने जा रहा हूँ। हम भारतीय, विश्व से अलग क्यों हैं, हम विश्व के सिरमौर, कैसे हैं, हम विश्व के आध्यात्मिक नायक क्यों हैं? आज दिल्ली के साधकों को यह मालूम होना आवश्यक है। वह सत्य जिसने हमें आध्यात्मिक जगत में विश्व का सर्वोपरि घोषित किया, वह था—**'तीन ऋण', तीन उधार। जो हमारे पूर्वजों** से हमें मिले और जो हम आगे देते हैं। नहीं भी देते तो भी उसके संस्कार हमारे रुधिर में हैं।

उस कोटि-कोटि ब्रह्माण्डनायक ईश्वर ने यदि आजतक कोई सर्वोत्कृष्ट, महाविलक्षण और चमत्कारिक रचना की, तो वह है—**मानव-देह।** पाँच निराकार महाभूतों से निर्मित, इस साकार **मानव-देह** का पालन व संहार भी ईश्वर ही करता है। पृथ्वी में जितने भी तत्त्व हैं कैल्शियम, मैंगनिशियम, ज़िंक, आयरन, गोल्ड और सिल्वर इत्यादि और वायुमंडल में जितनी भी गैसें हैं और आकाशमंडल में जितने भी नक्षत्र हैं सूर्य, चन्द्र इत्यादि, ये सब योगियों ने इसी देह के भीतर देखे हैं। यदि हम मानव-देह का आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक रूप से चिंतन करें, मनन करें, तो हम पायेंगे कि मानों स्वयं ईश्वर ही इस देह में उतरा हो। महाविचारणीय प्रश्न है कि जो मानव शारीरिक, बौद्धिक एवं मानसिक शक्तियों से युक्त है, वही सबसे ज्यादा भयभीत, त्रसित, दुखी, रोगी क्यों है? उसका कारण क्या है तथा उस कारण को हम दूर कैसे करें? क्या ईश्वर से कहीं गलती हुई है या मानव से कहीं गलती हुई है? आज भरी सभा में इस बात का निर्णय होना चाहिए।

ईश्वर ने मानव को विशेष कारणों से परम विलक्षण एवं चमत्कारिक शक्ति दी थी—**बुद्धि,** जिसका कार्य मात्र ईश्वर के कृत्यों का गुणगान व उसके संकेतों का अनुसरण करना था। लेकिन दुर्भाग्यवश, बुद्धि के अहंवश मानव, उस अपने परम कारण ईश्वर से हटता चला गया, लेकिन ईश्वर इससे नहीं हटा। जो इसके और इसके सूक्ष्म-मंडल का निर्माता है, पालनकर्त्ता है और संहारकर्त्ता है। तथाकथित बुद्धि के विकास से यह अपने **'कारण'** अर्थात् ईश्वर से हटता चला गया, लेकिन **'कारण'** इससे नहीं हटा। अगर ईश्वर इससे हट जाता तो यह एक श्वास भी न ले पाता। **मानव ईश्वर से दूर हटता सा और संसार से बँधता सा चला गया** और वहीं से शुरू हुई श्रंखला दुखों की, रोगों की, भय की, जन्म की, मृत्यु की और न जाने काहे-काहे की? मैं एक उदाहरण, एक दृष्टांत कई बार दे चुका हूँ कि एक पागल ने एक पेड़ को **स्वयं** पकड़ लिया और पकड़कर चिल्लाने लगा कि मुझे छुड़ाओ, मुझे पेड़ ने पकड़ लिया है। पागल था वह, लोग गुज़र रहे हैं वहाँ से और हँस रहे हैं कि पागल है। एक महात्मा वहाँ से निकले कि भक्त जी चिल्ला क्यों रहे हो? कि,"मुझे पेड़ ने पकड़ लिया है", बोले अभी हम छुड़ा देते हैं। दृष्टांत को बहुत ध्यान से सुनिये, मैं पहले भी सुना चुका हूँ, लेकिन आज इसका आयाम और है। महात्मा के पास बजाने वाला लोहे का चिमटा था। उस महात्मा ने ज़ोर से चिमटा उसकी पीठ पर मारा और उस भक्त के हाथ छूट गये। क्योंकि पीठ में दर्द हुआ और हाथ छूट गये। बड़ा खुश हुआ वह, महात्मा के चरणों में पड़ गया, कि प्रभु! बड़ी कृपा की आपने, मैं पेड़ से बंधा हुआ था, आपने मुझे छुड़ा दिया। अब इस दृष्टांत पर आप ग़ौर कीजिए। यदि वह भक्त वास्तव में बँधा हुआ होता पेड़ से और महात्मा चिमटा मार देता उसको तो क्या वह महात्मा को धन्यवाद देता? वह उस कष्ट में और पीड़ित हो जाता, **लेकिन वह बँधा हुआ नहीं था, वह बँधा सा था।** महात्मा के एक चिमटे ने उसको वहाँ से छुड़ा दिया तो उसने महात्मा जी का आभार माना।

अब इसी योजना का प्रयोग किया हमारे मनीषियों ने। कृपया एकाग्र

कीजिए। **हम भी संसार से बंध से गये हैं।** मेरे बिना मेरा परिवार कैसे चल सकता है? मेरे बिना मेरी फैक्टरी कैसे चलेगी? कोई पूछे कि, **अगले कुछ ही** मिनटों में आपका साँस बन्द हो जाये और आपको शमशान घाट पहुँचा दिया जाये तो क्या आपका परिवार चलना बंद हो जायेगा? **नहीं !** और अच्छा चलेगा। मैं पहले भी तीन तथ्य बता चुका हूँ **पहला,** हम पृथ्वी पर लाये गये हैं, हम स्वयं नहीं आये हैं। **दूसरे**, हमारा कोई कर्त्तव्य नहीं है। हमने अपने ऊपर कर्त्तव्य थोपे हुए हैं और जो हमारा कर्त्तव्य है, हम जानते नहीं हैं। **तीसरा** तथ्य मैंने बताया था कि हम प्राप्तियों के पीछे भाग रहे हैं, आजीवन हम उन प्राप्तियों के पीछे भागते हैं, जिनका भोग मिलने की हमको कोई गारण्टी नहीं है और वैसे ही हम छोड़ कर मर जाते हैं। लेकिन हम सभी इस मानसिक रोग से जन्म-जन्मांतरों से पीड़ित हैं, तो हमारे मनीषियों ने तीन-ऋणों का चिमटा मारा, तीन ऋण लागू कर दिये। सभी मानव, जीवन के लिए कार्य करते हैं। लेकिन हम भारतीय कार्य करते हैं यह जानने के लिए कि **जीवन काहे के लिए है ?** अतः हम भारतीय विशेष हैं क्योंकि हम इन ऋणों को देते हैं और देने की इच्छा रखते हैं, इसलिए हम आज भी जगद्‌गुरु हैं। पहला ऋण था **पितृ-ऋण** और दूसरा था **देव-ऋण** और तीसरा था **ऋषि-ऋण**। आप स्वयं इसको आत्मसात करिए और अपने सारे ब्रह्माण्ड में इस सत्य को फैला दीजिये। आज यह परम सत्य जिसको हम भूल गये हैं, भूल से गये हैं कम से कम भारत में गूँज जाना चाहिए।

तीन ऋण देने हैं हमको, **पितृ-ऋण, देव-ऋण और ऋषि-ऋण,** जो हम कभी नहीं दे सकते। यही इन तीन ऋणों की विशेषता है और इनसे छूटते कब हैं, जब हम मुक्त हो जाते हैं? मोक्ष, हम भारतीयों का जन्म-सिद्ध अधिकार है और उन सबका भी जो इन तीन ऋणों को देय मानते हैं। **पितृ-ऋण**–जिन माता-पिता ने आपको उत्पन्न किया है, आप अपने से अधिक उत्कृष्ट, अधिक विलक्षण, अधिक साधक एवं सशक्त संतान उत्पन्न करिये। इसकी तकनीक हमारे मनीषियों ने बताई है और आप भी ध्यान से सुनिये। उत्तम संतान सदा कुलीन परिवारों में ही होती है। यह कुलीन

परिवार क्या है? उसकी परिभाषा क्या है? कुलीन परिवार वह है जहाँ बुजुर्गों की सेवा होती हो और जहाँ अतिथि-सत्कार होता हो। कुलीन परिवार वे हैं जहाँ यज्ञ-हवन हर रोज़ होते हों, जहाँ अन्न का हर रोज़ दान होता हो, जहाँ ध्यान और उपासना होती हो, जहाँ स्वाध्याय और साधना हर रोज़ होती हो। जहाँ सब सूर्योदय होने से पहले उठते हों, बिस्तर छोड़ते हों, वे हैं **कुलीन परिवार।** बहुत धनाढ्य कुलीन हो भी सकते हैं और नहीं भी हो सकते। बहुत गरीब आदमी भी कुलीन हो सकता है।

उत्तम संतान की विधि बता रहा हूँ जो हमारे मनीषियों ने बताई थी और जो कृपाकर उन हिमालय की कन्दराओं ने मुझे दी। आज के बाद अगर आपने अपने बच्चों का विवाह करना है तो वह कुलीन विवाह ही हो। कुलीन विवाह क्या है? वह विवाह जिसमें वर और वधू, प्रसन्न हों, वे तो अक्सर प्रसन्न ही होते हैं। **दूसरे,** जिसमें लड़की के माता-पिता और लड़के के माता-पिता भी प्रसन्न हों, यहाँ मुश्किल आ जाती है थोड़ी। **तीसरा,** तथ्य यह है कि जितने भी आध्यात्मिक परिवार हैं उनका कोई कुलगुरु ज़रूर होता है, उस विवाह में उस कुलगुरु का आशीर्वाद भी हो। **चौथे**, उस गृह में कार्य करने वाले यदि सेवक हैं तो उनकी प्रसन्नता भी हो। विवाह धार्मिक रीति और अनुष्ठान से हों, उसमें दुर्व्यसनों का इस्तेमाल न हो, वह कुलीन विवाह हैं जो विवाह शराब के दौरों में होटलों में होते हैं, वे अभिशप्त विवाह होते हैं, कुलीन नहीं होते, उनका अन्त दुखों में होगा। बहुत पैसे खर्च करके शादी करने वालों! यह ध्यान रखना, अगर आपने अपने लड़के या लड़की के विवाह में शराब का इस्तेमाल किया है और उन लोगों को बुलाया है जो ईर्ष्यालु हैं, तो ऐसा विवाह अभिशप्त विवाह होगा। उसमें कभी न कभी दम्पत्ति में कोई न कोई गहन मतभेद अवश्य आ जायेगा, जो उनके जीवन को और उनकी संतान को नष्ट कर देगा। भारतीय मनीषियों ने डंके की चोट पर यह कथन कहे हैं।

कुलीन विवाह भगवान लक्ष्मी-नारायण का एक विशेष परिदृश्य होता है। लोग उनका आशीर्वाद लेने के लिए वर और वधू के यहाँ जाते हैं।

कुलीन संतान उत्पन्न करने के लिए महारति क्रीड़ा हो, शिव-शक्ति क्रीड़ा, इसको कहा है **महारति।** यह मात्र दैहिक संभोग-क्रिया नहीं है, इसकी बहुत औपचारिकताएँ हैं। सुनिये, उसमें पाँच विशेष दैहिक अवस्थायें हों—**हर्ष, उल्लास, अभय, आरोग्यता और संतोष** यह पहली औपचारिकता है महारति की। पाँच भावों से युक्त हो यह क्रीड़ा—**श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, आत्म-समर्पण**, **निष्ठा।** पाँच भावातीत हो यह महाक्रीड़ा— **देशातीत, कालातीत, धर्मातीत, कर्मातीत, लिंगातीत**, क्रीड़ा के समय यह भूल जायें कि मैं पुरुष हूँ, या मैं स्त्री हूँ। यह महायोग है। भगवान श्रीकृष्ण राधा को प्रेम-पत्र लिख रहे हैं और आधा पत्र लिखते-लिखते वह राधामय हो गये व राधा बनकर उन्होंने शेष पत्र कृष्ण को लिख दिया। इस अवस्था को कहा है लिंगातीत। यह महाक्रीड़ा पाँच-महाभूतों का खेल है, जिनकी प्रतिनिधि पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। रूप, रस, गन्ध, शब्द एवं स्पर्श—पाँच तन्त्रिका-तन्त्र, इस महाक्रीड़ा में काम करते हैं। पाँच रस काम करते हैं और मात्र यही एक ऐसी महाक्रीड़ा है, जो इन सभी औपचारिकताओं के अन्तर्गत यदि होती है तो इसमें देह में जो पाँच प्राण हैं, (**प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान**) वे मूलाधार में एकत्रित हो जाते हैं। पातंजलि के अष्टांग योग में भी कोई योग ऐसा नहीं है जो पाँचों-प्राणों को एक जगह एकत्रित कर सके। यह महारति है। उत्तम संतान की बात कर रहा हूँ। हमारे मनीषियों की देन है—उत्तम संतान की यह प्रक्रिया। सम्भोग पशुओं में होता है, महारति भगवान शंकर और शक्ति का संगम है। पाँचों प्राण मूलाधार में एकत्रित हो जाते हैं और जब पति-पत्नी उन पाँच-प्राणों की शक्ति को संतान उत्पत्ति के लिए इस्तेमाल करते हैं, तो जो संतान उत्पन्न होती है, वह महायोद्धा, महायति, महानृप, महासिद्ध में से एक होगी। यदि इन पाँचों-प्राणों की महाशक्ति को योगी साधना द्वारा किसी भी प्रकार उर्ध्व ले जायें, जिसको कहा है उर्ध्वरेता, तो उत्पन्न होता है **महाज्ञान**। आपका जो ज्ञान-स्वरूप है, वह प्रकट हो जाता है और आपके सम्मुख ये वेद, शास्त्र हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं। हम व्यास-गद्दी से अतिशयोक्ति नहीं कर रहे हैं। आपका भीतर का

ज्ञान-स्वरूप प्रकट हो जाता है और उसके साथ तीन उपहार मिलते हैं— **अजरता, अमरता और ऐश्वर्य**। आज बहुत नई बात बता रहा हूँ, जो है बहुत पुरानी। उत्तम संतानकी उत्पत्ति अपने में एक योग है, पुरुषार्थ है। यह आध्यात्मिक जगत उन शूरवीरों के लिए है, महारथियों, महायोगियों के लिए है, जो इस पुरुषार्थ से उत्पन्न हुए।

यह महाक्रीड़ा एक पुरुषार्थ है, वह संतान जब गर्भ में आती है, उसके बाद माता-पिता को तप करना पड़ता है। गर्भ-धारण के पाँचवे महीने जीवात्मा का प्रवेश होता है। उस समय माता-पिता की प्रत्येक क्रिया का सीधा प्रभाव शिशु पर पड़ता है क्योंकि उस काल में उसमें अत्यधिक ग्रहण-क्षमता होती है। वीर अभिमन्यु ने चक्रव्यूह-भेदन अपनी माँ के गर्भ में सीखा था। अष्टावक्र ने परम ब्रह्मसूत्रों का ज्ञान माँ के गर्भ में ही लिया था। तो उत्तम संतान प्राप्त करने के लिये आपका जीवन योगियों की तरह होना चाहिये। घर का वातावरण, खान-पान, कमाई सब विशुद्ध होनी आवश्यक है। यह भी अपने में एक योग है, एक तप है। जब संतान उत्पन्न हो जाये, उसको असाधारण बच्चा बनाइए। जब सांसारिक वस्तुओं से हम जाने जाते हैं, यदि हम अपने पद से जाने जाते हैं, तो हम साधारण हैं। अपनी खूबसूरती से जाने जाते हैं, अपनी डिग्रियों से जाने जाते हैं, अपने बड़े भवन से, अपनी बहुत सुन्दर कार से और सांसारिक उपलब्धियों से यदि कोई मानव जाना जाता है, तो वह साधारण मानव है। जिस दिन हमारी भौतिक उपलब्धियाँ हमसे छिन जायेंगी, जो ज़रूर छिनेंगी, छिनती हैं। उस दिन हमें कोई नहीं पूछेगा:—

'कौन पूछेगा तुझे यह हुस्न ढल जाने के बाद।'

असाधारण क्या है? जब संसार की वस्तुयें हमारे से जानी जायें, वस्तुओं से हम नहीं। महापुरुषों ने जिस कुटिया या गुफा में तप किया हो, उसे लोग सज़दा करें, किसी पेड़ को छुआ हो, उस पेड़ की पूजा की जाये, जिस वस्त्र को पहना हो, वह वस्त्र पूजनीय हो जाये, जिस स्थान पर बैठा हो वह स्थान तीर्थ बन जाये, लोग हज़ारों वर्षों तक वहाँ जाने पर अपने आपको

सौभाग्यशाली मानें। यदि वे वस्तुयें, वह शहर, वह स्थान, वह कुटिया, वह परिधान, उस व्यक्ति से जाना जाये तो वह व्यक्ति असाधारण है। अपने बच्चे को असाधारणता की ओर प्रेरित करने के लिए आपको तपस्वी होना पड़ेगा। तो पहला चिमटा तप का था कि **पितृ-ऋण** –अपने माता-पिता का आशीर्वाद लेते हुए यौगिक कर्म करो। माता-पिता से यह कहना कि मैं आपका ऋणी हूँ इतना कहने से ही वे प्रसन्न हो जाते हैं। **जो व्यक्ति स्वयं को माता-पिता का ऋणी नहीं समझता वह संसार के सुख कभी भोग नहीं सकता, उसे यश नहीं मिल सकता और उसका बल, बुद्धि, ज्ञान कभी भी नहीं बढ़ सकता।**

दूसरा ऋण, जो मनीषियों ने रखा, वह था **देव-ऋण।** जब हम स्वयं को अपने नाम-रूप से पहचानने लगते हैं कि मैं अमुक हूँ, यह ऋण हमारे ऊपर उसी समय लागू हो जाता है। क्योंकि हमसे वहाँ एक गलती हो जाती है, सभी से, कि हम इस देह को अपनी देह मानने लगते हैं, जोकि हमारी नहीं है। अरे ! जो वस्तु, जो देह हमको एक निश्चित समय पर मिली और जो न जाने कब हमको छोड़ जाये, जिसका एक-एक साँस उसके हाथ में है, वह देह हमारी कैसे हो सकती है? हमारे अमुक-अमुक माता-पिता हमको क्यों मिले? अमुक स्त्री और पुरुष से हमारा विवाह क्यों होता है? हम नहीं जानते। अमुक प्रकार की संतान हमको क्यों मिलती है, हम नहीं जानते। हमको मरना कब है? हम नहीं जानते। जीवन की प्रमुख घटनायें क्यों होती हैं? हम नहीं जानते हैं। ईमानदारी से सोचिये, हम नहीं जानते। हमने यह जानने की कभी चेष्टा ही नहीं की कि यह अद्‌भुत चमत्कारिक देह प्रभु ने हमको क्यों दी? हम उस पर अनधिकृत कब्ज़ा कर बैठे। तो वहाँ पर दूसरा ऋण लागू कर दिया और वह था **देव-ऋण**। **देव- ऋण**–पाँच-महाभूतों की बनी हुई काया परमात्मा ने तुम्हें दी है, इसलिए पाँचों-महाभूतों का पूजन करो ! घर-घर में हवन होना अति आवश्यक है। आपको पाँचों-महाभूतों का विशुद्धिकरण करना, उनका पूजन करना आवश्यक है। पाँचों-महाभूतों में विशिष्टतम महाभूत है अग्नि, जो कभी प्रदूषित नहीं होती। जल प्रदूषित हो

सकता है, आकाश प्रदूषित हो सकता है, वायु प्रदूषित हो सकती है, पृथ्वी प्रदूषित हो सकती है लेकिन अग्नि कभी भी प्रदूषित नहीं हो सकती। जब हम ईश्वर का ध्यान करते हैं तो हम नेत्र बन्द कर लेते हैं, कान बन्द कर लेते हैं, जीभ से कोई स्वाद नहीं चखते, स्पर्श नहीं करते किसी चीज़ को। जब हम ईश्वर के निराकार की उपासना करते हैं। तो इन पाँचों-महाभूतों का विलय करके हम ईश्वर के ध्यान में, समाधि में जाते हैं,। जब साकार की उपासना करते हैं तो पाँचों-महाभूतों द्वारा करते हैं। बड़ी नई बातें बता रहा हूँ। जब हम साकार रूप में उस ईश्वर को मानते हैं तो हम नेत्र खोलकर उससे त्राटक करते हैं, उसको भोग लगाते हैं, उसको संगीत सुनाते हैं, उसको स्पर्श करते हैं। यह पाँचों-महाभूत हमें माया में उलझाते हैं। यह पाँचों-महाभूत हमें माया से सुलझाते हैं। यह देह पाँचों-महाभूतों की बनी है। इन पाँचों-महाभूतों से हमारा पालन होता है और जब मृत्यु होती है तो अग्नि द्वारा यह महाकाया इन पाँचों-महाभूतों में विलीन हो जाती है और शेष बचती है कुछ राख। **यज्ञ-हवन द्वारा अग्नि का पूजन होता है जो ईश्वर के पाँचों निराकार महाभूतों में विशुद्धतम तत्त्व है।** अरे ! दस मिनट हर रोज़ हवन करिये, आपसे जो गलती हुई अपनी देह पर कब्ज़ा करने की उसमें थोड़ी बहुत क्षमा मिल जायेगी। आप संसार को थोड़ा बहुत भोग पायेंगे, अन्यथा आप भोग नहीं सकते। कानूनन भोग नहीं सकते।

तीसरा ऋण था ऋषि-ऋण। समय-समय पर हमारे भारत में ऋषि हुये हैं, मनीषी हुए हैं, देवर्षि, राजर्षि मात्र भारत-भूमि पर। वे गृहस्थी थे, बड़े-बड़े नृप थे और उन्होंने सब कुछ त्याग कर तप किया, जप किया। उन्होंने मानव के जीवन को परमोत्कृष्ट बनाने के लिए, अति गुणात्मक बनाने के लिये हमें कुछ नियम बताये। इसके तरीके इन्होंने कन्दराओं में बैठकर ज्ञात किये और हमें निर्देशित किया।वे हमारे जन्मजात संस्कार बन गये। प्रत्येक भारतीय में वे संस्कार हैं, उनमें उन ऋषि, मनीषियों के संस्कार विद्यमान हैं लेकिन वो आच्छादित हो गये हैं, ढक गये हैं। मल, विक्षेप और आवरण इन शब्दों का वर्णन मैं कई बार कर चुका हूँ। जैसे ही

हमारे अन्दर हमारी बुद्धि से मलिनता आई तो हम मलिन हो गये और मलिन होने की वजह से हम विक्षिप्त हो गये क्योंकि मल और विक्षेप का दामन-चोली का साथ है। जब विक्षिप्त होगा तो साथ ही साथ आवृत्त हो जायेगा, ढक जायेगा, आच्छादित हो जायेगा। अपने सच्चिदानंद स्वरूप से परे सा हट जायेगा। ऋषि, मनीषियों द्वारा दिए गए जो हमारे संस्कार हैं, वे हमारी फिज़ाओं में हैं, हमारी हवाओं में हैं, भारत की भूमि में हैं। उन संस्कारों को हम भूल से गये हैं। इसलिए एक विशेष आयु रख दी मनीषियों ने कि 50 वर्ष की आयु के बाद वानप्रस्थ लीजिये, अपना कारोबार अपने बच्चों को दे दीजिये। गृहस्थ को छोड़ दीजिये और ध्यान करिये, मनन करिये, सत्संग करिये, क्योंकि सत्संग केवल उसको मिलता है, जिसके ऊपर उसके माता-पिता की कृपा होती है।

पाँच दुर्लभ वस्तुएँ बताई हैं शास्त्रों ने—**अच्छा स्वास्थ्य, अच्छा धन, ईश्वरीय भक्ति, विनम्रता और सत्संग।** यह मात्र उस व्यक्ति को मिलते हैं जिसके ऊपर माता-पिता की कृपा होती है। **अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष** ये चार पुरुषार्थ के सोपान हैं और दो महाकर्म हैं—**उपासना और साधना**। ये मात्र भारत में हैं। सबसे ऐश्वर्यवान देश पूरे विश्व भर में यदि कोई है तो वह भारतवर्ष ही है। हम सब ऐश्वर्यवान हैं, आनन्दमय हैं। आज इसको अनाच्छादित करना है और वह **पुरुषार्थ** से होगा।

ऋषि-ऋण क्या है? कि हम अपने संतों की, महात्माओं की सेवा करें, उनको प्रसन्न करें। उनके लिखे हुए ज्ञान को वितरित करें, आगे बढ़ायें, उनका सम्मान करें, उनकी पूजा करें और स्वयं अपने दुर्लभ संस्कारों को जाग्रत करें व उनको बढ़ायें, यह है **ऋषि-ऋण।** प्रश्न उठता है कि इन तीनों ऋणों से मुक्त कौन है? जिनको इन ऋणों की माफी है, उनमें पहले हैं **पशु**—जैसे घोड़ा, खच्चर, बैल, गधा, ऊँट, इन पर कोई **पितृ-ऋण** लागू नहीं होता, क्योंकि इन्हें कोई माँ-बाप का ज्ञान नहीं होता। **दूसरे** तेज बुद्धि के मानव-रूप में ऐसे पशु जिनको माँ-बाप का कोई महत्त्व ही नहीं होता। **देव-ऋण** और **ऋषि-ऋण** का तो कोई सवाल ही नहीं, **क्योंकि उन्हें उनका**

महत्त्व ही ज्ञात नहीं। तो वे भी मुक्त हैं इन ऋणों से। दूसरे मुक्त हैं वे महापुरुष जिनकी **सन्यास-वृत्ति** होती है, कि प्रभु ! सब कुछ आपका है, मेरे माता-पिता, भाई-बन्धु, जाति-पांति, देश-समाज आदि सब कुछ आप ही हैं। **तीसरे** ईश्वर के अनन्य भक्त भी इन तीनों ऋणों से मुक्त होते हैं। वे अपना सब कुछ प्रभु के पास **गिरवी रख देते हैं**:—

''क्या पेश करूँ तुमको, क्या चीज़ हमारी है?
यह दिल भी तुम्हारा है, यह जाँ भी तुम्हारी है।''

भक्त अपना सब कुछ समर्पित कर देता है और भूल जाता है कि मैंने कुछ समर्पित भी किया है। **समर्पण का समर्पण,** इस अवस्था में उस पर कोई व्यवहार लागू नहीं होता और वे ऋण-मुक्त हो जाते हैं। **चौथे वे योगी भी ऋण-मुक्त हो जाते हैं** जिनका महात्म्य ईश्वर से भी ज़्यादा बढ़ जाता है :—

''खुदी को कर बुलन्द इतना, कि हर तकदीर से पहले
खुदा बन्दे से खुद पूछे बता तेरी रज़ा क्या है?''

संत का पद ईश्वर से बड़ा है। ईश्वर स्वतन्त्र है, उच्छृंखल नहीं। सत्य के ऊपर जब बिन्दी का मुकुट लग जाता है तो संत बनता है। वे संत भी इन तीनों ऋणों से मुक्त होते हैं। ईश्वर जिनसे परामर्श लेकर विश्व का संचालन करते हैं, बहुत पहले मैंने कहा था कि विश्व में जो—जो महा परिवर्तन होते हैं वे हमारे हिमालय की कन्दराओं में बैठे महायोगियों के परामर्श से होते हैं। अतः भारत ही जगद्‌गुरु था, भारत ही जगद्‌गुरु है और भारत ही जगद्‌गुरु रहेगा।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(22 अप्रैल, 2001)

सद्‌गुरु

आज इष्ट-प्रेरणा और आपके अनुरोध से, आपके सम्मुख '**सद्‌गुरु पद**' जो स्वयं में अवर्णनीय है, उसके बारे में वर्णन करने का प्रयत्न करूँगा। सद्‌गुरु क्या है, सद्‌गुरु की क्या आवश्यकता है, सद्‌गुरु का सद्‌शिष्य के जीवन में क्या महात्म्य है, क्यों महात्म्य है, सद्‌गुरु एवं सद्‌शिष्य की सीमा का निर्धारण क्या है? इसके बारे में आत्मानुभूति, जो इष्ट-कृपा से हुई है, आपके सम्मुख रखूँगा।

इससे पहले कि हम सद्‌गुरु के बारे में वर्णन करें, आज हमें पूर्णतया स्पष्ट होना अति आवश्यक है कि अध्यापक क्या है, गुरु क्या है, धर्मगुरु क्या है और इन सबका सद्‌गुरु के साथ क्या सम्बन्ध है? यह समस्त प्रश्न आज अति स्पष्ट होने आवश्यक हैं। दुर्भाग्यवश बड़े-बड़े शिक्षक आज शिक्षा की परिभाषा भी नहीं जानते। बहुत शिक्षित हैं हम लोग और बहुत तत्पर रहते हैं अपने बच्चों को शिक्षित करने के लिए। वह शिक्षा क्या है? मैंने उत्कृष्ट शिक्षा प्रवचन में शिक्षा की परिभाषा दी थी। प्रत्येक शिक्षा के लिए विद्यार्थियों की कुछ अनिवार्यतायें होती हैं, उसके अंक क्या हों और उसकी प्रतिभायें क्या हों? आजकल उसकी आर्थिक स्थिति भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि शिक्षा-संस्थानों में लाखों रुपये की भेंट चाहिये। विद्यार्थी की आर्थिक स्थिति भी देखी जाती है। इन सब के बाद उसे शिक्षा-संस्थानों में प्रवेश मिलता है। शिक्षक भी भौतिक और शिक्षार्थी भी भौतिक और उसके उत्पाद निकलते हैं बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ लिए हुए **तथाकथित अतिशिक्षित भौतिक मानव।**

उनकी मात्र एक दृष्टि होती है कि जैसे ही शिक्षा समाप्त हो, धन इकट्ठा करें। चाहे उनका देश बिक जाये, कुछ भी बिक जाये ! उनको चाहिए धन। ये शिक्षार्थी उस शिक्षा के कारण कई बार अपना देश छोड़ देते हैं। अपने माँ-बाप को छोड़ देते हैं। यही नहीं कई बार देश को बेच देते हैं, लेकिन यह हमारी परम्परा नहीं थी।

हमारे यहाँ गुरु होते थे। अब भी हैं, जो शिक्षा को आध्यात्मिक कर देते थे, दिव्य कर देते थे। शिक्षा-संस्थानों में प्रभु की प्रार्थना के बाद शिक्षा-ज्ञान दिया जाता था। हर भौतिक-ज्ञान को ईश्वरीय कर दिया जाता था। चाहे वह धनु-र्विद्या हो, चाहे वह संगीत-विद्या हो, चाहे वह नृत्य-विद्या हो, अर्थ-शास्त्र हो, अणु-शास्त्र हो, परमाणु-शास्त्र हो, कोई भी विज्ञान हो, भौतिकी हो, रसायन-विज्ञान हो, सबको ईश्वरीय कर दिया जाता था। उससे क्या होता था कि **उस शिक्षा को पाने वाले शिक्षार्थियों को यह सिखाया जाता था कि शिक्षा, शिक्षक, शिक्षार्थी और शिक्षाफल ईश्वर है। अध्यापक भी ईश्वर-तुल्य होता है।** उसकी शिक्षा स्वयं अराधना होती थी और उसका प्रकटीकरण भी दिव्य होता था। उससे उन डिग्रियों को लेने वाले बिकते नहीं थे। वे विनम्र साधक होते थे, जो परिवार, देश, समाज, विश्व की सेवा करते थे। **हमारे यहाँ गुरु और आचार्य प्रथा थी।** उसमें विद्यार्थियों की प्रतिभाएँ देखी जाती थीं। शिक्षक और विद्यार्थी का आपस में एक बहुत बड़ा पावन सम्बन्ध होता था, जो आजन्म रहता था, यह कोई बहुत पुरानी बात नहीं है। भौतिक शिक्षा को जब आध्यात्मिक किया गया, दिव्य बनाया गया, तो अध्यापक को कहा है–**'गुरु'**।

तत्पश्चात् स्थान आता है **'धर्मगुरु'** का, जो भौतिक-आध्यात्मिक धारणा है। जब कुछ महामानवों के एक समूह ने अपने जीवन को मर्यादित व अनुशासित करने के लिए, खान-पान, रहन-सहन, जन्म-मृत्यु, विवाह-शादी इत्यादि सबमें विशेष प्रकार की परम्पराओं का समावेश किया कि उनको जीवन के विशिष्ट अवसरों के समय क्या आचार-व्यवहार करना है, उनका रहन-सहन कैसा होना चाहिये? तो उनका नेतृत्व करने वाले को **'धर्मगुरु'**

कहा गया। इस प्रकार कुछ विशिष्ट लोगों के समूह को किस प्रकार अनुशासित और मर्यादित रहना है ताकि वे ईश्वर को किसी विशिष्ट नाम-रूप, अरूप, साकार-निराकार किसी में भी मानकर अपने धर्मगुरुओं द्वारा इंगित उस ईश्वरीय दृष्टिकोण में समाविष्ट होकर, अंतिम सत्य को पा सकें, उसका नाम था—**'धर्म'**। धर्म एक प्रकार की पवित्र नदिया थी गंगा-जमुना की तरह, जो अन्ततः जाकर सागर में मिलती थी। जब नदिया सागर में मिलती है तो अपना नाम-रूप अवश्य खो देती है। इस प्रकार धर्मगुरुओं ने कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के समूह को धर्म का ज्ञान दिया और धर्म शुरू हुए। लेकिन दुर्भाग्यवश धर्म का वास्तविक अर्थ न जानते हुए उन धर्मों में आपस में संघर्ष हो गया। वे यह नहीं जानते थे कि अन्ततः हमको अध्यात्म-सागर में मिलना है। आज धर्मों में परस्पर विरोध और लड़ाईयाँ हैं, क्योंकि धर्म जो मानव मात्र की सेवा के लिए, परोपकार के लिए और आत्मोत्थान के लिए थे, वे अपनी-अपनी परिस्थितियों तक ही रह गए। आज वहाँ आपस में कलह क्यों है, कि उन धर्मावलम्बियों ने यह नहीं जाना कि धर्म का अंत कहाँ है? अगर उसका अंत जान लेते कि अंत एक ही है और आरम्भ भी एक ही है, तो जितने भी झगड़े हुए सारे मध्य में ही हुए, वे भी समाप्त हो जाते।

सर्वोपरि स्थान आता है **'सद्‌गुरु'** का। **शिक्षा के लिए भौतिक अध्यापक चाहिए, प्रधानता चाहिये बौद्धिक चातुर्य की। थोड़ी बहुत धर्म के लिए भी चाहिये क्योंकि धर्म अन्ततः एक आत्मिक विषय है और सद्‌गुरु को मात्र वह सद्‌शिष्य चाहिये जो कि धर्मो-कर्मो से ऊपर उठ चुका हो और अंतिम सत्य उस ईश्वर के बारे में जानना चाहता हो।** सद्‌गुरु को ऐसा सद्‌शिष्य यदि कभी मिल जाये तो उसको उसके आत्मस्वरूप की अनुभूति कराने में वह सद्‌गुरु सक्षम होता है। वह **'समर्थ सद्‌गुरु'** सद्‌शिष्य की बुद्धि नहीं देखता, उसकी आर्थिक स्थिति नहीं देखता, उसकी प्रतिभायें नहीं देखता केवल उसके भीतर लगी हुई ज्ञान-अग्नि की ललक और उसकी गहनता को देखता है। ऐसा सद्‌शिष्य

कभी-कभी उत्पन्न होता है और जब उसको यह अगन लग जाती है कि मैं कौन हूँ, ईश्वर कहाँ है? तो वह तड़प उठता है। जब यह तड़प उसकी देह व दिल में झलकने लगती है तो सद्गुरु उसके सामने प्रकट हो जाता है। इतिहास गवाह है। इससे पहले कि हम सद्गुरु के बारे में वर्णन करें हमें सद्शिष्य के बारे में जानना परमावश्यक है।

सद्शिष्य वो महामानव है जिसके शिष्यत्व का प्रारम्भ जिज्ञासा से होता है। जिज्ञासु जो ईश्वर के बारे में जानना चाहता है। उसके लिए सर्वप्रथम आवश्यक है कि वह स्वयं को जाने कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाना है मुझे, अगर मैं पृथ्वी पर लाया गया हूँ तो क्यों लाया गया हूँ? अगर मैं पृथ्वी पर स्वयं आया हूँ तो क्यों आया हूँ? यह निद्रा या सुषुप्ति क्या है, जन्म-मृत्यु क्या है? क्या किसी ने अपना जन्म देखा है? नहीं। किसी ने अपनी मृत्यु नहीं देखी। किसी ने अपने आपको सोये हुए भी नहीं देखा, किसी ने अपने आपको मूर्छित नहीं देखा। यह पाप-पुण्य क्या हैं। यदि मैं पापी हूँ तो पाप करने की शक्ति कौन देता है मुझको? अगर शक्ति ईश्वर देता है तो मैं भुगतता व फँसता क्यों हूँ? यह सुख-दुःख, शुभ-अशुभ क्या है? मेरे सब सम्बन्ध क्या हैं, क्यों है? ये समस्त प्रश्न किसी जिज्ञासु को पागल करने के लिए पर्याप्त होते हैं तो वह अपनी बुद्धि, साधनाओं, अपने जीवन के सारे आयामों और अपने सब कुछ को, इनका उत्तर पाने के लिए दाँव पर लगा देता है। इसके पश्चात् वह अपने ईश्वर के बारे में जानना चाहता है कि तुम कौन हो, कहाँ रहते हो? यदि तुम परम पिता परमात्मा सच्चिदानंद हो तो मैं तुम्हारी संतान सच्चिदानंद क्यों नहीं हूँ? यदि तुम हर्ष, उल्लास, अभय, आरोग्यता, सर्वसम्पन्नता के सागर हो, तो मैं दुःखी क्यों हूँ, मैं रुग्ण क्यों हूँ? तुम जन्म-मृत्यु से परे हो, मैं जन्म-मृत्यु में क्यों फँसा हूँ? तुम खुदा हो, खुले हो तुम, मैं बन्दा क्यों हूँ, मैं बँधा हुआ क्यों हूँ? यदि तुम साकार हो तो क्यों नहीं सारे संसार में एक ही नाम-रूप से जाने जाते? मेरे जीवन के एक-एक साँस के, एक-एक पल के तुम स्वामी हो। अगला साँस मुझे आयेगा कि नहीं आयेगा, यह तेरे हाथ में है। मैं भविष्य की प्रतीक्षा नहीं

कर सकता। मुझे इनका उत्तर अभी चाहिये। माधो ! मैं तुझ से अभी मिलना चाहता हूँ, अभी। जब यह स्थिति आ जाती है तो सद्‌गुरु प्रकट हो जाता है।

इतिहास साक्षी है कि हमेशा फकीर मुरीदों के पीछे भागे हैं। रामकृष्ण परमहंस बैठे हैं, नरेन बाँसुरी लिये आधुनिक पोशाक पहने आकर खड़ा हो जाता है और वो पागलों की तरह उससे लिपट जाते हैं, कि बेटा मुझको मत छोड़ना। मैं तुमको चाहता हूँ। वो युवक सकपका जाता है कि इनको क्या हो गया है? परमहंस कहते हैं—"यह देवी खड़ी है, इससे बातें करो, मैं तुम्हारी बातें करवा दूँगा, जो चाहते हो मैं तुम्हें दिलवा देता हूँ लेकिन मेरा अनुसरण करो ! मेरे शिष्य बन जाओ ! उस महापुरुष ने उस सुन्दर युवक में उसकी जिज्ञासा को देख लिया और वह नरेन, स्वामी विवेकानंद के नाम से पूरे विश्व में प्रख्यात हुआ। भारतीय अध्यात्म की ज्योति उसने पूरे विश्व में जलाई थी, जिससे आप सब अवगत हैं।

यही स्वामी विवेकानंद लाहौर में प्रवचन दे रहे थे और श्रोताओं में सभी प्रकार के लोग थे। महापुरुष कभी भी गहन ब्रह्म-सूत्रों को जनसाधारण में नहीं बताते। उस दिन क्या चमत्कार हुआ जब स्वामी जी प्रवचन दे रहे थे तो उनके मुख से सब ब्रह्मसूत्र स्वतः ही निकलने लगे, वे नियंत्रण करना चाहते हैं लेकिन नियंत्रण नहीं हो पाया। स्वामी जी अबाध-गति से बोलते रहे। प्रवचन समाप्त हुआ। लोग उठकर जाने लगे और स्वामी जी मंच पर बैठे-बैठे ही समाधिस्थ हो गये। उनको ग्लानि हुई कि जनसाधारण में क्या बोल बैठा हूँ? सारी संगत चली गई। जब स्वामी जी के नेत्र खुले तो 27–28 वर्ष की आयु के एक नवयुवक को देखा। स्वामी जी ने उसे अपने पास बुलाया और पूछा—'तुम्हारा नाम।' 'मेरा नाम है राम।' 'क्या करते हो?' बोला—'मैं सरकारी स्कूल में गणित पढ़ाता हूँ।' स्वामी जी की दिव्य-दृष्टि ने उसको पहचान लिया और कहा, 'राम ! अरे तू तो जंगलों का बादशाह है, तू यहाँ क्यों बैठा है? आज तू ही मुझसे सब कुछ उगलवा गया।' एक सद्शिष्य ने जो अकेला इतनी बड़ी सभा में बैठा था, उस महापुरुष के मुख से ब्रह्मसूत्र उगलवा दिये।

लाहौर की कट्टेवाली गली में रहते थे अध्यापक राम। उनमें इतनी शक्ति थी कि घंटों-घंटों रावी के तट पर ध्यान-समाधि में बैठे रहते थे। वे गृहस्थी थे, दो लड़के थे इनके। घर आते ही अपनी पत्नी को आदेश दिया कि चलो अब राम भेड़ों में नहीं रहेगा। सिंह है राम। शहंशाह है राम। अब यह अपने स्थान पर रहेगा। धर्मपत्नी ने पूछा—'क्या हो गया है आपको?' उन्होंने कहा कि घर का सामान बाहर निकाल दो और बाँट दो लोगों में। हमारे साथ चलो, चलना है तो! ऐसे महापुरुषों के साथ स्त्रियों का रहना बड़ा मुश्किल होता है, उन्हें झेलना पड़ता है उनको। उनकी पत्नी ने अपना सब कुछ चकला-बेलन, बिस्तर जो कुछ था घर में, सब कुछ बाहर निकाल दिया, चौराहे पर रख दिया। राम निकल पड़े अपनी पत्नी और दो बच्चों के साथ। छोटे-छोटे बच्चे थे, दो साल का अंतर था दोनों में। राम अनारकली बाजार से निकल रहे हैं बस स्टैंड पर जाने के लिए। पीछे मुड़कर देखा, कि अच्छा हमारे साथ चल रही हो, कि 'हाँ चल रही हूँ।' बोले, 'एक काम करो, बड़े बच्चे की उँगली छोड़ दो।' 'बादशाह है राम और राम के बच्चों को वह बादशाह पालेगा।' बोली, ''स्वामी आप क्या कर रहे हैं?' 'मैं इन्हें अपने पिता के पास भेज देती हूँ। आप ऐसा क्यों कर रहे हैं?' बोले, 'नहीं! तुम्हारा पिता बादशाह नहीं है। राम के बच्चों को वही राम पालेगा। इसको छोड़ दो यदि मेरे साथ चलना है तो।' माँ ने भीड़ में बड़े लड़के की उँगली छोड़ दी। कुछ आगे चले। थोड़ी देर में फिर पीछे मुड़े राम, बोले, 'चलोगी हमारे साथ।' बोली, 'चल रही हूँ,' बोले, 'अब छोटे बच्चे को छोड़ दो इसको भी वही पालेगा।' तो माँ ने छोटे बच्चे की उँगली भी छोड़ दी। भीड़ में बच्चा चिल्लाया, 'माँ' कहकर लेकिन माँ ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। अन्ततः दोनों ऋषिकेश आये। माँ वह वेदना सहन नहीं कर सकी, दो-तीन दिन में मर गई। राम ने गंगा जी के किनारे उसकी चिता बनाई और उसका दहन कर दिया और स्वयं उत्तरकाशी की ओर निकल पड़े। रास्ते में टिहरी में इनकी तपःस्थली अब भी है। टिहरी नरेश के यह राजगुरु हुए। अब इन दो बच्चों का क्या हुआ? अनारकली बाज़ार में मुजरा होता था और नाभा नरेश के

दीवान वहाँ मुजरा देखने के लिए आये हुए थे। उनकी कोई संतान नहीं थी। पुलिस ने घोषणा की इन दो बच्चों के लिए। दीवान साहब ने देखा, बहुत सुन्दर बच्चे थे। उन्होंने कहा, 'इन्हें हम नाभा दरबार में ले जाते हैं तो उन दोनों बच्चों को दीवान फतेहचन्द अपने साथ नाभा ले गये और नाभा में, राज दरबार में वे बच्चे पले और बाद में नाभा नरेश के राजगुरु हुए। इस प्रकार जब किसी सद्‌शिष्य में जिज्ञासा की आग भड़क जाती है तो उसके बाद वह संसार एवं परिवार के बारे में भूल जाता है।

इसी प्रकार महाराज गुरु नानक देव जी महाराज ने अपनी गद्दी अपने बेटों को नहीं दी, लहना को दी थी। जो सद्‌शिष्य होता है सद्‌गुरु उसके सामने स्वयं आ जाता है। उसको स्वीकार कर लेता है, चाहे वह कोई भी हो ! तो सद्‌गुरु का प्रकटीकरण हो जाता है। सद्‌शिष्य में सत्य-जिज्ञासा की आग भड़क जाती है। उसके हृदय में विभिन्न प्रश्न बिजली की तरह कौंधने लगते हैं और लक्षण बनकर देह में प्रकट होने लगते हैं। यह प्रश्न जब किसी की नींद व भूख उड़ा देते हैं तो वह सद्‌शिष्य उदास रहने लगता है:–

''फूल के आस-पास रहते हैं, फिर भी काँटे उदास रहते हैं,
चन्द लम्हात की खुशी के लिए लोग बरसों उदास रहते हैं।''

उसको अपने प्यारे की याद आती है। निराशा हो जाती है उसको। सांसारिक वस्तुओं, डिग्रियों, पद, संतान, धन, सम्पदा, स्त्री की निराशा नहीं, उसको अपने प्यारे को पाने के लिए निराशा हो जाती है। वह उदास रहने लगता है:–

''यूँ तो तेरे बग़ैर मुझे कुछ कमी नहीं,
यह और बात है कि मयस्सर खुशी नहीं।''

अरे ! तेरे बिना मेरे पास सब कुछ है, राजसी ठाठ हैं। धन, ऐश्वर्य, संतान, सम्पदा, पद, नाम, यश, सब कुछ है, लेकिन खुशी नहीं है इसलिए तुम मुझे मिल जाओ। अव्यावहारिक होते हैं वे ! आलोचना होती है उनकी। किसी के मरने पर बधाई दे देते हैं कि बहुत अच्छा हुआ। किसी के पैदा होने पर दुख प्रकट करते हैं, कि क्यों आ गया इस संसार में? लोग इनको

असभ्य कहते हैं, निकम्मे हो जाते हैं वे, लोगों की दृष्टि में निठल्ले होते हैं:—

''इश्क ने ग़ालिब निकम्मा कर दिया,
वरना हम भी आदमी थे काम के।''

कोई काम नहीं करते। घरवालों में और बाहर वालों में एक चर्चा हो जाती है कि ये कुछ नहीं करते, लेकिन वे महापुरुषार्थी होते हैं। **पुरुषार्थ—पुरुष + अर्थ।** मेरी चेतन सत्ता का अर्थ क्या है? मैं कौन हूँ? अरे ! मैं वह काम क्यों करूँ जो सारी दुनिया कर रही है। मैं किसलिए यहाँ लाया गया हूँ? क्या कोई ऐसा कार्य है जो मेरे बिना नहीं हो सकता? ऐसे महामानव पुरुषार्थी होते हैं। पुरुषार्थ के दो आयाम हैं '**साधना और उपासना**।' घंटों-घंटों समाधि में बैठे रहते हैं लेकिन लोगों की निगाह में निठल्ले होते हैं। गुरु नानक देव जी महाराज का वृत्तान्त सुना चुका हूँ। जब महाराज युवा हुए, बहुत सुन्दर थे और अति बुद्धिमान थे। लेकिन निठल्ले थे, कुछ नहीं करते थे। तो पिता को चिंता हुई कि इसके साथ शादी कौन करेगी? एक दुकान खुलवा दी पंसारी की, तो गुरु महाराज ने सारी दुकान शाम तक **तेरा-तेरा** करके बाँट दी। सब कुछ दे दिया कि सब तेरा ही तेरा, पैसे किसी से नहीं लिये। पिता ने देखा कि अरे ! यह क्या कर बैठा है? कहीं पागल तो नहीं हो गया है? वैद्य ने नब्ज़ देखी, कई प्रकार के प्रश्न पूछे और कहा पिता जी से, कि महाराज आपका लड़का पागल नहीं है, लेकिन कुछ विशेषता है जो हमारी समझ में नहीं आती है। तो यह लोग निठल्ले होते हैं। अव्यावहारिक होते हैं। उदास रहते हैं। जब यह लक्षण प्रकट होते हैं तो उनको सद्गुरु अवश्य मिल जाता है। अब सद्गुरु और सद्शिष्य में कोई विशेष अंतर नहीं रहता। थोड़ी बहुत औपचारिकता रह जाती है जो मैं आपको बता देता हूँ।

जब कोई महापुरुष इनके प्रश्नों के उत्तर देने के लिए व इनकी जिज्ञासा-अग्नि को शांत करने के लिए इनके सामने प्रकट होता है तो वहाँ इनका आना-जाना शुरू हो जाता है। कभी सद्शिष्य, सद्गुरु के पास खाली हाथ न जाये, लेकिन दिल-दिमाग खाली करके जाये। अपने पद को,

स्थिति को और अपनी भौतिक हस्ती को अपने घर छोड़कर जाये। अपने जप-तप व साधना के अभिमान को भूलकर जाये। यदि आप लेश-मात्र भी अभिमान के साथ सद्‌गुरु के सामने जायेंगे तो वहाँ से कुछ नहीं मिलेगा।

सद्‌शिष्य, सद्‌गुरु के सामने कुछ न कुछ अवश्य अर्पण करे, भले एक पुष्प ही लेकर जाये, बहुत आवश्यक है। जब रावण की मृत्यु होने वाली थी और वह युद्ध के मैदान में पड़ा हुआ था। बहुत रुधिर बह रहा था तो भगवान राम ने अपने छोटे भाई लक्ष्मण को भेजा कि जाइये ! रावण प्रकाण्ड विद्वान है और बहुत बड़ा राजनीतिज्ञ है, आप उनसे कुछ शिक्षा लेकर आइये ! लक्ष्मण बड़े हैरान हुए कि मुझे रावण से शिक्षा लेने के लिए भेज रहे हैं। जब राम का आदेश हुआ तो वो रावण के पास चले गये और रावण के सिर के पास जाकर खड़े हो गये। रावण ने उन्हें देखा, बोला–'किसलिए आये हो?' लक्ष्मण बोले–'मुझे कुछ शिक्षा दो ! मेरे बड़े भाई राम जी ने भेजा है कि तुम से कुछ शिक्षा लूँ।' तो रावण मुस्करा दिया। उसने कहा–''बच्चे वापिस चले जाओ, क्योंकि तुम शिक्षा के अधिकारी नहीं हो। सिर के पास खड़े हो, बिना प्रणाम किये आये हो और बिना कुछ भेंट लिये आये। चले जाओ वापिस। लक्ष्मण जी घबरा गये, कि यह तो वास्तव में त्रुटि हो गई। अगर मैं राम के पास जाता हूँ, तो वहाँ डाँट पड़ेगी, कि तुम्हें पता नहीं है कि गुरु के पास कैसे जाते हैं? लक्ष्मण जी ने वहाँ युद्ध के मैदान में थोड़ी सी सूखी लकड़ी इकट्ठी की और तो कुछ था नहीं वहाँ पर वह लकड़ी इकट्ठी करके, पुलिन्दा बनाकर सिर पर उठा कर ले गये और रावण के चरणों में जाकर खड़े हो गये। 'गुरुदेव प्रणाम !' और लकड़ी वहाँ रख दी, कि 'यह आपकी भेंट !' तो रावण ने राजनीति की कई प्रकार की शिक्षा जो अन्तिम समय में दे सकता था, लक्ष्मण जी को दी और मरते समय कहा ''सुनो लक्ष्मण ! अपने भाई राम से कहना, कि मैंने अपने जीते जी उन्हें लंका में एक पाँव भी नहीं रखने दिया और मैं उनके जीते-जी वैकुण्ठ धाम जा रहा हूँ, क्योंकि वह तो विष्णु हैं।' इतना कहकर रावण ने अपने प्राण छोड़ दिये। लक्ष्मण हतप्रभ रह गया कि वाह ! इनको ज्ञात है कि भगवान राम विष्णु हैं।

तो कभी गुरु के पास खाली हाथ न जाये। विनम्रता से जाये। गुरु से कुतर्क न करे और गुरु का मूड देखे कि वह क्या कहना चाहता है और कुछ पूछना हो तो बहुत विनम्रता से पूछे।

बहुत आवश्यक बात है कि कभी भी गुरु के व्यक्तिगत जीवन के बारे में हस्तक्षेप न करें। क्योंकि गुरु समर्थवान होता है और वह क्या कर रहा है, शिष्य, मात्र उसको देख कर प्रणाम कर दे। यही गुरु-पूर्णिमा का अवसर और श्री कृष्ण के गुरु थे ऋषि दुर्वासा, जो जमुना पार रहते थे। भगवान ने अपनी सारी रानियों, महारानियों को, सखियों को और जितनी भी भगवान से जुड़ी सोलह हज़ार गोपियाँ थीं, सबको कहा कि आप गुरु महाराज की सेवा करके आइये, आज गुरु-पूर्णिमा है। गाय के दूध के एक सौ आठ व्यंजन बनाये गये, विभिन्न प्रकार के सोने के थालों में उन्हें सजाया गया। उन्हें सिर पर रख के वह गुरु महाराज के पास जाने के लिए जमुना पार करने के लिए चलीं तो क्या देखती हैं कि जमुना बढ़ी हुई है। बरसात के दिन थे, वापिस लौट आईं क्योंकि वहाँ पर कोई पुल नहीं था। भगवान श्रीकृष्ण से कहने लगीं कि जमुना बहुत बढ़ी हुई है, हम पार कैसे करें? बोले बड़ा आसान उपाय है, हृदय से जमुना मैया को कहो कि हे जमुना मैया! यदि कृष्ण महायति है, यदि कृष्ण ने स्त्री का कभी स्पर्श भी नहीं किया है तो हे जमुना मैया, रास्ता दे दे। सब चकित रह गईं कि यह हर बात में झूठ बोलता है, छल करता है। बोले, जाइये! यह हमारा आदेश है। सभी पंक्ति में खड़ी हो गईं जमुना जी के किनारे, क्योंकि प्रभु का आदेश था। हल्के से बोल दिया कि हे जमुना मैया, अगर कृष्ण महायति है तो रास्ता दे दे। जमुना एकदम खड़ी हो गई। इधर का जल इधर और उधर का जल उधर। बोलो श्रीकृष्ण भगवान की जय! जमुना खड़ी हो गई, रास्ता मिल गया और सब थाल लेकर जमुना को पार कर रही हैं। लेकिन सब चकित व हतप्रभ हैं, आपस में बात भी नहीं कर रहीं हैं। सोलह हज़ार स्त्रियाँ चुपचाप निकल गईं और सोचती रहीं कि कृष्ण महायति कहाँ से हो गया?

दुर्वासा के पास पहुँची, गुरुदेव को प्रणाम किया और गुरु दुर्वासा तो

जन्मजात क्रोधी थे। उन्होंने इशारा किया कि थाल रख दो। थाल रख दिये गये और दुर्वासा जी ने एक तरफ से खाना शुरू कर दिया। खा-खाकर थाल रखते गये। प्रसाद भी नहीं छोड़ा, बोले जाओ ! वे खाली थाल लिये चलने लगीं। जमुना में फिर वही कठिनाई। फिर लौट आईं कि चलिये, इनसे कुछ उपाय पूछती हैं जमुना पार करने का। कहा, 'गुरुदेव' ! बोले–'हाँ' ! 'जमुना कैसे पार करें?' बोले–ऐसा करो कि जमुना मैया को एक ही स्वर से बोलो कि अगर दुर्वासा महाव्रती है, अगर दुर्वासा ने आजीवन एक भी दाना अन्न का कभी ग्रहण नहीं किया है, तो हे जमुना मैया रास्ता दे दो ! वो अपने थाल निहार रहीं हैं कि यह महाव्रती ! तो चुपचाप चली गईं कि सरासर झूठ बोल रहे हैं। खाली थाल, प्रसाद भी नहीं छोड़ा और स्वयं को महाव्रती कह रहे हैं। महाभारत के युद्ध के बाद भगवान ने गोपियों को इसका रहस्य बताया कि कोई भी ऐसी स्त्री नहीं है जिसके साथ मैं किसी दिन अथवा रात को न रहा होऊँ। सब समझती थीं कि कृष्ण मेरे साथ ही रहता है। बोले अरे मूर्खो ! कृष्ण है एक और एक कृष्ण सौलह हज़ार स्त्रियों के साथ एक ही समय कैसे रह सकता है? यह तुम्हारी भ्रान्ति थी, क्योंकि राम अवतार में जब मैंने धनुष तोड़ा था तो तुम सब सीता की सखियाँ थीं और तुम मेरे रूप पर मोहित हो गईं थीं और तुमने यह धारणा की थी कि ऐसा पति हमें मिले ! और मेरे दर्शन के बाद जब कोई धारणा करता है तो मैं उसकी इच्छा पूरी अवश्य करता हूँ, इसलिए मैंने कृष्ण अवतार लिया है। मैंने तो तुम में से किसी को छुआ भी नहीं है। सखियाँ बोलीं वह तो ठीक है पर अब हम क्या करें? कृष्ण बोले 'जाओ ! वृन्दावन की गलियों में मेरे लिए रोया करो ! रास किया करो, मैं तो तुम्हारे पास ही रहूँगा।' अतः कभी सद्‌गुरु के व्यक्तिगत जीवन पर टीका-टिप्पणी न करें, वह समर्थवान है, वह क्या कर रहा है, आपकी समझ का विषय नहीं है।

कभी सद्‌गुरु के आगे भविष्य खड़ा न करें, क्योंकि **'राजा, अग्नि, योगी, जल, इनकी उल्टी रीत।'** ये किसी के नहीं होते। किसी राजा की आप सारी उम्र सेवा करते रहिये, किसी दिन किसी भी कारण से आपसे

चिढ़ गया तो कह देगा कि चढ़ा दो फाँसी पर इसको। इसी प्रकार योगी जो ईश्वर से जुड़ चुका है वह किसी अन्य से नहीं जुड़ सकता और जुड़ता है तो सबसे जुड़ता है, जुड़ा सा होता है। अग्नि के भी बहुत नजदीक न जायें, क्योंकि अग्नि जब अपना विकराल रूप धारण करती है तो बड़े-बडे अग्नि-शमन वाहन वहाँ पर भोंपू बजाते रह जाते हैं। सब कुछ भस्म हो जाता है। इसी प्रकार जल के बहुत निकट न जायें। जब जल अपना विकराल रूप धारण करता है तो बड़े-बडे जहाज़ों को गेंद की तरह उछाल कर फेंक देता है। योगी के आगे भविष्य खड़ा न करें। वर्तमान में जीते हैं महापुरुष। इसलिए वर्तमान में ही उसके साथ सब निपटा लें ! व्यवहार नहीं रखना उनके साथ भविष्य का। जिसने सद्‌गुरु के साथ भविष्य का व्यवहार रखा, वह गया। वह सत्य को नहीं पा सकता क्योंकि वर्तमान ही सत्य है।

जब सद्‌शिष्य की औपचारिकतायें पूरी हो जाती हैं तो सद्‌गुरु क्या करता है? सद्‌गुरु न किसी से बँधता है और न किसी को बाँधता है, क्योंकि यह लोग स्वतंत्र होते हैं। गुरु महाराज ने कहा है कि:–

''बाँधन की विधि सब कोई जाने, छूटन की न कोय।''

समुद्र होते हैं वे, न वे बँधते हैं, न वे बाँधते हैं। सद्‌गुरु आपके हित-चिंतन की बात करता है, लाभ की नहीं करता। लाभ और हित में अंतर है। अगर सद्‌गुरु कहे कि अपना घर फूँक कर आ जाओ, तो फूँक दो ! नौकरी छोड़ दो, तो छोड़ दो ! उसने आपका हित देखना है। एकलव्य एक सरदार भील का लड़का, जिसकी कहानी आपने सुनी होगी। वह गुरु द्रोणाचार्य के पास गया, धनुर्विद्या सीखने के लिए। गुरु द्रोणाचार्य मात्र राजगुरु थे और केवल राजाओं के लड़कों को धनुर्विद्या सिखाते थे, उन्होंने मना कर दिया कि हम तुमको अपना शिष्य नहीं बना सकते। एकलव्य ने धारणा की, कि मैं तुम्हें ही अपना गुरु बनाऊँगा। वह जंगल में आया। जहाँ वह रहता था, वहाँ उसने एक पीपल के पेड़ के नीचे गुरु द्रोणाचार्य की मिट्टी की मूर्ति बनाई। उस विग्रह की रोज़ पूजा करने लगा और उस विग्रह के सामने, उसकी प्रेरणा से वह धनुर्विद्या सीखने लगा। एक दिन गुरु

द्रोणाचार्य अपने शिष्यों भीम, अर्जुन, दुर्योधन आदि के साथ जंगल में विहार करने के लिए आये। उसको सूचना मिली कि गुरु द्रोणाचार्य अपने शिष्यों के साथ जंगल में आये हैं। वहाँ कुत्तों ने भौंकना शुरू किया। एकलव्य को बहुत बुरा लगा। उसने तीर इस प्रकार मारे कि कुत्तों का मुँह खुला रह गया, भौंकना बंद कर दिया उन्होंने। गुरु द्रोणाचार्य ने जब यह दृश्य देखा तो अचम्भित हो गये कि ऐसा कौन बड़ा धनुर्धर है जिसने कुत्तों का तीर से भौंकना बंद करवा दिया। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा, ढूँढो ! यह कौन है ? ढूँढा, तो एकलव्य मिला। उसने प्रणाम किया, 'गुरुदेव प्रणाम !' हमको गुरुदेव मत कहो ! 'बोले, क्यों महाराज ?' कि 'हमने तुम्हें शिष्य नहीं बनाया है।' 'नहीं महाराज ! आप ही मेरे गुरु हैं।' बोले, 'इसका प्रमाण दीजिये !' तो वो पीपल के पेड़ के नीचे ले गया जहाँ पर गुरु महाराज की उसने प्रतिमा बनाई थी मिट्टी की, धूप-बत्ती की हुई थी, नैवेद्य रखा हुआ था, 'मैं आप ही की पूजा करता हूँ। आप ही की प्रेरणा से धनुर्विद्या सीखी है मैंने।' द्रोणाचार्य मान गये, बोले–'गुरु-दक्षिणा दीजिये !' 'महाराज माँगिये ! बोले–'अपने दाँये हाथ का अँगूठा काट कर दे दो !' तो गुरु की आज्ञा से उसने कटार निकाली और अपना अँगूठा काट कर गुरु के चरणों में रख दिया। बहुत लोग इसकी आलोचना करते हैं कि गुरु ने ऐसा क्यों किया ? दायें हाथ का जब अँगूठा ले लिया तो वो धनुष चला ही नहीं सकता था। लेकिन सत्य क्या था ? सद्‌गुरु उसका हित चाहता था। आज एकलव्य को सारी दुनिया जानती है। अर्जुन, भीम का नाम जहाँ लिया जाता है, वहाँ एकलव्य को भी लोग याद करते हैं। गुरु ने उसका हित देखा लाभ नहीं। अतः जिसको सद्‌गुरु मानिये उसकी आज्ञा को शिरोधार्य करिये। गुरु आपके हित की बात करेगा। लाभ एक भौतिक चीज़ है और हित आध्यात्मिक।

गुरु सद्‌शिष्य के आत्म-ज्ञान को, जो आच्छादित सा हो गया है जन्म-जन्मांतरों से, उसको प्रकट कर देता है। जन्म-जन्मांतरों से मल-विक्षेप से, बुद्धि के अहम् की मलिनता से जो उसका आत्म-स्वरूप आच्छादित हो गया है, ढक गया है, उसको अनावृत कर देता है। उसका

पर्दा हटा देता है और उसके अंदर से वह देदीप्यमान प्रकाश उत्पन्न हो जाता है। उसको आत्मानुभूति करवा देता है। गुरु के शब्दों में, उसके स्पर्श में, उसकी दृष्टि में वो शक्ति होती है। आत्मज्ञान कोई कहने, सुनने या बुद्धि से पकड़ने का विषय नहीं है। किसी ने गुड़ खाया कि 'गुड़ कैसा है?' 'मीठा है।' लेकिन 'मीठा कैसा है?' कि 'गुड़ खाकर देख लो मीठा कैसा है।' **आत्म-ज्ञान अनुभूति का विषय है।** गुरु अपने सद्शिष्य को यह अनुभूति करवा देता है कि ईश्वर में और तुम्हारे में कोई भिन्नता नहीं है। एक पागल ने एक पेड़ को पकड़ लिया और चिल्लाने लगा कि 'मुझे पेड़ ने पकड़ लिया, मुझे पेड़ से छुड़ाओ, मैं बँध गया हूँ पेड़ से।' हम भी संसार रूपी पेड़ से बँधे हैं। सद्गुरु चिमटा मारकर छुड़ा देता है, कि तुम बँधे से हो। **गुरु किसी को रास्ता नहीं बताता, वह उसको मंज़िल बताता है क्योंकि वहाँ पर जाने का रास्ता कोई नहीं है। मात्र मंजिल ही मंजिल है।**

संसार में जितने भी हमारे भौतिक सम्बन्ध हैं उनके साथ जब तक हमारा मानसिक तारतम्य नहीं होता, तब तक हम सांसारिक व्यवहार नहीं कर सकते। इसे कहा है—भौतिक-मानसिक तारतम्य। यह तारतम्य हमें संसार में फँसाता है परन्तु अपने इष्ट व सद्गुरु के साथ भी हमारा एक तारतम्य होता है जिसे कहा है—''भौतिक-आध्यात्मिक'' तारतम्य। यह तारतम्य हमें संसार की उलझन से बाहर निकालता है। अतः सद्गुरु से आध्यात्मिक तारतम्य स्थापित कर यदि हम श्रद्धा एवं विश्वास द्वारा उसके श्रीचरणों में नतमस्तक होकर पड़े रहें तो कभी न कभी सद्गुरु की कृपा से आत्मानुभूति द्वारा आत्मज्ञान का मार्ग अवश्य खुल जाता है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(8 जुलाई, 2001)

ईश्वरीय जाप

आज इष्ट-कृपा एवं प्रेरणा से आपके सम्मुख वह विषय रख रहा हूँ जो अति दुर्लभ है। आज के युग में अत्यधिक तनाव, भय, कष्ट व रोग-दोष से लगभग सभी बुद्धिजीवी त्रसित हैं। बहुत तथाकथित व्यस्त जीवन है। तो ऐसे में साधना बहुत कठिन है। हमारे भारत के मनीषियों ने बहुत पहले से एक विशेष आध्यात्मिक नुस्खा हमें दिया था, जिसका नाम था–**'जाप'।** ईश्वर के नाम को जपना, उसका सिमरन करना। नाम-जाप विभिन्न आयाम हैं, यह बड़ा रहस्यमय विषय है जिसके कुछ रहस्य आपके सम्मुख मैं आज आपकी और इष्ट की प्रेरणा से खोलूँगा। विषय गम्भीर है, आपकी परम एकाग्रता चाहूँगा। यह जाप क्या है? ईश्वर के नाम का जाप किस प्रकार एक व्यक्ति के जीवन को पूर्णतया ऐश्वर्यवान एवं गुणात्मक बना देता है? उसके भीतरी और बाह्य जगत को यह जाप किस तरह अति सौन्दर्यवान एवं विलक्षण बना देता है, क्या रहस्य है इसका?

'मानव-देह' ईश्वर की परमोत्कृष्ट कृति है। उस परम पिता परमात्मा ने जो स्वयं में निराकार है और पंच-महाभूत पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश जिसके सीधे प्रतिनिधि हैं, उस महाशक्ति ने किस प्रकार लगभग नौ महीने में माँ के गर्भ में एक **'मानव-देह'** की संरचना की है, जो कि पूर्णतया स्वचलित एवं पूर्णतया वातानुकूलित है, यह अपने में महाचमत्कार है। वह सच्चिदानंद खेलने के लिए इस पृथ्वी पर मानव बन कर उतरा है। वह मानव जो ईश्वर का साकार में सीधा प्रतिनिधि है, आज वही मानव दुःखी है, भयभीत है, त्रसित है, रुग्ण है। यह भी अपने में एक चमत्कार है। बहुत आयामों से इन दुःखों, कष्टों का मैं वर्णन कर चुका हूँ। आज इसका

पूर्णतया आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण करेंगे, जिसमें आपकी परम एकाग्रता वाछंनीय है। ईश्वर का प्रतिनिधि कहाँ फँस गया, क्यों दुखित हुआ, भयभीत क्यों रहने लगा, रुग्ण क्यों हुआ, मृत्यु क्यों हुई इसकी? जो अजर-अमर का सीधा प्रतिनिधि है, उसकी स्वयं की जन्म और मृत्यु क्यों होती है? जो आनन्द में उत्पन्न हुआ, वह सदा दुखी क्यों रहता है?

जब बच्चा उत्पन्न होता है तो सर्वप्रथम वो रोता है और अक्सर मानव मरते दम तक रोता रहता है। ये चाहिये था! वह नहीं मिला! यह नहीं हुआ! रोता-रोता ही आता है और रोता-रोता ही जाता है और बीच में भी रोता ही रहता है। कभी कोई कष्ट, कभी कोई कामना, कभी कोई इच्छा। तो आज के बुद्धिजीवियों ने मानव-जीवन की परिभाषा दी हैA cry between two cries,' लेकिन यह परिभाषा मिथ्या है, ऐसा नहीं है। कहाँ फँसे हम? जैसे ही मानव-शिशु पृथ्वी पर उतरता है उसको केवल पहचान एवं सम्पर्क के लिए एक नाम दे दिया जाता है लेकिन उससे अनर्थ हो गया। जैसे बुद्धि का विकास हुआ उस नाम और उस रूप में अपनी बुद्धि के अहम् से वह इतना उलझ गया कि उस नाम और रूप को इसने अपना स्वरूप समझ लिया। किसी से पूछिये, कि आप अमुक दिन पैदा क्यों हुए, दो-चार दिन आगे-पीछे नहीं हो सकते थे? उत्तर देगा, कि पता नहीं! अमुक-अमुक माता-पिता आपके क्यों हुए? पता नहीं! अमुक स्थान पर पैदा क्यों हुए, किसी और अच्छे स्थान पर पैदा क्यों नहीं हुए, पता नहीं! अमुक-अमुक शिक्षा आपकी क्यों हुई, आपके भाई-बन्धुओं की क्यों नहीं हुई, पता नहीं! अमुक स्त्री से, अमुक पुरुष से आपका विवाह क्यों हुआ? पता नहीं! आपकी संतान अलग-अलग प्रतिभाओं से युक्त, अलग-अलग समय पर, अलग-अलग बुद्धि की क्षमताओं से युक्त, शारीरिक क्षमताओं से युक्त क्यों हुई? पता नहीं! आपकी आर्थिक स्थिति दूसरे से भिन्न क्यों है? पता नहीं! आप मरेंगे कब, कैसे मरेंगे आप? पता नहीं! अरे! आपको क्या पता है फिर?

जिस देह की एक साँस का आपको पता नहीं है, उस देह पर आपने अधिकार क्यों किया, कि यह मेरी देह है। भागने लगे हम प्राप्तियों की ओर,

डिग्रियों के लिए, धन के लिए, संतान के लिए, पद के लिए और न जाने काहे-काहे के लिए, भागते रहे, उस देह के लिए जो हमारी थी ही नहीं। भला ईश्वर दण्ड क्यों न देता? उसने बार-बार सुधरने का मौका दिया लेकिन अंत में उसने फैसला सुना दिया। क्या फैसला सुनाया, कि इसके देह के सारे हक छीन लीजिये, इसकी बुद्धि लोगों के लिए हों, इसकी प्रतिभाएँ लोगों के लिए हो, इसकी शारीरिक शक्ति किसी और के लिए हो, इसका धन किसी और के लिए हो, इसकी समस्त प्राप्तियाँ किसी और के लिए हों, ये अपनी प्राप्तियों का भोग न कर सके। जो लोग अपनी देह पर अधिकार कर लेते हैं तो मान लीजिये वे जितने भी बुद्धिजीवी होंगे, जितनी भी बड़ी डिग्रियाँ लीं होंगी, वे प्रतिभाएं किसी और के लिए होंगी। धन कमायेंगे वे, बहुत धन कमायेंगे और कई प्रकार से कमायेंगे, लेकिन वह धन किसी और के लिए होगा। जगह-जगह जमीन ले लेंगे लेकिन वह किसी और के लिए होगी और वे स्वयं सारी उम्र मुकदमा भुगतेंगे, कोर्ट के चक्कर खायेंगे। उनकी संतान किसी और के लिए, उनके रिश्तेदार, सगे-सम्बन्धी किसी और के लिए होंगे। यह दिव्य अधिनियम इस भारत-धरा पर ही विकसित हुए हैं, हमें इस पर गर्व होना चाहिए कि हम इस भारत-भूमि पर पैदा हुए हैं जो ऋषियों-मनीषियों की भूमि है, जो भगवान के अवतरण की भूमि है।

अभी तक स्पष्ट हो गया कि समस्त कष्टों का कारण था **'देहाध्यास एवं देहाधिपत्य'।** अपने नाम-रूप को ही हमने अपना स्वरूप मान लिया। **बस वहीं से यह नाम-रूप की उपाधि हमारे लिये व्याधि बन गई। इसी नाम-रूप की व्याधि से उबरने के लिये हमारे महापुरुषों ने प्रभु के 'नाम-जाप' का उपचार बताया।** आप कभी अति विचारपूर्वक बैठकर सुबह के समय चिंतन करें तो आपको यह रहस्य पल्ले पड़ जायेगा कि जब भी हम कोई कर्म करते हैं, उससे पहले एक भाव उठता है। भाव को बुद्धि विचार में परिणत कर देती है और वो विचार फिर शब्दों में परिवर्तित होता है। जब भी हमने अपनी कोई बात कहनी होती है तो उसमें हम शब्दों का इस्तेमाल करते हैं चाहे वो लिखित शब्दों में हो, चाहे वो बोलने वाली भाषा हो और चाहे

वो इशारों से हो ! जब हम किसी बच्चे को कोई संदेश देकर भेजते हैं किसी के पास, तो उसको बार-बार रटाते हैं कि यह बोलना, यह मत बोल देना, क्योंकि एक शब्द भी इधर-उधर हो जाये तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है। उन शब्दों पर योजनायें बनती हैं कि मैं इतना धन इतने साल में कमा लूँगा, इतनी हेरा-फेरी करूँ या यूँ करूँ तो मैं यह पद पा लूँगा, चुनाव जीत सकता हूँ। योजनायें बनती हैं और उन पर हम तथाकथित कार्य करते हैं और हम वस्तुओं की प्राप्ति की तरफ बढ़ते हैं। परन्तु **ईश्वरीय मन में जब कोई भाव उठता है तो वो सामने प्रकट हो जाता है साकार रूप में और उसमें हम जो समय की गणना करते हैं वो समय भी हमारी मानसिक कल्पना है।** ईश्वरीय काल कितना लगा इसकी हम गणना नहीं कर सकते। एक प्रवचन में मैंने बताया था कि चार युग हैं **सतयुग, त्रेता, द्वापर व कलिकाल।** **सतयुग** लगभग सत्रह लाख वर्ष का और **त्रेता** लगभग तेरह लाख वर्ष का है, **द्वापर** नौ लाख चालीस हजार वर्ष का है और **कलिकाल** सबसे छोटा है चार लाख बत्तीस हजार वर्ष का महायुग तैतालिस लाख बीस हजार वर्ष का है और ऐसे दस महायुग मिला कर बनता है एक कल्प और **एक कल्प** के बाद होती है प्रलय। जो उतनी ही बड़ी होती है, और यह सब मिलाकर बनता है—**ब्रह्मा का एक दिन।**

जब जाप चलता है तो जाप अलग-अलग स्तर पर काम करता है। सबसे नीचे के स्तर का **पहला जाप ज़ोर-ज़ोर से बोलकर होता है।** दूसरे स्तर का जाप **बिना आवाज़ किये मात्र होंठ हिलाकर होता है। तीसरे** स्तर का जाप **मुँह बन्द करके और जीभ हिलाकर** होता है और **चौथे** स्तर में **कंठ से** जाप चलता है। ये **चारों जाप शब्दों पर काम** करते हैं, जाप द्वारा **शब्दों को कार्यान्वित होने से रोका** जाता है। **लेकिन भाव बनते हैं, विचार बनते हैं, विचारों के शब्द बनते हैं। पाँचवे** स्तर का जब **भृकुटि में जाप** चलता है तो **शब्द नहीं बनते हैं** लेकिन भाव उठते हैं, विचार बनते हैं, **छटे** स्तर का **जाप ब्रह्मरन्ध्र में चलता है,** उसमें विचार नहीं बनते। बड़ा आनन्दमय जाप होता है। कभी प्रभु-कृपा से बह्मरन्ध्र में जाप चलने लगे तो उसमें भाव बनते

हैं लेकिन **विचार नहीं बनते** और **सातवें** स्तर का जो **जाप** है वह विशेष प्रभु-कृपा से कभी-कभी हो जाता है और वो है **जाप-समाधि। वह देह से बाहर चलता है,** इसे अजपा-जाप भी कहते हैं। **जाप समाधि में मानसिक भाव ही नहीं बनते। तो सारा क्लेश कहाँ से शुरू हुआ? हमारे भावों से, ईश्वरीय भावों से नहीं।** ईश्वर का जब भाव होता है तो वह सामने प्रकट हो जाता है। जब ईश्वरीय भाव बनकर कोई चीज़ सामने प्रकट होती है तो वह तीन आनन्दों से युक्त होती है। कोई कार्य जो ईश्वर द्वारा सम्पन्न होता है, ईश्वर-कृपा से होता है तो उसका प्रमाण मैं पहले बता चुका हूँ कि उसमें तीन आनन्द होते हैं, कार्य प्रारम्भ होने से पहले आनन्द, कार्य के मध्य में आनन्द और कार्य की समाप्ति पर आनन्द। जो कार्य ईश्वर द्वारा प्रतिपादित और सम्पादित होता है, ईश्वरीय भाव के अनुसार पदार्थ स्वतः प्रकट हो जाते हैं। हम कोई चीज़ बनाना चाहते हैं सालों से कार्य कर रहे हैं, सोच रहे हैं और ईश्वर-कृपा से देखा कि हमारे लिए कोई बनी बनाई ले आया, कि अरे बाबा ! मैं तो कई साल से सोच रहा था कि ऐसी चीज़ चाहिए थी और आप तो बनी बनाई ले आये। तो ईश्वरीय माया इस प्रकार कार्य करती है। ईश्वरीय कार्य जितने भी हैं उनके लिए आपको योजनायें नहीं बनानी पड़ेंगी और वो कार्य स्वतः भाव से होगा। जो कार्य आपने अपने भाव से किया उसमें तीन आनन्दों में से एक आनन्द अवश्य खो जायेगा, तनाव हो जायेगा और वो स्वतः भाव से नहीं होगा, आपको बहुत क्लेशों से गुज़रना पड़ेगा। कई जगह टेलिफोन करने पड़ेंगे, धन का इंतज़ाम करना पड़ेगा और न जाने क्या-क्या प्रबन्ध करने पड़ेंगे और आप तनावित हो जायेंगे और अन्ततः वही होगा जो ईश्वरेच्छा होगी।

एक बहुत बड़ा रहस्य खोल रहा हूँ कि हम अपनी बुद्धि की तथाकथित शक्ति से और अहम् से जो कुछ संसार में प्राप्त करते हैं वह हमको उस वक्त प्राप्त होना ही था और हम व्यर्थ में ही तनावित होते हैं। अगर हम ईश्वर पर छोड़ देते और हर कार्य को ईश्वरमय कर देते, न भी हम कुछ करते वह हमको प्राप्त होना ही था। लोग कहते हैं इसका मतलब क्या है? हम हाथ

पर हाथ धर कर बैठ जायें। मैंने कहा कि बैठकर दिखाओ ! निठल्ले होना सबसे कठिन काम है। अरे ! माँ के गर्भ में नौ महीने आपने क्या किया ? और आपको उत्कृष्टतम देह मिल गई। परम उत्कृष्टतम मानव-देह जिसका हम वैज्ञानिक एक बाल भी नहीं बना सकते, जिसका हम एक नाखून नहीं बना सकते, वो आपको चुपचाप दी गई और आपकी जानकारी में ही नहीं थी। जब आपने होश संभाला तब अपने पास अपनी देह को पाया, अपने माँ-बाप को पाया, अपने घर-बार को पाया। क्या किया आपने माँ-बाप बनाने के लिए ? शमशान में कितने आनन्द में मुर्दा लेटा होता है। कोई लकड़ी इकट्ठी कर रहा होता है, कोई पंडितों को बुला रहा होता है, कोई कफन लाता है, मुर्दा कितने आराम से लेटा होता है, सब व्यस्त होते हैं। कई बार कह चुका हूँ, अगर आनन्द लेना चाहते हो बुद्धिजीवियो तो या **शिव बन जाओ या शव बन जाओ।** हम तो बीच में लटकते रहते हैं। शिव समर्थवान है, निर्लिप्त है और शव महा असमर्थ है, निर्बल है, बल-बुद्धि विद्याहीन है, अशक्त है इसलिए वो पूजनीय है। अब भूल कहाँ पर हुई ? बड़े विस्तार से लूँगा मैं इस विषय को क्योंकि यह भारत-भूमि की उपज है। ईश्वर-कृपा से जिसके यह पल्ले पड़ जाये वो आगे इसको फैलाये क्योंकि यह हमारी धरोहर है। अरे ! हम जितने विकसित हैं कोई करोड़ों वर्षों तक नहीं हो सकता और न होने की सोच ही सकता है। पता नहीं ! कहाँ से मिथ्या धारणा बन गई कि हम अविकसित हैं।

जब मानव अपने विचारों पर अपनी मोहर लगाता है कि मैं यह हूँ, मैं बहुत बुद्धिमान हूँ, मैंने यह बनाया है, मैं यह बना दूँगा, मैं इतना धन इकट्ठा कर लूँगा, अपनी योजनायें परिपूरित कर लूँगा, तो वो तनावित हो जाता है। यह तनाव क्या है ? जब हम एक रस्सी के दो किनारों पर विपरीत दिशाओं में शक्ति लगाते हैं तो उसमें तनाव आ जाता है। जीवन की डोर को एक तरफ से हाथी खींच रहा है और दूसरी तरफ से चूहा खींच रहा है, तो डोर किधर खिंचेगी ? जिधर हाथी खींचेगा और चूहा अगर नहीं चाहेगा उस तरफ खिंचना तो चूहा अपने घुटने तुड़वा लेगा और वो घिसटेगा, उसको

कहा है तनाव। तवान क्यों होता है? हम अपने हिसाब से जीवन को चलाना चाहते हैं, जो हमारा नहीं है। जो कैसेट भरा हुआ आया है वो वैसा ही चलेगा जैसे उसको बनाने वाला चलायेगा। सर्वाधिकार उस सर्वशक्तिमान के पास है। भौतिक सम्बन्धों में भी हम भ्रमित हैं, यह नई बात बता रहा हूँ। जिसको आप अपना बेटा समझ रहे हैं, वो पूर्व-जन्म में आपका क्या है? उस पर विचार करना। हमें तो यह नहीं मालूम कि कौन हमारा क्या लगता है? आज नग्न रहस्य रख रहा हूँ, घर में जाकर विचार अवश्य करना। तो जब मानव उन प्राप्तियों पर अपना अधिकार जमाता है जो प्राप्तियाँ होनी ही थीं यह सब था **प्रारब्धवश ! भाग्य-वश ! भाग्य का निर्माण हमने कहाँ से किया? अपने अहम् से, कि मैं कर्म करता हूँ, यह मेरा शरीर है। जब हम तथाकथित कर्म करते हैं तो हम फँस जाते हैं और हमारा प्रारब्ध बन जाता है।**

अगर हम नाम जपें तो किसका जपें, सिमरन करें तो किसका करें? क्योंकि जाप और सिमरन में अंतर है। जाप करें—ईश्वर के उस नाम और रूप का जो आपको भाता है, उसको कहा है **इष्ट।** इष्ट क्या है? हमारे मनीषियों ने बहुत खुली पसन्द रखी, कि ईश्वर को मान लीजिये। ईश्वर को मानना बहुत ज़रूरी नहीं है, क्योंकि जानवर ईश्वर को मानते ही नहीं है। उनका भी काम चलता है। वो भी पैदा होते हैं, खाते हैं, पीते हैं, मरते हैं, उनको भी सब कुछ उपलब्ध होता है। तो आप मानव हैं, ईश्वर को मान लीजिए और ईश्वर को अपनी पसंद के किसी नाम-रूप में मान लीजिये। **अगर चलिये तो मान कर चलिये, चल कर नहीं माना जा सकता।** लोग चलके मानना चाहते हैं। क्योंकि हमें अभ्यास है, नाम और रूप में मानने का। यह कौन हैं? यह मेरे पति हैं। यह कौन हैं? यह मेरे देवर हैं। क्यों देवर हैं? क्योंकि मेरे पति के छोटे भाई हैं। यह कौन हैं? यह मेरे जेठ हैं क्योंकि मेरे पति के बड़े भाई है। हम तुरन्त मान लेते हैं। सात फेरे होते ही अनजान स्त्री को अपनी पत्नी मान लिया। मानने की एक विशेष क्षमता है हमारे अंदर, विशेष प्रतिभा है। तो क्यों न उस प्रतिभा को हम ईश्वर के मानने

में इस्तेमाल करें? **ईश्वर को मानिये और ईश्वर को नाम और रूप में मानिये। क्योंकि हम नाम और रूप में फँसे हैं।** हमको नाम और रूप से ही निकलना है। **तो जाप किसका करना है? अपने इष्ट का।**

अन्त में ईश्वर के साथ एक सम्बन्ध पैदा करिये। नाम और रूप में मानना ही काफी नहीं है। जब तक हम किसी व्यक्ति से सम्बन्धित न हों तब तक हम उससे व्यवहार नहीं रखते। हम किसी व्यक्ति के साथ उठते-बैठते हैं क्योंकि हमारा उसके साथ रिश्ता होता है। इसलिए एक रिश्ता ईश्वर के साथ भी पैदा कर लीजिये। मीरा ने उसको अपना पति मान लिया था, कोई भाई मान लेता है, कोई स्वामी मान लेता है, कोई पिता मान लेता है, कोई माँ मान लेता है और मानने की हमारे में बड़ी विलक्षण प्रतिभा है। तो ईश्वर को भी किसी नाम-रूप और सम्बन्ध में मान लीजिये। उसके साथ उठिये, बैठिये, धूप-बत्ती करिये, प्रसाद चढ़ाइये, उसको जपिये और जाप के साथ सिमरन करिये। **जाप अलग है, सिमरन अलग है।** जब किसी की सूरत याद आये उसको जपते-जपते, वो बहुत याद आये और आँखों में अश्रु बहने लगें, उसको कहा है **'सिमरन'**। लोग हमसे पूछते हैं कि डॉ. साहब जाप करने के लिए कौन सी माला अच्छी रहेगी, स्फटिक की माला अच्छी रहेगी, मोती की माला अच्छी रहेगी, रुद्राक्ष की माला कैसी रहेगी, तुलसी की माला भी लोग कहते हैं अच्छी होती है, क्या चंदन की माला अच्छी होती है, तो कौन सी माला अच्छी रहेगी? तो हम कहते हैं कि **'अश्रुओं की माला'**। जब जाप के साथ आपको अपना इष्ट याद आयेगा तो आपकी आँखों से अश्रु बहेंगे। उसके एक-एक नाम के साथ अश्रुओं की माला बनेगी। मैं उदाहरण दे चुका हूँ भरत जी का। भरत जी ने चौदह वर्ष तक भगवान राम का अश्रुओं की माला से सिमरन किया। यह तो प्रभु के नाम का जाप है। हमारे यहाँ तो मानवों का जाप करने वाले भी हुए हैं।

एक बार मजनूं लैला का सिमरन कर रहा था और भाग रहा था रेगिस्तान में। एक मुल्ला बैठा था वहाँ चादर बिछा कर, नमाज़ पढ़ रहा था। सिमरन का महात्म्य बता रहा हूँ। तो भागते-भागते चादर पर उसका पाँव आ

गया और वह चादर को पार कर गया। मुल्ला ने उसे कहा, 'ऐ बेवकूफ ! तुम्हें नज़र नहीं आ रहा कि हम नमाज़ अदा कर रहे हैं। 'तो मजनूं को होश आया कि बात तो ठीक है और उसने माफी माँगी, कि 'मियाँ माफ करिये, मुझसे गुस्ताख़ी हो गई। मैं पागल हो गया हूँ एक लड़की के इश्क में। मुझे आप नज़र नहीं आये, मैं माफी माँगता हूँ।' इसने कहा, ''जाओ ! आगे से ध्यान रखना।'' मजनूं जाने लगा तो उसने कहा, ''मियाँ ! मैं तो मूर्खता कर बैठा हूँ। मेरे एक सवाल का जबाब दो !

अरे ! मुझे एक लड़की के इश्क ने पागल कर दिया है, मुझे तुम नज़र नहीं आये, तुम्हारी चादर नज़र नहीं आयी। अरे ! तुम तो खुदा के इश्क में बैठे हो ! तुम्हें मैं नज़र कैसे आ गया ?' तो जब आपका नाम के साथ सिमरन चलता है, आप पागल हो जाते हैं।

निम्न स्तर का जो जाप मैंने बताया था जोर-जोर से मुँह से बोलने का, अगर उसके साथ सिमरन भी चले तो वह सर्वोत्कृष्ट जाप हो जाता है और यह आपको मोक्ष दिला देता है। आपको अपने प्यारे से मिला देता है, कभी न कभी। इतनी शक्ति है नाम और सिमरन में। ईश्वर जब बहुत प्रसन्न होते हैं सिमरन और जाप से, तो आपको एक वरदान देते हैं, उस वरदान का नाम है– **अजपा जाप।** आपका जाप दिन-रात, सोते-जागते अपने आप चलने लगता है, यह सबसे बड़ा लाभ है गृहस्थ में बैठे-बैठे। जो बड़े-बड़े ऋषि, मुनि, तपस्वी, जंगलों में हज़ारों वर्षों तक प्राप्त नहीं कर सकते, आपको अपने घर में बैठे-बैठे प्राप्त हो जायेगा, जिसका नाम है **अजपा जाप। बशर्ते** आपने अपने इष्ट को नाम और रूप में मानकर उससे सम्बन्ध बनाया है और उस सम्बन्ध को ईश्वर ने भी मान लिया हो:–

''सबकी साकी पे नज़र हो यह ज़रूरी है मगर
सब पर साकी की नज़र हो यह ज़रूरी तो नहीं !''

किसी-किसी का सम्बन्ध मान लिया जाता है, नहीं तो लोग जन्म-जन्मांतरों तक जपते रहते हैं। तो जाप अश्रुओं की माला का हो और जाप के साथ सिमरन हो। लोग विभिन्न प्रकार के प्रश्न पूछते हैं, कि'डॉ.

साहब जाप कौन से हाथ से करें ?' मैंने कहा, 'जो हाथ अच्छी तरह से काम करता हो, उससे कर लो !' लोग कहते हैं, 'दायें हाथ से ही करें,' मैंने कहा, 'जोड़ों में सूजन हो जाये तो क्या करेंगे ? जब जो सुविधा हो उससे कर लीजिये।'

जाप **किस स्थान** पर करें, **किस समय** करें, मैंने कहा, 'आपको मरना कब है, किस स्थान पर और किस समय ? **अरे ! जिस स्थान पर जाप शुरू हो जाये वहीं कर लीजिये !** खुला जाप करिये। आप गृहस्थी हैं कभी कोई मिलने वाला आ जाता है, कभी कोई टेलिफोन आ जाता है, जाप ईश्वर की कृपा से, आपके इष्ट की कृपा से ही चलता है, उससे यह प्रार्थना करनी है, कि हे प्रभु ! मुझे यह वरदान दो कि मेरा **प्रकट अथवा अप्रकट** रूप से अविरल जाप चले ! अप्रकट रूप से क्यों ? क्योंकि कुछ स्थितियाँ ऐसी होती हैं घर-गृहस्थी में, जब आप प्रकट रूप से जाप पसन्द नहीं करेंगे। तो हे ईश्वर ! उस वक्त मेरा जाप अप्रकट रूप से चले। जाप अपने करने से कभी नहीं होगा क्योंकि ईश्वर का नाम है। ईश्वर की इच्छा से ही होगा।

अब आगे प्रश्न उठता है कि **जाप-मंत्र क्या है ? मंत्र वह शब्दावली है, शब्दों का समूह है जो आपके मन पर असर करे ! मंत्र बहुत सशक्त होता है।** मंत्र सीधा आपके मन पर असर करता है। जाप अपने इष्ट का आप स्वयं कर सकते हैं। लेकिन जाप-मंत्र किसी गुरु से ही लेना चाहिये। क्योंकि गुरु जब जाप-मंत्र देता है तो पाँच-छः चीजें देखता है कि इस व्यक्ति की परिस्थितियां क्या हैं, इसकी उम्र कितनी है ? तो जाप-मंत्र देने से पहले व्यक्ति की शारीरिक स्थिति, उसकी पारिवारिक स्थिति, आर्थिक स्थिति और उसके मन के भाव को देखना पड़ता है। सबको एक ही मंत्र नहीं दिया जाता और वो मंत्र उसके मन पर कैसे प्रभाव करेगा, उसके मन की स्थिति क्या है, कितना अहम् से युक्त है, कितनी श्रद्धा है ? तो सद्‌गुरु को मंत्र देने से पहले कई बातें देखनी पड़ती हैं और एक बात विशेष बता देता हूँ कि जाप-मंत्र का अर्थ केवल उसका शब्दार्थ नहीं होगा। उदाहरण के लिए आप किसी भी संस्कृत के विद्वान से गायत्री का अर्थ समझ लीजिये लेकिन वो ही

गायत्री का अर्थ नहीं है। यह मैं खासकर बता रहा हूँ, क्योंकि यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। जब आप बड़े प्रेम से, सद्‌गुरु में श्रद्धा रखते हुए अपने इष्ट के मंत्र का जाप करेंगे तो मंत्र में जो निहित शक्ति है वह स्वयं प्रकट होगी। जिस दिन आपके इष्ट की शक्तियाँ प्रकट होंगी, आपके भाव के अनुसार वे उस मंत्र के अर्थ की आपको अनुभूति करवा देंगी। उसको कहा है **मंत्र-दृष्टा।** हमारे देश में मंत्र-दृष्टा मुनि हुए हैं जिन्होंने मंत्रों का दिग्दर्शन किया है। वे शक्तियाँ स्वरूप धारण करके कभी न कभी आपको उन मंत्रों का अर्थ समझाती नहीं है क्योंकि समझना विषय है बुद्धि का। वो आपको उन मंत्रों के अर्थ से अवगत करवा देती हैं। आपको उनकी अनुभूति करवा देती हैं। उसको कहा है **'मंत्र-दृष्टा'। तो मंत्र-जाप और नाम-जाप** और उसके साथ **सुमिरन से** आप संसार के आनन्द लेते हुए अन्ततः मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं।

इसके बाद आता है **'तंत्र'**। तन्त्र क्या है? तन्त्र के बारे में बड़ी भ्रान्ति है लोगों को कि वह तांत्रिक है। जितनी शक्ति की उपासना है वह सब तंत्र है। तंत्र-जाप नहीं होता। तंत्र-साधना होती है। जितनी भी शक्ति काली या भवानी की उपासना है, वह सारी तंत्र-उपासना है। तंत्र आपकी तंत्रिकाओं पर असर करता है। आपने अपने इष्ट का जाप किया और उसके साथ सान्निध्य हो गया। बात समाप्त! तंत्र-साधना किसी विशेष गुरु के सान्निध्य में ही करनी चाहिये। अक्सर तंत्र-साधना अपनी सांसारिक उपलब्धियों के लिए की जाती है। क्योंकि जब शक्ति प्रसन्न होती है तो शिव वरदान देते हैं। परन्तु शक्ति को प्रसन्न करने के लिए आपको बड़ा सावधान रहना पड़ता है।

यंत्र, तन्त्र का चित्रण है। विभिन्न देवी-देवताओं के यंत्र होते हैं और उनकी पूजा होती है। अतः तंत्र-साधना है और यन्त्र की पूजा होती है। नाम-जाप के अनगिनत लाभ हैं। **अपना दिव्य आपा प्रकट करने के लिये जाप, नशे छुड़ाने में जाप, ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिए जाप, असीम की संतुष्टि के लिए जाप, सकारात्मक सोच** के लिए जाप, रोगों और दोषों से मुक्ति

पाने के लिए जाप और समस्त बाह्य मंडल की शान्ति के लिये जाप, जीवन का प्रयोजन जानने के लिए जाप और अपने भोग के अधिकारों को अधिक से अधिक बढ़ाने के लिए जाप, क्या-क्या कहें, क्या शक्ति है जाप में, जाप कार्य कैसे करता है? आजके समस्त बुद्धिजीवियों को यह ज्ञात होना अति आवश्यक है।

नाम-जाप से हमारा दिव्य आपा प्रकट होता है। यह दिव्य आपा क्या है? मैं बहुत पहले इसके बारे में बोल चुका हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति, मात्र एक व्यक्ति नहीं होता। एक व्यक्ति कई व्यक्तित्वों का एक समूह होता है, पुंज होता है। विभिन्न परिस्थितियों में, देश-काल में, अपने परिवार में, अपने आफिस में, अपने दुश्मनों के साथ और विभिन्न आवेशों में कामावेश, क्रोधावेश, लोभावेश और मोह के आवेश में मानव की अक्ल, शक्ल और व्यवहार बदल जाता है। आप मेरे से सहमत होंगे। जब उसी व्यक्ति को हम दूसरे स्वरूप में देखते हैं तो हम हैरान हो जाते हैं कि क्या यह वही व्यक्ति है? इसको कहा है व्यक्तित्व। किसी श्रेष्ठतम मानव में अधिकतम सात व्यक्तित्व होते हैं जिनमें सात से दस तक व्यक्तित्व होते हैं वे या तो देवता होते हैं या बड़े राक्षस होते हैं। जैसे रावण में दस व्यक्तित्व थे। **'दशानन'** बड़ा प्रबल राक्षस था। दस व्यक्तित्व से ज्यादा जिनमें होते हैं, वे ईश्वर के अंशावतार होते हैं। भगवान श्रीराम में चौदह व्यक्तित्व थे। भगवान श्रीकृष्ण में सोलह, वे सोलह कला अवतार थे। माँ भगवती, भवानी में एक सौ आठ व्यक्तित्व हैं, भगवान शंकर देवाधिदेव महादेव में एक हज़ार आठ।

प्रभु ने, समस्त जीवों को एक अपना व्यक्तित्व दिया है जिसको कहा है दिव्य व्यक्तित्व। यह वह मनोभूमि है जो ईश्वर ने प्रत्येक मानव को, भले ही वह राक्षस हो, डकैत हो, स्मगलर हो, वेश्या हो, कोई भी हो सबको दी है, जिसको कहा है—**दिव्य-व्यक्तित्व।** जब हम अपने बेटे या बेटी को कहीं भेजते हैं, तो हम दो-चार लोगों, सगे-सम्बन्धियों के टेलीफोन नंबर दे देते हैं कि बेटा यदि कभी किसी कष्ट में पड़ जाओ या पैसे की ज़रूरत पड़ जाये तो अमुक-अमुक व्यक्ति को टेलीफोन कर देना। तो ईश्वर ने एक दिव्य

व्यक्तित्व दिया है कि जब तुम संसार में फँस जाओ, दुखी हो जाओ, रुग्ण हो जाओ और जब तुम्हें बाहर निकलने का कोई रास्ता नज़र न आये तो तुम मेरे दर पर आकर ढह जाना। पंजाबी में शब्द है **'ढहना'** गिर जाना, **तुम ढह जाना, रो पड़ना।** मैं उसी वक्त प्रकट हो जाऊँगा। जब जाप करते-करते, उसको पुकारते पुकारते वह ढह जाता है। अपनी पोस्ट, पोजीशन का समस्त अहम् भूल जाता है, कि प्रभु त्राहिमाम् ! गिर जाता है तब उसका दिव्य व्यक्तित्व प्रकट हो जाता है। वह हर्षित, उल्लसित, मुदिता से परिपूरित हो जाता है। इसके रोग, दोष सब भाग जाते हैं, उसको छोड़ देते हैं। कानूनन उनको छोड़ना पड़ता है। जब विभीषण गिड़गिड़ाता हुआ प्रभु श्री राम के चरणों में आकर पड़ गया कि त्राहिमाम ! प्रभु, मैं राक्षस हूँ, मैं राक्षस-कुल में पैदा हुआ हूँ। मैं रावण का भाई हूँ तो प्रभु श्री राम क्या कहते हैं कि—हे विभीषण ! उठो, इस वक्त तुम राम के सामने हो, तुम भूल जाओ कि तुम क्या हो :—

''सन्मुख होई जीव मोहि जबहीं कोटि जन्म अघ नासेहीं तबही"

जिस वक्त कोई जीव तड़प कर, अपनी हैसियत भूलकर मेरी ओर मुख कर लेता है तो मैं उसके करोड़ों जन्मों के पाप उसी वक्त समाप्त कर देता हूँ। क्यों कर देता हूँ? **क्योंकि उसने स्वयं कुछ नहीं किया होता।** केवल अपनी बुद्धि के अहम् से मोहर लगाई होती है कि **मैंने किया है** और हे विभीषण ! मैं एक काम और करता हूँ उसके समस्त पापों को नष्ट करके, आगे के लिए मैं उसकी उँगली किसी संत को पकड़ा देता हूँ। क्योंकि जीवन में सत्संग ज़रूरी है। जिस व्यक्ति के जीवन में सत्संग नहीं है वो पशु का पशु ही रहता है। तो दिव्य आपा प्रकट होता है नाम-जाप से क्योंकि ईश्वर का नाम लेते-लेते आप अपने नाम के अहम् से तुरन्त मुक्ति पा जाते हैं।

आज यदि आप गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करें तो पायेंगे कि जितने भी अति बुद्धिजीवी हैं, बड़े-बड़े राजनेता या उच्चाधिकारी हैं, वे मानसिक रूप से तनावित रहते है क्योंकि वे तथाकथित बहुत बँधे रहते हैं। अन्ततः वे नशे में

फँस जाते हैं। नाम-जाप से नशे की प्रवृत्ति दूर होती है। हम बुद्धि के तथाकथित विकसित होते ही अपने आपको ब्रह्मा, विष्णु, महेश मान लेते हैं, कि मैं ही इस जीवन का कर्त्ता-धर्त्ता हूँ। मैंने अपने पिछले प्रवचन में कहा था कि इस देह को अज्ञानवश हम अपनी कहते हैं क्योंकि हम पैदा कब हुए? हम नहीं जानते। हम मरेंगे कब? हम नहीं जानते। हमारी विवाह-शादी किसी के साथ क्यों होती है, हम नहीं जानते। हमारी विभिन्न संतानें अलग-अलग क्यों होती हैं? हम नहीं जानते। जीवन की प्रमुख घटनायें जो घटती हैं, वो घटती हैं उसमें हमारा कोई हाथ नहीं होता। हम किसी विशेष व्यवसाय में क्यों हैं, हम नहीं जानते, हमारा अगला साँस आयेगा कि नहीं आयेगा? हम नहीं जानते। इस जीवन पर हम अपना अधिकार जमा लेते हैं, कि **'यह मेरी देह है।'** जिसकी एक साँस पर भी आपका अधिकार नहीं है। अपनी बुद्धि से हम योजनायें बनाते हैं कि इतने वर्षों में मैं इतना धन कमा लूँगा। इतने भवन खड़े कर लूँगा! यह पद ग्रहण कर लूँगा! मेरा पुत्र इतने वर्षों में यह बन जाएगा। मैं उसके लिए ऐसी लड़की ढूँढूँगा और अपनी लड़की के लिए ऐसा लड़का ढूँढूँगा।

ईश्वर ने मानव को बुद्धि मात्र इसलिये दी, कि 'ऐ मानव! इस बुद्धि से यह सोच कि तेरे हाथ में कुछ नहीं है। सब कुछ मेरे हाथ में है। जो मैं चाहता हूँ, करवाता हूँ। इसलिए मात्र, तू मेरे कृत्यों की प्रशंसा कर। सराहना कर! क्योंकि मैं तेरे रूप में खेल रहा हूँ। मैंने इस महाब्रह्मांड का निर्माण किया है। असंख्य तारागण, नक्षत्र, महासागर, असंख्य नदियाँ, झीलें, पृथ्वी, वसुन्धरा, आकाश, पाताल सब कुछ मैंने बनाया है। असंख्य जीव-जन्तु मैंने बनाये हैं। **मेरी प्रंशसा कर!** वाह-वाह कर! मात्र, **मैंने तुझे बुद्धि इसलिये दी है और बाकी सब कुछ मैं ही करूँगा, मैं ही करता हूँ।'** सबसे बड़ी प्राप्ति हमको चुपचाप क्या हुई? **हमारी मानव-देह**, जो परम चमत्कारिक है जिसका हम चिकित्सक एक बाल, एक नाखून नहीं बना सकते। इतनी विशाल मानव-देह हमको चुपचाप प्राप्त हो गई, हमने कुछ नहीं किया। माँ-बाप प्राप्त हो गये चुपचाप, उनको बनाने में हमने कुछ नहीं किया। इस देह को चलाने

के लिए सबसे अधिक हवा चाहिए। एक मिनट के लिए भी किसी की हवा बंद कर दीजिये वह मर सकता है। वह हवा उस ईश्वर ने बनाई। हवा के बाद सबसे आवश्यक वस्तु जो जीवन को चलाने के लिये चाहिये वो है **जल**। **वनस्पतियाँ** बनाईं खाने-पीने के लिए। इसी प्रकार वो प्राप्तियाँ जो ईश्वर की इच्छा से होनी ही थीं उसके लिए हम अपनी बुद्धि का दुरुपयोग करते हैं। हम समय नष्ट करते हैं और यदि अहम्‌वश वो प्राप्तियाँ हो भी जायें **तो ईश्वर एक कानून लागू कर देता है, एक सज़ा दे देता है, कि हम उन प्राप्तियों को भोग नहीं सकते। यह मानव-देह आपकी नहीं है, आपके लिये है।** जिस व्यक्ति ने इस देह पर भी अपना गैर कानूनी कब्ज़ा कर लिया कि यह मेरी देह है तो ईश्वर **उसको एक सज़ा सुना देता है और वह सज़ा क्या होती है कि इसके सारे हक छीन लो। इसका समय इसका नहीं होता।** इसकी शारीरिक शक्ति इसकी नहीं होती। इसकी डिग्रियाँ बिकी हुई होती हैं। इसका दिल बिका हुआ होता है। इसकी देह बिकी हुई होती है। इसकी जायदाद किसी और के लिये होती है। इसका धन किसी और के लिए होता है। इसे अहं रहता है कि मैं बहुत व्यस्त हूँ, मैं धन कमाता हूँ, मेरा एक-एक मिनट, एक-एक लाख के बराबर है। बोला, बच्चू कमाते जाओ लेकिन खायेगा कोई और। जायदाद बनाओ, इमारत खड़ी करो लेकिन रहेगा कोई और। डिग्रियाँ आपकी होंगी, भोगेगा कोई और। रेस के घोड़े की तरह शर्त लगाई जायेगी आप पर, प्रतिभायें आपकी होंगी लेकिन उनका भोग कोई और करेगा। जैसा मैं उदाहरण दे चुका हूँ कि रेस के घोड़े पर लाखों, करोड़ों की शर्तें लगाई जाती हैं और घोड़े को क्या मिलता है ! घास और चने। तो अधिकांश बुद्धिजीवी लोग जो बहुत व्यस्त हैं उनको भी घास और चना ही मिलता है और उसको खाने का भी उनके पास समय नहीं होता।

सावधान ! आपकी बुद्धि, देह, शक्ति, धन-सम्पत्ति जो कुछ भी है, यह ईश्वर का दिया हुआ है, आपका नहीं है। आपको उसे समर्पण करना अति आवश्यक है। यदि हम कोर्ट में जाकर किसी जमीन की रजिस्ट्री करवायें

तो धन देकर, वह रजिस्ट्री हमारे नाम हो जाएगी। प्राप्ति का अधिकार हमें मिल जाएगा। अपने नाम का बोर्ड हम लगा देंगे। लेकिन कोई रजिस्ट्री उसके भोग का, उसमें आनन्दमय रहने का हमको हकूक नहीं दे सकती। हेराफेरी से, खूब तिकड़म लगाकर खूब धना कमा लीजिये। प्राप्ति का अधिकार मिल जाएगा आपको, लेकिन उसके भोग का हकूक नहीं मिलेगा। उसके भोग के लिए हमें सुप्रीम कोर्ट में, उस बड़े कोर्ट में जाना पड़ता है। नई बात बता रहा हूँ, पहले भी बता चुका हूँ। यदि आप अपनी देह का और देह पर आधारित सब चीज़ों का, अपने सगे-सम्बन्धियों का, संतान का, स्त्री का, पद का, डिग्रियों का, सम्पत्ति का, धन का भोग करना चाहते हैं तो उनकी प्राप्तियों के बाद आपको उस दिव्य सुप्रीम कोर्ट में निवेदन करना पड़ेगा। कोर्ट की अपनी भाषा होती है, कि हे प्रभु ! मैं तहे-दिल से, तहे-रूह से, अपने होशो-हवास में यह घोषणा करता हूँ कि आपने यह प्रापर्टी, पोस्ट, धन, संतान वगैरह-वगैरह जो भी दिया है **यह सब आपका है, आपका दिया हुआ है।** 'हे प्रभु ! आप कृपा करके इसके आनन्दपूर्वक भोग का मुझे अधिकार दीजिये।' **भोग का अधिकार लेने के लिए आपका प्राप्ति का अधिकार समर्पित करना अति आवश्यक है।**

जब तक किसी भी वस्तु की अहमियत है आपके दिल में, आप उसको कभी भोग नहीं सकते और यदि भोगना चाहते हैं तो **आपको उसकी अहमियत समाप्त करनी होगी, जो मात्र नाम-जाप से संभव है। त्वदीयं वस्तुं प्रभु तुभ्यमेव समर्पये,'** प्रभु ! यह वस्तु आपकी है। मेरी नहीं है, जब यह भाव आ जाएगा तो उस वस्तु की अहमियत आपके दिल-दिमाग से समाप्त हो जाएगी और तब आप उसका वास्तविक भोग कर पायेंगे। एक फौजी को एक महीने की छुट्टी हुई। फौजी का नाम था तोप सिंह। तोप सिंह ने अपने कमांडिंग ऑफीसर को एक प्रार्थना-पत्र लिखा कि सर ! मुझे घर ले जाने के लिए एक बोफोर्स तोप चाहिए। सी. ओ. साहब उसकी प्रार्थना पढ़कर बड़े हैरान हुए। उसको ऑफिस में बुलाया, कि 'तोप सिंह' ! 'यस सर,' कि—'यह प्रार्थना तुम्हारी है,' 'जी हां'। 'बेवकूफ तोप क्या करनी

है तुमको ?' बोला—'सर ! मेरी किसी से दुश्मनी है तो चाहिए तो पिस्तौल थी लेकिन किसी ने कहा कि बड़ी चीज के लिए प्रार्थना कर दो, पिस्तौल तो मिल ही जाएगी। असल में तोप नहीं, सर, मुझे पिस्तौल चाहिए तो मैंने तोप लिख दी कि आप मुझे पिस्तौल तो दे ही देंगे।' अरे ! उससे अधिकार माँगना है तो सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड का अधिकार माँग लीजिए:—

''खुदा नबी दोनों की इन्तहा हूँ मैं, इब्तदा हूँ मैं,
फनाह हूँ मैं, बका हूँ मैं, स्वाहा हूँ मैं, महा स्वाहा हूँ मैं।''

'तुम मेरे हो, मैं तुम्हारा हूँ। मेरे और तुम्हारे अलावा कोई नहीं है।' जब यह आर्तनाद उठती है, तो ईश्वर आपकी उँगली पकड़ लेता है। अपनी सारी कायनात, अपनी सारी खुदाई के भोग, आपके कदमों में डाल देता है कि—'ले बेटे, सब कुछ तुम्हारे लिये है।' ईश्वर के नाम-जाप द्वारा आपकी बुद्धि मात्र ईश्वरीय कानूनों का पालन करती है। ईश्वरीय भावों को अपनाती है जिसके लिये आपको स्वयं कुछ नहीं करना पड़ता। मात्र, उसकी वाह-वाह करनी पड़ती है। नशा क्यों करते हैं लोग? जब उनकी योजनायें असफल हो जाती हैं। सफल हो जायें, प्राप्तियाँ भी हो जायें, जब भोग नहीं मिलता तो निराश हो जाते हैं कि मैंने इतना कुछ एकत्रित किया मुझे सुख क्यों नहीं है। राम नाम सत् होते हुए एक पल लगता है और बनती है सत्तर किलो देह की एक किलो छः सौ ग्राम राख। वो हमारी राख हमारे घर में आना वर्जित है। अरे ! ये हैसियत है हमारी ! हमारे बच्चे हमारी राख को अपने घर नहीं लाते, कि बाहर रख दो जब समय मिलेगा तो हरिद्वार चले जायेंगे। तुम्हें भूलना नहीं चाहिए कि तुम क्या हो?

आदमी नशा कब करता है? अपनी आकांक्षाओं व महत्त्वाकांक्षाओं के अनुसार जब आपका जीवन नहीं चलता तो निराशा होती है और उस निराशा को हटाने के लिये हम नशा करते हैं, शराब पीते हैं, अफीम खाते हैं, भाँग खाते हैं, नशे की गोलियाँ लेते हैं और क्या-क्या करते हैं हम ! उसका प्रभाव क्या पड़ता है? क्षण भर के लिए हमारी बुद्धि शान्त हो जाती है। जब बिल्ली कबूतर की तरफ भागती है तो कबूतर आँखें बन्द लेता है कि चलो,

बिल्ली नज़र नहीं आ रही मुझे। तो नशा लेना मुसीबत को टालने वाली यही बात है। जब नशा टूटता है तो उसके बाद फिर वही बिल्ली एवं फिर आपकी मुसीबत और विकराल रूप धारण करके खड़ी हो जाती है, क्यों? क्योंकि वो नशा आपके दिल-दिमाग को और तोड़ देता है। पहले उसके साथ लड़ने की जितनी क्षमता थी वह और कम हो जाती है। आपकी समस्या और बढ़ जाती है। आजकल बुद्धिजीवियों में शराब का बहुत प्रचलन है। यह नशा इतना भयानक है कि जिस घर में शराब का या अन्य पदार्थों का नशा होता है वे घर तबाह हो जाते हैं।

नाम का भी नशा है, लेकिन दोनों नशों में फर्क है। इसका वैज्ञानिक आधार क्या है? जब हम प्रभु का नाम जपते हैं और साथ में सिमरन करते हैं तो हमारी बुद्धि नशे की तरह शान्त हो जाती है। नाम का भी नशा चढ़ जाता है। आँखें चढ़ जाती हैं, पाँव लड़खड़ा जाते हैं। बिल्कुल वही होता है लेकिन इस नशे के बाद इसकी शक्तियाँ और बढ़ जाती हैं। वह जो मुसीबत लग रही थी, फिर मुसीबत ही नहीं रहती। वह अपना रूप खो देती है। अपना अस्तित्व खो देती है और अगर वह मुसीबत रहती भी है तो प्रभु के नाम से स्वयं हट जाती है अन्यथा, आपमें उससे लड़ने की शक्ति बढ़ जाती है। दोनों नशों में फर्क हैं लेकिन यह नशा महँगा है। यदि सारी ज़िन्दगी दाँव पर लगाने से एक छोटा सा पैग मिल जाये तो समझिये कि आप परम सौभाग्यशाली इंसान हैं। वो नशा आपका जन्म-जन्मान्तरों तक चलता है। महापुरुष बचपन से ही नशई होते हैं। वो जीवन को कुछ नहीं समझते। जीवन को, जीवन की उपलब्धियों को कुछ नहीं समझते।

महापुरुष तो बचपन से ही नशई होते हैं। बादशाह होते हैं वो, तभी उन्हें कहा—**सच्चे बादशाह। यह नशा आपके मानस पर अंकित हो जाता है, आपकी देह पर नहीं।** उनको सारा संसार एक खेल-तमाशा नज़र आता है। इस प्रकार जब हम नाम के नशे में डूब जाते हैं ईश्वरीय कृपा से, तो हमें संसार का वास्तविक आनन्द आता है। बड़ी-बड़ी प्राप्तियाँ चलकर हमारे कदमों में स्वयं आती हैं। **तो दिव्य व्यक्तित्व का जाग्रत होना, नशों का**

रूपान्तर होना है। नाम-जाप से नशा छूटता नहीं है, नशों का रूपान्तर हो जाता है। आप दिव्य नशे में उतर जाते हैं जिसके सम्मुख संसार का कोई नशा टिक नहीं सकता।

नाम-जाप से हमें रोगों से मुक्ति मिलती है बहुत महत्त्वपूर्ण बात बता रहा हूँ। जब हम मानसिक रूप से बीमार होते हैं तो हमारा बाहर का जगत विक्षिप्त हो जाता है। जितनी भी देह में प्रकट होने वाली बिमारियाँ हैं वे हमारी बीमार वृत्तियों का बाह्य प्रकटीकरण हैं। अपनी बुद्धि के अहम् से जो हमने बीमार वृत्तियाँ, अपने मानस में पाल लीं, वो हमारी देह में रोग बनकर प्रकट हो जाती हैं। आप मुझसे सहमत होंगे कि जितनी संक्रामक बिमारियाँ हैं—गठिया, दमा, उच्च रक्तचाप आदि का हमारे पास कोई इलाज नहीं है। क्यों नहीं है, क्योंकि हम उनका कारण नहीं जानते। हम दवाइयाँ दे देते हैं बिमारियाँ नियन्त्रित हो जाती हैं, मात्र कुछ समय के लिये। एक बीमारी ठीक हो जाती है और दवाइयों के विपरीत प्रभाव से दूसरी बीमारी प्रकट हो जाती है। तो नाम-जाप से आपका मानस स्वस्थ रहता है।

आप जीवन का आनन्द लेना चाहते हैं तो या शिव बन जाइये या शव बन जाइये। हम कुछ नहीं बनते। नाम-जाप से जब हम अपनी बुद्धि की अनावश्यक गतियों को नियन्त्रित रखते हैं तो हमारे में कभी ज़िम्मेवारी की भावना नहीं आयेगी। हर चीज़ का, हर क्षण का, हर पल का, हर श्वास का, हर प्राण का ज़िम्मेवार कोई है, तो वह ईश्वर है। हम खुद उसमें अपनी मोहर लगाकर फँस जाते हैं और बिमारियाँ मोल ले लेते हैं। जितने बुद्धिजीवी लोग हैं वो ज्यादा कठिन बिमारियों से ग्रसित हैं। अतः रोगों के नाश के लिए, **नाम-जाप अमोघ शस्त्र** है। तो ऐ भारत के सुविख्यात चिकित्सको ! अपने मरीज़ों को नाम-जाप ज़रूर बताना। **हर दवाई को मरीज़ ईश्वर का प्रसाद बना कर लें,** उस दवाई की रोगनाशक क्षमता बढ़ जायेगी। यह भारतीय ऋृषि-मुनियों द्वारा बताये गये परम सत्य हैं। उनसे आँखे मत मूँदिये और उनका अनुसरण करने में और करवाने में शर्म मत महसूस करिये। **गर्व महसूस करिये कि आप**

भारतीय हैं। हर चीज़ में हम पाश्चात्य देशों की नकल करते हैं। यह नकल हमें बहुत महँगी पड़ जाती है। विज्ञान, मानव-बुद्धि का उत्पाद है। क्या हमने कभी विचार किया है कि मानव-बुद्धि किसका उत्पाद है? जिसने मानव-मस्तिष्क का निर्माण किया है, आप उस परमात्मा को उस महावैज्ञानिक को कैसे भूल सकते हैं ! बिना उसका नाम लिये, आप मानव-देह को स्पर्श कैसे कर सकते हैं? हम तो हर चीज़ में अधूरे हैं क्योंकि हम बुद्धिजीवी हैं। हम तथाकथित वैज्ञानिक हैं। अगर आप जीवन को गुणात्मक बनाना चाहते हैं तो मैं उसकी एक अध्यात्मिक तकनीक आपके सामने रख रहा हूँ। एकाग्रता चाहूँगा आपकी। एक गिलास है अगर हम कहें कि एक ड्रम पानी निकालो गिलास से, तो यह असंभव है। इस गिलास का एक निश्चित आयतन है। उस आयतन से एक बूँद भी ज्यादा पानी यदि आप इसमें डालेंगे तो वह पानी बाहर गिर जाएगा। यदि आप उसी गिलास से एक ड्रम पानी निकालना चाहते हैं, तो इस गिलास को पानी के भरे ड्रम में डाल दीजिए और किसी नली का एक सिरा इसमें लगा दीजिए, इसी गिलास से आप एक ड्रम पानी निकाल सकते हैं।

दुर्भाग्य यह है, कि जो सीमित क्षमतायें हमारी बुद्धि की, हमारे बाहुबल की हैं, उनको भी हम व्यर्थ करके चले जाते हैं। दुनिया के अति बुद्धिजीवियों से पूछ रहा हूँ और उनको बता रहा हूँ, कभी आप खाली बैठे पिछले पन्द्रह मिनट में क्या सोच रहे थे, इस पर विचार करें, तो आपको शर्म आने लगेगी। किसी को बताने में भी आप झेपेंगे कि मैं क्या सोच रहा था? 90% हमारी सोच और विशेषकर बुद्धिजीवियों की सोच न केवल निरर्थक है, बल्कि नकारात्मक है। जितना भ्रमित और जितना भयभीत बुद्धिजीवी होता है, मोटी बुद्धि का आदमी इतना भयभीत नहीं होता। तो गुणात्मक जीवन बिताने के लिये यदि अपनी क्षमताओं से बाहर जाना चाहते हैं, तो नाम-जाप द्वारा उस ईश्वर में समाहित हो जाइये। जब वह गिलास समुद्र में मिल जाएगा तो उसकी क्षमतायें

असीम हो जायेंगी। इस गिलास को अपने सम्मुख खड़ा हुआ कुआँ भी गरीब नज़र आयेगा। अगर आप सीमित से असीम का आनन्द लेना चाहते हैं तो आप प्रभु के नाम के द्वारा अपने नाम-रूपी इस छोटे से गिलास की हैसियत को, उस परमसत्ता रूपी समुद्र के साथ जोड़ दीजिए। आप गणनातीत हो जायेंगे। आपकी हर चीज़ गुणात्मक हो जाएगी, यदि **आप ईश्वर के साथ जाप द्वारा जुड़े रहें तो !**

यदि आप जीवन की गुणात्मकता चाहते हैं तो आप सीमित से असीम हो जाइये। असीम की संतुष्टि मिलेगी आपको। एक गिलास पानी से आधा भरा हुआ है। आप एक व्यक्ति को दिखाइये कि गिलास में पानी कितना है? वह कहेगा गिलास आधा भरा है, दूसरे ने कहा गिलास आधा खाली है। दोनों सत्य हैं, लेकिन दोनों की सोच में, उनके दृष्टिकोण में बहुत अन्तर है। जिसने गिलास को खाली देखा उसकी बुद्धि नकारात्मक है और जिसने गिलास को भरा देखा उसकी सकारात्मक है। जाप द्वारा हम जीवन को सकारात्मक बना देते हैं। हमारी प्रार्थनायें सकारात्मक हो जाती हैं। सकारात्मक बुद्धि के मानव का कुछ नुकसान हो गया तो वाह-वाह, कुछ मिल गया तो वाह-वाह। जब आदमी आनन्द में कुछ खो देता है, तो उसे कहा है फकीरी और जब आनन्द में पा लेता है तो उसे कहा है अमीरी। तो ऐसे महापुरुषों के लिये फकीरी और अमीरी में कोई अन्तर नहीं होता।

मंत्र-जाप के बाद आता है बीजमंत्र। बीज क्या है? बीज सभी जानते हैं। सब्जियों के बीज और फलों के बीज होते हैं। तो इस प्रकार ईश्वरीय शक्तियों के भी बीज होते हैं। ईश्वर अपने भक्तों को उन शक्तियों से स्वयं अवगत करवाता है। ऊँ, जूं, श्रीं, यह सब ईश्वरीय शक्तियों के बीज हैं। मात्र भारत और भारतीय संस्कृति में ही यह महाज्ञान छिपा हुआ है। यह बीज क्या है, मान लीजिये हम किसी पेड़ की पूजा करना चाहते हैं तो या तो हम उसके तने की कर पायेंगे, या पत्तियों की कर पायेंगे। पूरे पेड़ की पूजा हम एक समय में नहीं कर सकते। यदि हम उसका बीज लें तो बीज में उस

पेड़ की शाखायें, जड़ें, तना, पत्तियाँ, फल, फूल और उन फलों में जितने भी बीज हैं वो भी उस बीज में आ जाते हैं। बीज-मंत्र मात्र, सद्‌गुरु से लेना। किताबें पढ़कर कभी बीज-मंत्र जाप मत करना, लोग बहुत भारी भूल कर देते हैं, क्योंकि बीज बहुत सशक्त होते हैं। जब आप इन शक्तियों का, मंत्र में बीज लगाकर जाप करते हैं जो मात्र आपको सद्‌गुरु बतायेगा तो उनका जाप करने से आपको इष्ट के सम्पूर्ण सूक्ष्म-मंडल पर अधिकार आ जाता है।

मैंने तीन देह बताई थीं। एक हमारी स्थूल-देह है, जिसमें हम नाम-रूप में होते हैं और दूसरी हमारी सूक्ष्म-देह है, जिसमें हमारा परिवार, देश-विदेश, धर्म-कर्म और सब कुछ होता है। हमारा निवास, हमारा जितना भी संसार है **वह हमारी सूक्ष्म-देह में होता है, जिसमें हम भी होते हैं और स्थूल-देह में हम ही होते हैं।** तीसरी है कारण-देह, जिसको कहा है ईश्वर। वह हमारी स्थूल और सूक्ष्म-देह का पालनकर्त्ता, निर्माणकर्त्ता और संहारकर्त्ता है। इसी प्रकार देव-शक्तियों की भी एक स्थूल-देह होती है, जिसका नाम-रूप में हम जाप करते हैं। मंत्र से हम ईश्वरीय मानस का जाप करते हैं और बीज रूप से हम उस शक्ति के सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड का जाप करते हैं। और जब उसकी सिद्धि मिलती है तो पहले नाम-जाप से आपको मात्र अपने एक नाम और रूप के भोग का अधिकार मिला और मंत्र-जाप से आपको अपने सम्पूर्ण रूप और नाम की सृष्टि के भोग का अधिकार मिल जाता है। उदाहरण दूँगा, मान लीजिये आप लंदन जा रहे हैं अपने घर से और आप अपना घर तो हवाई जहाज़ में अपने साथ नहीं ले जा सकते, अपने सेवक, नौकर-चाकर भी साथ में नहीं ले जा सकते, लेकिन यदि आपकी मन्त्र- सिद्धि है तो जहाँ भी संसार में आप जायेंगे आपको वही सुख-सुविधायें मिलेगीं, जो आपको अपने घर में मिलती थीं।

जब बच्चा पैदा होता है तो अपने साथ बोरिया बिस्तर लेकर नहीं आता कि अगले जन्म में हमें जाना है, हम यह भी ले जायें साथ कपड़े-लत्ते, धन-दौलत सब ले जायें। सब छोड़कर जाना पड़ता है मृत्यु के समय।

लेकिन कोई बच्चा पैदा होते ही ऐश्वर्यवान क्यों होता है, क्योंकि वह इन चीज़ों की शक्ति को लेकर पैदा हुआ है। आज सारी भ्रान्तियाँ साफ हो जानी चाहिये। एक ही माँ-बाप के चार-पाँच बच्चे हों तो अलग-अलग अधिकार सबके क्यों होते हैं? क्योंकि उनके मानस पर ईश्वरीय अधिकारों की मोहर लगी लगाई आती है। उनके माता-पिता न भी हों तो भी वे अपने अधिकार भोगते हैं। कोई शहंशाह उनको गोद ले लेता है। आपको अति स्पष्ट हो जाना चाहिये कि कोई-कोई बच्चे पैदाइशी शहंशाह क्यों होते हैं? चाहे वह किसी निर्धन के घर पैदा हों, उनको सारी सुविधायें मिलती हैं। लोग हाथ जोड़कर खड़े रहते हैं उन बच्चों के सामने, क्योंकि अपने मानस पर वे उन शक्तियों को लेकर पैदा होते हैं, जोकि बाद में प्रकट होती हैं। तो यह बीज-मंत्र मैंने संक्षेप में बताया और अंत में आता है लोम-विलोम जाप, उसको भी संक्षेप में आज बता देता हूँ।

लोम-विलोम, उल्टा-सीधा जाप। माता-बहिनें बैठी हैं यहाँ, आप में से कइयों ने दूध-दही का मंथन किया होगा, आजकल तो मंथन के लिए मशीनें चल गईं हैं। दूध से दही जमाते हैं, दही का मंथन होता है तो मक्खन निकलता है, उसका घी बनाते हैं। दूध से घी बनता है लेकिन घी से दूध नहीं बन सकता। घी किससे निकलता है? दूध से! आप कहेंगे कि घी को दूध में बदल दो, जो कि असम्भव है। इसी प्रकार जब आप बीज-मंत्रों का जाप करते हैं, लोम-विलोम, जो कि एक विशेष स्थिति होती है, जिसको सद्गुरु इंगित करता है कि अब लोम-विलोम जाप कर सकते हो। तो उस लोम-विलोम जाप से मंत्र-मंथन होता है। अतः जिस प्रकार कि दूध से घी बनता है, घी से दूध नहीं बन सकता और घी के समस्त गुण दूध से बिल्कुल भिन्न होते हैं। उसी प्रकार मंथन द्वारा, लोम-विलोम जाप द्वारा, सीधे-उल्टे जाप द्वारा किसी मंत्र की शक्ति प्रकट होती है। उस शक्ति की कृपा होने से स्वयं वो शक्ति अपने अर्थ की अनुभूति करवाती है जो समझने का विषय नहीं है, जिसका अर्थ मंत्र के शब्दार्थ से बिल्कुल भिन्न होता है।

आप अपने इष्ट के नाम-जाप को मंत्र और मंत्रों में बीज लगाकर

लोम-विलोम जाप करते हैं, सद्‌गुरु की कृपा से। **अपने माता-पिता की कृपा से, हृदय रूपी मटके में किसी मंत्र रूपी दही को डालकर, विश्वास की मथनी से और श्रद्धा की डोरी से जब लोम-विलोम जाप करते हैं, आँखों में अश्रु लिये हुए, तो कभी न कभी वह शक्ति अवश्य प्रकट हो जाती है।** वह शक्ति आप पर कृपा करके आपकी श्रद्धा के अनुसार सर्वप्रथम अपना रूप आपको समझाती नहीं है, क्योंकि दैवीय शक्ति समझने का विषय ही नहीं है, वह आपको अनुभूति करवाती है और आपको उस शक्ति का सान्निध्य मिल जाता है। इसे कहा है **'इष्ट-सिद्धि'।** लोग कहते हैं कि इनको हनुमान जी की सिद्धि है, इनको शंकर जी की सिद्धि है, देवी की सिद्धि है, यह सिद्धि क्या है? जब हमने उस इष्ट के साथ एक सम्बन्ध बनाया और उस इष्ट ने हमारा सम्बन्ध स्वीकार कर लिया। जब नवजात शिशु उत्पन्न होता है, बच्चा पैदा होता है तो हम तुरन्त उसको मान्यता दे देते हैं, कि मेरे घर बेटा पैदा हुआ है या बेटी पैदा हुई है। लेकिन डेढ़-दो साल तक उस बच्चे को पता नहीं होता कि मेरे माँ-बाप कौन हैं? आप लोग उसको पुचकारते हैं, प्यार करते, खिलाते-पिलाते, नहलाते-धुलाते हैं और जब वह एक दिन आपको माँ या पापा कह देता है तो बच्चों के सम्बन्धों की **सिद्धि** हो गई। इसी प्रकार जब आप अपने इष्ट का पहले नाम-जाप करते हैं, फिर बीज मंत्र का जाप करते हैं, फिर लोम-विलोम जाप करते हैं, लेकिन उसके साथ श्रद्धा और विश्वास का होना परमावश्यक है। उसके बाद जब इष्ट का प्रकटीकरण होता है और वो आपको अपना लेता है तो इसको कहा है **'इष्ट-सिद्धि'**। तब क्या होता है? उस मानस के निर्माण का, पालन का और संहार का अधिकार इष्ट-कृपा से आपको मिल जाता है। आपके सूक्ष्म-मंडल के निर्माण का, पालन का और संहार का अधिकार इष्ट आपको दे देता है। लेकिन भक्त कभी भी इसको स्वीकार नहीं करते, कि प्रभु ! आप ही मेरा जीवन चलाइये, जैसा आप चाहते हैं। तब इष्ट आपको भक्ति का वरदान दे देता है। यदि आप उस महान शक्ति को संभालना नहीं चाहते तो आपको क्या मिल जाता है? **भक्ति का वरदान !** कभी-कभी भक्तों से

त्रुटि हो जाती है। जैसा कि मैं छज्जू भक्त की कहानी सुना चुका हूँ। जब भक्ति की शक्ति खेलती है तो उसे संभालना मुश्किल हो जाता है। कभी शक्ति के लिए प्रार्थना मत करना, ईश्वर की कृपा के लिए प्रार्थना करना। शक्ति के लिए प्रार्थना करोगे तो आप मानव हैं, आप से शक्ति संभाली नहीं जायेगी, आप ईश्वर के कृत्यों में व्यवधान डाल देंगे और अनर्थ हो जायेगा।

मैंने इस समस्त प्रवचन में इष्ट-कृपा से जाप के प्रत्येक पहलू का वर्णन किया है। यदि इस समस्त प्रकरण को श्रद्धा-पूर्वक मनन करके, सद्गुरु-कृपा, इष्ट-कृपा एवं आत्म-कृपा से निरन्तर जाप का अभ्यास करें तो सबका जीवन अति उत्कृष्ट एवं आनन्दमय अवश्य हो जायेगा।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(27 मई, 3 जून, 19 अगस्त, 26 अगस्त और 9 सितम्बर,2001)

प्रारब्ध

आज इष्ट-प्रेरणा से इस पुरुषोत्तम मास में आपके सम्मुख एक बहुत अद्‌भुत विषय प्रस्तुत करने जा रहा हूँ। विषय है–**प्रारब्ध, भाग्य, किस्मत।** प्रारब्ध क्या है, कैसे बनता है, इसकी सीमाएँ क्या हैं, क्या इसको समाप्त किया जा सकता है, क्या इसको परिवर्तित किया जा सकता है? इत्यादि असंख्य प्रश्न किसी भी बुद्धिजीवी के मन-मस्तिष्क में आना बहुत स्वाभाविक है। आज इस विषय पर अपने विचार प्रस्तुत करूँगा। विषय थोड़ा जटिल है, इसलिए आप सबकी एकाग्रता चाहता हूँ। आप मुझसे सहमत होंगे कि जब एक मानव की मृत्यु होती है, तो उसमें से वह चेतन ईश्वरीय सत्ता, बाहर निकल जाती है और शेष रह जाता है शव, जिसे हम मुर्दा कहते हैं, जो मात्र मिट्टी होती है। मिट्टी का पुतला मात्र उसको ज़मीन में गाढ़ दें या जला दें या कुछ भी कर दें। जो चेतन सत्ता उस मृतक-काया से निकल जाती है, वह ईश्वरीय अंश होता है और ईश्वरीय अंश का कोई भाग्य नहीं होता। ईश्वर का कोई भाग्य नहीं होता। कभी यह नहीं सुना हमने कि ईश्वर बीमार पड़ गया है, ईश्वर को घाटा पड़ गया है या ईश्वर पर कोई शुक्र, शनि की दशा चल रही है। ईश्वर का, चेतन सत्ता का कोई भाग्य नहीं होता और जो मुर्दा है, खाक व जड़ है, इसका भी कोई भाग्य नहीं होता।

बहुत नग्न सत्य रख रहा हूँ, लेकिन भाग्य है। चेतन सत्ता का कोई भाग्य नहीं होता और जड़ का भी भाग्य नहीं होता तो मानव का भाग्य कहाँ से आया? बहुत विचारणीय विषय है। भाग्य जीवन को निर्देशित करता है। उसके अनुसार जीवन चलता है, कितना चलता है, हम नहीं जानते। लेकिन चलता है। तो इस भाग्य का पदार्पण मात्र मानव-जीवन में कहाँ से हुआ, पशुओं

का कोई भाग्य नहीं होता। मानव का भाग्य कहाँ से पैदा हुआ, यह प्रारब्ध बना कैसे? **प्रारब्ध बना जड़ और चेतन की ग्रन्थि का।** बहुत विचारणीय विषय है। आज इसका विश्लेषण होना परमावश्यक है। क्योंकि हम थोड़ी सी कठिनाई आने पर अथवा खुशी आने पर ज्योतिषियों के पास भागते हैं कि हमारा हाथ देखिये, जन्म-कुंडली देखिये, आगे क्या लिखा है? बहुत उपाय करते हैं। यह सब क्या है?

जैसा मैं अपने समस्त प्रवचनों में आपको बार-बार इंगित करता हूँ कि ईश्वर स्वयं में सच्चिदानंद है और सारा विश्व, सारा ब्रह्माण्ड, कोटि-कोटि महाब्रह्माण्ड उस सच्चिदानंद की माया है। वह इसका निर्माता है, इसका पालनकर्त्ता है, और वही इसका संहारकर्त्ता है। जैसा मैंने अभी कहा कि भाग्य जड़ और चेतन की ग्रन्थि है और ईश्वर सच्चिदानंद है। ईश्वर ने सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड का निर्माण किया है, तो उस सच्चिदानंद ने जड़ का निर्माण कैसे किया? क्या कभी सूर्य अंधेरे का निर्माण कर सकता है? **नहीं। लेकिन जड़ता भी है और यह है मानव-बुद्धि के अहम् की जड़ता।** जब हम सूर्य से विमुख होते हैं तो हमारा मुख छाया में आ जाता है। तो जब मानव-बुद्धि अपने अहमवश उस प्रभु से विमुख हो जाती है, कि मैं ही सब कुछ हूँ, इस परिवार को चलाने वाला मैं हूँ, इसका पालन करने वाला मैं हूँ, मैं चाहूँ तो विश्व को नष्ट कर सकता हूँ। इसको कहा है **'जड़ता'**। जबकि इस संसार में एक पत्ता भी उस महानायक की आज्ञा से ही हिलता है। जीवन का एक-एक सांस, एक-एक क्षण, एक-एक पल, उसके हाथ में है।

बुद्धि मात्र ईश्वर के अपने इस्तेमाल के लिए थी। मानव-बुद्धि ईश्वर ने मानव को मात्र इसलिए दी थी कि ऐ मानव ! मैंने कितनी बड़ी यह संसार महानाट्यशाला तैयार की है, बनाई है, असंख्य महासागर, तारागण, नक्षत्र, विस्तृत आकाश, पाताल, पृथ्वी, पृथ्वी के सातों तल, असंख्य जीव-जन्तु, इतना कुछ मैंने बनाया है, मात्र तू मेरी प्रशंसा कर, वाह-वाह कर। जब यह तथाकथित बुद्धि के विकास के साथ अहमयुक्त हो जाती है, तो उसको कहेंगे बुद्धि की जड़ता, लेकिन वह चेतन इसको नहीं छोड़ता। जैसा कि मैं

कह चुका हूँ कि तीन देह हैं मानव की, **स्थूल, सूक्ष्म और कारण।** अगर इसको कारण छोड़ देगा तो इसका अस्तित्व तुरन्त समाप्त हो जायेगा। यह ईश्वर को **छोड़ सा** देता है, लेकिन वह ईश्वर, वह महाकारण, उसको कभी नहीं छोड़ता और वहाँ से बनी जड़-चेतन की ग्रन्थि। जैसा कि मैं **'ईश्वरीय जाप'** के प्रवचन में अति स्पष्ट कर चुका हूँ कि अहम् के कारण बुद्धि ने दो भयानक रोग उत्पन्न कर लिये—**पहला था देहाध्यास और दूसरा था देहाधिपत्य।** हमारे मनीषियों ने आज से हज़ारों, लाखों वर्ष पहले, हिमालय की कन्दराओं में, नदियों के तटों पर समाधिस्थ होकर ये दो महारोग खोजे, जो मात्र मानव की बुद्धि के अहम् से उत्पन्न होते हैं, विकसित होते हैं। पहला **देहाध्यास,** कि मैं यह देह हूँ और दूसरा **देहाधिपत्य**, कि यह देह मेरी है। वह देह जिसके न पैदा होने का इसको मालूम है कि मैं अमुक-अमुक समय में पैदा क्यों हुआ, अमुक स्त्री या पुरुष से मेरा विवाह क्यों हुआ, मेरी अमुक प्रकार की शिक्षा क्यों है, मैं अमुक प्रकार के व्यवसाय में क्यों हूँ, मेरी संतान विभिन्न प्रतिभाओं की और अलग-अलग रूप रंग की क्यों पैदा हुई है, मुझे कब मरना है, कैसे मरना है, कहाँ मरना है और अगले क्षण में क्या होने वाला है? इसको अपनी देह के बारे में कुछ भी मालूम नहीं है और उसने इस देह पर अपनी मोहर लगा ली। **मैं देह हूँ, इसको कहा है देहाध्यास। देहाधिपत्य, देह मेरी है।** ये दो महारोग उत्पन्न हुए और जितने भी मानव के त्रास, भय, विक्षेप, मलिनता, रोग-दोष, दुःख, निर्धनता आदि कष्ट थे वे इन दो रोगों से ही उत्पन्न हुए। मैंने कुछ विशेष रुग्ण वृत्तियों का भी वर्णन किया था जो इन दोनों महारोगों से उत्पन्न होती हैं। उस सच्चिदानंद ने मानव को अपना प्रतिनिधित्व देकर 9 महीने में उत्कृष्टतम, विलक्षणतम, अद्‌भुततम, महाचमत्कारी देह दी। इतनी अद्‌भुत चमत्कारिक देह कि ऐसा लगता है मानो ईश्वर स्वयं मानव-देह धारण करके पृथ्वी पर उतरा हो!

जब मानव-बुद्धि में ये दो रोग उत्पन्न हुए, जो थोड़े बहुत सब में हैं, उस समय मानव-मन में क्या हुआ? बहुत नई बात बता रहा हूँ। जैसा कि मैंने कहा है, ईश्वरीय मन स्वयं में निराकार है और ईश्वरीय मन से प्रकट हुई

जितनी भी यह साकार सृष्टि हमको नज़र आती है वो सब ईश्वर की माया है। ईश्वर पाँच निराकार महाभूतों—पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, अग्नि से सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड की रचना करते हैं, जो **साकार** है। यह भी अपने में एक बहुत बड़ा चमत्कार है। जिसका मैं वर्णन कर चुका हूँ।

समस्त महाब्रह्माण्ड में ईश्वर की जितनी भी माया है, सागर हैं, सागर के अंतराल में छिपे हुये रत्न हैं, कितनी बड़ी सम्पदा है ईश्वर की। ईश्वर कभी इस सम्पदा से विचलित नहीं होता। हम लोग थोड़ी बहुत सम्पदा बढ़ जाये तो तनावित हो जाते हैं। क्योंकि ईश्वर की माया ईश्वर के मन से निकली है। बहुत बड़ा तथ्य रख रहा हूँ। कृपया एकाग्र कीजिये ! **ईश्वर की माया ईश्वर के मन से निकली है, जो मन निराकार है।** इतना सशक्त है वह मन कि वह इससे असंख्य गुणी माया को और संभाल सकता है। लेकिन मानव-बुद्धि जब अहम्‌वश हो जाती है तो **मानव-बुद्धि** अपनी माया की, **मानव-माया की रचना करती है।** मानव प्राप्तियों के पीछे भागने लगता है, धन चाहिये, सम्पदा चाहिये, डिग्रियाँ चाहियें, जायदाद चाहिये, नाम चाहिये, यश चाहिये और क्या-क्या चाहिये, क्या-क्या सृजन कर लेते हैं हम? वह है मानव-माया ! माया कभी भी मन के बिना रह नहीं सकती। तो मानव-बुद्धि अपना मन पैदा करती है। देखिये कितना अंतर है। **ईश्वर की माया ईश्वर के मन से निकली है और मानव का मन मानव की माया से निकला है।** ईश्वर इतने बड़े महाब्रह्माण्ड की इतनी बड़ी सम्पदा होने के बाबजूद भी कभी तनावित नहीं होते। **ठोस-घन-शिला, 'न कित आये भयो, न कित जाये भयो।' इतनी बड़ी महामाया का वह मालिक कभी भी तनावित नहीं होता क्योंकि यह माया उसके मन से निकली है और मानव-माया ने मानव-मन को निर्मित किया, मानव-मन ने मानव-माया को नहीं।** इसको संक्षेप में मैं फिर बताऊँगा क्योंकि विषय कठिन है।

जैसे ही मानव-बुद्धि तथाकथित विकसित होती है तो हम प्राप्तियों के पीछे भागने लगते हैं, धन-सम्पदा, डिग्रियाँ, वगैरह-वगैरह। जीवन के लिए काम करना शुरू कर देते हैं, **जीवन के लिए, जीवन काहे के लिए नहीं।** हम यह

भूल जाते हैं कि जीवन प्रभु ने हमें काहे के लिए दिया हुआ है। हम अपना घोड़ा दौड़ाने लगते हैं कि हमें जीवन के लिए कुछ करना है। इस विलक्षण देह को पाने के बाद हम भ्रमित हो जाते हैं। माँ के पेट में नौ महीने हमने क्या किया? कुछ भी नहीं किया और हमको एक विलक्षण काया मिल गई, वो काया जिसका हम एक नाखून नहीं बना सकते। उस काया के लिए जो ईश्वर ने हमको दी, भेंट की और किसलिए दी हम यह भी नहीं जानना चाहते। **उस काया के पालन-पोषण के लिए हम प्राप्तियों के पीछे भागने लगते हैं, तो वह बन जाती है मानव-माया और उस माया की सुरक्षा के लिए, उसकी संभाल के लिए मानव-माया निर्मित करती है मानव-मन को।** जब हम जीवन के लिए कोई काम करते हैं, यहाँ भी तथाकथित कर्मठ बैठे होंगे जो अपने आपको कर्मठ ही नहीं कर्मयोगी समझते हैं। वे यह जानना नहीं चाहते कि वे कर क्या रहे हैं? मैंने एक प्रवचन में कहा था कि जो कृत्य हमारे बिना भी हो सकता है, वह हमारा कर्त्तव्य कैसे हो सकता है? हम सब भ्रमित हैं। हम नहीं जानते कि हमारा कर्त्तव्य क्या है?

हम कुछ न कुछ करते हैं और उस कार्य के छः अंग मैंने बताये थे। **पहला** किसी भी कार्य का एक **कारण** होता है। बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता। **दूसरे** उस कार्य का एक **कर्त्ता** होता है। कारण और कर्त्ता यह दो अंग मानव-बुद्धि के अहम् के उत्पाद हैं। इस काम को मैं कर रहा हूँ। इस काम को मैं इसलिए कर रहा हूँ, वह कारण भी स्वयं बनता है और कर्त्ता भी स्वयं बनता है। किसी भी कर्म को जो जीवन के लिए किया जाता है, जिसके करने की कोई आवश्यकता नहीं होती क्योंकि जो कुछ आपको प्राप्त होना है वो आप साथ लाये हैं। समय-समय पर आपको प्राप्त हो जायेगा। **तीसरा** किसी भी **कर्म को करने से पहले एक वृत्ति** होती है। जैसा मैंने उदाहरण दिया था, यहाँ पर जो सभी लोग आयें हैं उनमें कुछ लोग बहुत उत्साह से आयें होंगे, कुछ लोग किसी के कहने पर आये होंगे, कुछ इसलिए आयें होंगे कि चलो चल कर देख लेते हैं, क्या है? किसी भी कर्म को करने से पहले एक वृत्ति होती है, जो मात्र आपकी अपनी होती है और

वह उत्पाद है आपके अहमयुक्त मन की। आपका मन, ईश्वरीय-मन नहीं है। बहुत नई बात बता रहा हूँ। मात्र इष्ट-कृपा से, आत्मानुभूति से बता रहा हूँ। तो उस वृत्ति के तहत वह कर्म होता है जिस पर उस कर्म की गुणात्मकता निर्भर करती है। **चौथा** अंग है स्वयं **कर्म** और कर्म आपकी अहम्युक्त बुद्धि, आपके मन और आपकी देह, तीनों के सहयोग से होता है। सबकी ज़िन्दगी का सम्बन्ध उनके अपने-अपने प्रारब्ध से है। आप को अवश्य मालूम होना चाहिये कि आपकी ज़िन्दगी का निर्देशन कौन कर रहा है? उसकी जड़ें कहाँ है? कर्म से पहले की वृत्ति आपकी है। **पाँचवीं कर्म के बाद की वृत्ति को,** जो चेतन सत्ता है, जो ईश्वरीय अंश है, वह निर्धारित करता है, उस पर उसके हस्ताक्षर होते हैं। वह वृत्ति आपके कर्म के **छठे** भाग **कर्मफल** का निर्धारण करती है, क्योंकि कर्मफल भी चाहिये। कर्म के बाद की वृत्ति ईश्वर-द्वारा इस बात के आकलन से बनती है कि इस व्यक्ति में कर्त्ता-भाव कितना था, कारण क्या था इसका और कर्म से पहले की वृत्ति क्या थी? वह बिल्कुल उसका दूध का दूध और पानी का पानी करता है। वह बना आपके कर्मफल का बीज, अभी कर्मफल नहीं बना। कर्मफल का बीज कहाँ उगता है? उसके लिए भूमि चाहिये। भूमि नहीं होगी तो वो बीज कहाँ उगेगा? वह है **आपका मन !** आपका मन, ईश्वरीय-मन नहीं जो आपने अपनी माया से बनाया था। जिसमें जन्म-जन्मांतरों के संस्कार, अवधारणायें, विधायें, वृत्तियाँ, स्वभाव, भाव नामक सब प्रकार की खाद पड़ी हुई थी। उसमें उगती है आपकी चेतन सत्ता-द्वारा हस्ताक्षरित वृत्ति और उसका बनता है **कर्मफल। उस कर्मफल का संग्रह होता है आपकी जड़ और चेतन की ग्रन्थि में।**

इस प्रकार जड़ और चेतन की ग्रन्थि मानव-मन में बन जाती है, कब? जब मानव-बुद्धि में **देहाध्यास और देहाधिपत्य** नामक दो रोग उत्पन्न होते हैं अहम्वश। यह ग्रन्थि वह कैसेट है जिसमें आपके कर्मों के फल रिकार्ड होते हैं और यह कैसेट आपके जीवन का निर्धारण करती है। कैसेट चलता है, वी. सी. आर. में लग जाता है और संसार महानाट्यशाला टी. वी. पर, स्क्रीन पर

आपके जीवन के परिदृश्य आने शुरू हो जाते हैं। आप कब पैदा होंगे, किस स्थान पर पैदा होंगे, आपके भाई-बहिन कैसे होंगे, आपके माता-पिता कैसे होंगे, आपकी तथाकथित शिक्षा कैसी होगी, आपकी पत्नी कैसी होगी, आपका पति कैसा होगा, आपकी संतान कैसी होगी, आपका धर्म क्या होगा, आपका देश कैसा होगा, आपके पड़ोसी कैसे होंगे, आपके मित्र-शत्रु कैसे होंगे, आपका सब कुछ कैसा होगा? यह उस कैसेट में अंकित होते हैं, यह निर्देशित करता है, उस पर आपका अधिकार नहीं है। इसको कहा है–**भाग्य, प्रारब्ध**। बहुत गहन बात को अति सरलीकृत करके, आपके सामने प्रस्तुत किया है। महापुरुषों ने इसको सार्वजनिक तौर पर नहीं बताया। अपने परम शिष्यों के आगे रख दिया कि इस पर मनन करिये और इसे आगे बताते जाइये जो इसका उचित अधिकारी मिले। यह है श्रुति-ज्ञान। हमारे यहाँ शास्त्र, उपनिषद, वेद-वेदान्त सब लिखे हुए हैं। यह हैं श्रुतियाँ जो आपको सुना रहा हूँ, क्योंकि आप सभी परम जिज्ञासु हैं।

मानव, अहम् से ईश्वर के विमुख हो गया यह ईश्वर-विमुखता ही जड़ता है। पशु जड़ नहीं होते, मानव जड़ होता है क्योंकि पशुओं में अहम् नहीं होता। किसी घोड़े में, गधे में यह अहम् नहीं होता कि मैंने इतने कपड़े धुलवाये हैं या इतना मैंने सामान उठाया है। कभी नहीं कहता वह, मैं सीनियर हूँ तुम से, मुझे प्रोमोशन मिलनी चाहिये। मेरा यह जन्मदिन है, मेरे बच्चों का यह जन्मदिन है। कभी जानवर अपना जन्मदिन नहीं मनाते, कभी शादी की सालगिरह नहीं मनाते। हर रोज़ ही शादी की सालगिरह होती है। कोई पुण्य-पाप नहीं होता पशुओं को। क्योंकि पशुओं का कोई प्रारब्ध नहीं होता। वे जो कुछ भी करें–क्योंकि वे पशु हैं, कोई बात नहीं। आज मानव भी पशु बने हुए हैं। **उनका प्रारब्ध है क्योंकि उनमें अहम् है, मानव नहीं छूटता, पशु छूट जाता है।** पशु कर्मों से, शुभ-अशुभ से, अच्छे से, बुरे से, पुण्य से, पाप से मुक्त होता है। मात्र उसमें चेतन सत्ता कम होती है क्योंकि वह पशु है। लेकिन पशु से बेहतर है मानव, क्यों? क्योंकि मानव ही ईश्वरीय सत्ता तक पहुँच सकता है, पशु नहीं पहुँच सकता। मानव पशु से अच्छा है,

यदि वह अहम् का कीड़ा निकल जाये तो यह अपने उस दिव्य स्वरूप का, उस चेतन सत्ता का जो इसके भीतर समाहित है, साक्षात्कार कर सकता है। तो मानव-माया से मानव-मन बना, जड़-चेतन की ग्रन्थि बनी और उस जड़-चेतन की ग्रन्थि में आपके जन्म-जन्मांतरों का रिकार्ड रहता है। यह ग्रन्थि कोई दिखाई देने वाली नहीं है। **एक अदृश्य कैसेट है—लेकिन है।** अद्भुत बात है कि इतनी चमत्कारिक मानव-देह के सम्पूर्ण जीवन को यह कैसेट निर्देशित करती है।

आपके हाथ में कुछ भी नहीं है। इस कैसेट में जो भी रिकार्डिंग होती है, उसी के अनुसार आपका जीवन चलता है। उसमें पुरुषार्थ द्वारा आप हस्तक्षेप कर सकते हैं। कौतूहल पैदा हो गया होगा सबके मन में, कि कैसे? **एक अदृश्य कैसेट, एक जड़-चेतन की ग्रन्थि जिसको मनीषियों ने अपने ध्यान में देखा,** जो न मात्र आपके जीवन का, बल्कि आपके सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नियंत्रण एवं निर्देशन करती है।

अब आप अच्छी प्रकार से जान गये होंगे उस ग्रन्थि के बनने का कारण है आपकी बुद्धि का अहम्। हम विवेक-बुद्धि से विचार करें तो हमें ज्ञात हो जायेगा कि हमारे हाथ में कुछ नहीं है। करवा कोई और रहा है और मोहर हम स्वयं की लगा लेते हैं। यही दुर्भाग्य नहीं है। जहाँ अच्छे कार्य होते हैं वहाँ तो फटाफट कहते हैं कि मैंने किया है। कोई बच्चा बहुत अच्छा हो गया तो सब जगह ढिंढोरा पीटेंगे कि मैंने बड़ा अनुशासित रखा अपने बच्चों को और कोई बदमाश निकल गया तो कहेंगे समाज खराब है, क्या करें? अच्छे कर्मों पर तुरन्त मोहर लगाती है बुद्धि और गलत हो जाये तो समाज ही ऐसा है, दशा ही ऐसी है, क्या करें?

आप मान गयें होंगे कि यह जड़ और चेतन की ग्रन्थि मात्र बुद्धि के अहम् से बनती है। इसलिए कोई कितना भी भाग्यशाली क्यों न हो, किसी को सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड का शासन भी मिल जाये, वह फिर भी असंतुष्ट ही मरेगा। ऐ बुद्धि से प्राप्तियों के पीछे भागने वालो ! संसार की सारी डिग्रियाँ ले लो, संसार के सारे बैंकों में आप ही का धन हो और संसार की सारी

प्रौपर्टी यदि आप ही की हो; तो मरेंगे फिर भी असंतुष्टि से। याद रखना और सब कुछ यहीं छोड़ जायेंगे। असंतुष्ट मरेंगे क्यों ? **क्योंकि उसकी निर्देशक जड़ और चेतन की ग्रन्थि है—जड़ता।** संतोष मात्र उसी समय मिलेगा जब आप इस जड़ता से हट जायेंगे। नहीं तो जीवन भर भटकते रहेंगे और चाहिये, और चाहिये, और चाहिये। आसक्तियों को छोड़कर हम मरते हैं और वही आसक्तियाँ हमारे पुनर्जन्म का कारण बनती हैं। कुछ भी प्राप्त कर लें हम लेकिन असंतुष्ट के असंतुष्ट ही रहते हैं। अगर आप जीवन में असीम की संतुष्टि चाहते हैं तो उस ईश्वर रूपी सागर में समाहित हो जाइये, नहीं तो दूसरा कोई रास्ता नहीं है। जो कुछ कर रहे हैं वह ईश्वर करवा रहा है। जो प्राप्ति हुई वह ईश्वर ने की। जो खो गया वह ईश्वर की इच्छा थी। सब अच्छा हो रहा है, सब भला हो रहा है, सब आपके हित में हो रहा है। जब आपका यह सिद्धान्त बन जायेगा तो आपको जहाँ आप हैं, जिस स्थिति में हैं, आपको असीम की संतुष्टि मिल जायेगी। जब आपको असीम की संतुष्टि मिलेगी तो आपका जीवन आनन्दमय हो जायेगा। नहीं तो भूल जाइये। **आनन्द**—मात्र शब्द का शब्द ही रहेगा। आनन्द का अनुभव आपको नहीं होगा। कितने भी भाग्यशाली हो जाइये आप, आपको संतुष्टि नहीं मिलेगी क्योंकि वह भाग्य आपकी जड़ और चेतन की ग्रन्थि से निर्देशित हो रहा है। जब तक आप इस जड़ और चेतन की ग्रन्थि में से जड़ता को नहीं हटा देते, आपको जीवन के तथाकथित सुख मिल सकते हैं लेकिन आपको उनका आनन्द नहीं मिलेगा। **क्यों ?**

आपकी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ जब आपको सुख भी देती हैं तो वे भी आपके आनन्दस्वरूप से लेकर देती हैं। अगर आपके भीतर आनन्द खो गया है तो चाहे आपकी देह स्वस्थ भी हो, चाहे आपके पास सारे विश्व के सुख-साधन भी हों, आपकी इन्द्रियाँ आपको सुख भी नहीं दे सकतीं। यह दिव्य कानून है, ईश्वर ने मानव-देह बहुत सोच-समझकर बनाई है। आपके पास कितना अच्छा संगीत हो, सारे बड़े से बड़े उपकरण लगे हों, आपके कान भी बहुत स्वस्थ हों लेकिन वह संगीत आपको विक्षिप्त कर देगा, यदि अंदर आपका

आनन्द खो गया है। कितना स्वादिष्ट भोजन हो आपकी जीभ भी स्वस्थ हो, तो भी आपको वह खाना देखकर उल्टी होने की इच्छा होगी, कि हटाओ यह खाना हमको अच्छा नहीं लगता। क्यों नहीं अच्छा लगता? क्योंकि अंदर के आनन्द की क्षमता क्षीण हो गई है। तो सुख-सुविधाओं के पीछे भागने वालो ! यह ज़रूर सोच लेना कि बाहर सुख-सुविधाओं के पीछे भाग रहे हो, तो थोड़ी देर अन्तर्यात्रा भी कर लो ! कि आनन्द के साथ मेरा सम्बन्ध है कि नहीं ! यदि आपका आनन्द के साथ सम्बन्ध नहीं है तो आपको वह सुख-सुविधायें दुःख देंगी, हताश कर देंगी।

एक दिन ऐसा जीवन में अवश्य आयेगा जब आपके पास वे सुख-सुविधा की वस्तुएँ नहीं होगीं और वे वस्तुएँ होंगी भी तो आपकी इन्द्रियों में भोगने की क्षमता नहीं होगी। वह सुख जब उस समय याद आयेगा जो आपने अपने यौवन में लिया है, उस समय वह आपको निराशा में ले जायेगा। इसलिए यह पाश्चात्यानुगमन बंद कर दो ! जो मात्र सुख-सुविधाओं के पीछे भगाने वाला है। आनन्द को तो ये जानते ही नहीं हैं। आनन्द का वहाँ दृष्टिकोण ही नहीं है जबकि हमारे यहाँ हर चीज़ के साथ आनन्द जुड़ा हुआ हैः—

आनन्दमय जन्म	- **अवतरण**	***आनन्दमय जीवन***	- **लीला**
आनन्दमय मृत्यु	- **निर्वाण**	***आनन्दमय कष्ट***	- **तप**
आनन्दमय खाना	- **प्रसाद**	***आनन्दमय पीना***	- **चरणामृत**
आनन्दमय देना	- **दान**	***आनन्दमय लेना***	- **अधिकार**
आनन्दमय खोना	- **फकीरी**	***आनन्दमय पाना***	- **अमीरी**
आनन्दमय बैठना	- **उपासना**	***आनन्दमय रोना***	- **ईश्वरीय याद**

अरे ! आप परम ऐश्वर्यवान देश में जन्मे हो। अगर कोई ऐश्वर्यवान देश है पूरे संसार में तो मात्र **भारत** है। ये टी. वी. के विज्ञापनों से स्वयं को भ्रमित मत करना कि मेरे पास अमुक फ्रिज होता, अमुक कार होती, अमुक बंगला होता तो मैं समृद्ध होता। आप गुफाओं में भी रहो तो आप ऐश्वर्यवान

हैं क्योंकि आपके जीवन के हर पहलू के साथ आनन्द जुड़ा हुआ है। अरे, हम तो कभी भोगवादी थे ही नहीं ! क्योंकि हमारे ऋषि-मनीषियों ने हमें अन्तःदौड़ बताई थी कि अपने आनन्द की तरफ दौड़ो। जिस वक्त आपको अपने भीतर का आनन्द मिल जायेगा उस वक्त आपको वस्तुओं की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। भोग-पदार्थ आपके चरणों में पड़े होंगे, आपका उनको छूने का दिल नहीं करेगा।

भाग्य क्या है और भाग्यफल क्या है? दोनों में बड़ा अन्तर है। प्रारब्ध जैसा भी हो, किस्मत जैसी भी हो यह मात्र आपको वस्तुओं की प्राप्तियों की तरफ ले जायेगी लेकिन उनका भोग और आनन्दपूर्वक भोग इसलिए नहीं मिलेगा कि उनके साथ जड़ता जुड़ी हुई है। अब इससे छुटकारा कैसे पायें? **सर्वप्रथम** यह भाग्य का बीज जो था, वह था आपकी बुद्धि का अहम् और उसके कारण बनी जड़ और चेतन की ग्रन्थि और उस ग्रन्थि में रिकार्डिंग हुई आपके कर्मों के फल की, जिसका बीज था किसी भी कर्म के बाद की वृत्ति, जो ईश्वर-द्वारा, चेतन-सत्ता द्वारा हस्ताक्षरित थी। अब जन्म-जन्मांतरों में कोई जीव धक्के खाता रहता है। आप पैदा हुए, पैदा हुए तो मरेंगे भी ज़रूर। जो वस्तुएँ प्राप्त हैं या प्राप्त होंगी तो उन्हें छोड़कर अवश्य जाना पड़ेगा, साथ में कुछ नहीं जायेगा। जीवन शून्य से शुरू होता है और शून्य में ही समाप्त होता है। क्योंकि जब आपको चिता पर डाला जायेगा तो डोम कफ़न भी उतार लेते हैं। घरवाले सब अँगूठियाँ, हार आदि गहने उतार लेंगे। बड़े-बड़े गणितज्ञ यहाँ पर बैठे हैं। जो प्रश्न शून्य से शुरू हो और शून्य पर ही समाप्त हो, तो उसका उत्तर भी शून्य ही होगा। अतः मध्य में जितनी भी गणना होगी, गुणा, भाग, जोड़, घटा, वह सब शून्य होनी आवश्यक है। तो इस शून्य को कीमत कैसे दें? आप जो कुछ भी प्राप्त कर रहे हैं भौतिक रूप से सब शून्य है। थोड़ी देर ईश्वर के पास बैठकर उसके बाईं ओर एक लगा दिया करिये, तो जीवन सार्थक हो जायेगा, नहीं तो निरर्थक रहेगा। नकारात्मक बिता रहे हैं लोग जो बहुत व्यस्त हैं, मात्र शून्य एकत्र कर रहे हैं। ज़रा नुकसान हो गया तो डॉ. साहब डिप्रैशन हो गई, एक करोड़ का नुकसान हो गया। आप पैदा होते ही

अपने साथ क्या लेकर आये थे, बस ! नंगे आये थे। मरते समय क्या ले जायेंगे ? ऐसे ही जायेंगे। थोड़ी देर उनके चेहरे पर लाली आ जाती है, घर जाते-जाते फिर निराशा हो जाती है।

कभी न कभी किसी महामानव में विवेक-बुद्धि जाग्रत होती है कि इस प्रारब्ध से पीछा कैसे छुड़ाऊँ ? तो इसके तीन रास्ते हैं। सर्वप्रथम है—**अपने मन का पूर्ण समर्पण एवं** अपना अहम् छोड़कर पूर्णतया ईश्वर के सम्मुख हो जाये:—

''सनमुख होहिं जीव मोहि जबहीं, कोटि जन्म अघ नासेहिं तबहीं।''

जब विभीषण प्रभु राम के सामने पहुँचता है कि प्रभु ! मैं पापी हूँ, मैं राक्षसकुल में पैदा हुआ हूँ, तो भगवान श्री राम ने कहा कि विभीषण ! उठो, तुम राम के सम्मुख खड़े हो ! यह राम की प्रतिज्ञा है कि जब जीव मेरी ओर मुड़ता है तो मैं उसके करोड़ों जन्मों का पाप नष्ट कर देता हूँ।

तो भटकते हुए जीव में जब यह जनून पैदा होता है कि, ऐ खुदा ! तुम एक बार अपना दीदार दे दो, मैं तुम्हें सलाम करना चाहता हूँ, बर्क गिराओ और जला दो मुझे ! लेकिन एक बार मुझे अपना दीदार दे दो ! तो उस समय उसके करोड़ों जन्मों के पाप स्वयं नष्ट हो जाते हैं क्योंकि पापों की रिकार्डिंग कब हुई थी ? जब यह ईश्वर के विमुख हुआ था और अब वह ईश्वर के सम्मुख हो जाता है। वे पाप वास्तव में इसने किये ही नहीं होते, परन्तु प्रारब्धवश ये माना होता है कि मैं पापी हूँ। मान्यता बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसने खुद कुछ किया ही नहीं होता, करने वाला करवा रहा होता है, लेकिन प्रारब्धवश, बुद्धि के अहम्वश यह स्वयं को पापी-पुण्यी स्वयं ही घोषित कर देता है। उस अपने बुने हुए जाल में यह स्वयं ही फँस जाता है:—

''रहम की न होती जो आदत तुम्हारी,
तो दुनिया न करती इबादत तुम्हारी,
गुनहगार गर तूने बक्शे न होते,
तो सूनी ही होती अदालत तुम्हारी !

गुनाह करना मेरी आदत थी,
करके कबूल करना मेरी शराफत थी,
मैं करता गया तूने रोका नहीं,
मैंने समझा इसमें इज़ाज़त तुम्हारी !''

इसमें यह स्वीकृति है कि तुम करवाने वाले हो। यहाँ बुद्धि की जड़ता समाप्त हो गई, कि जो कुछ मैंने किया है वह तुमने करवाया है। वहाँ भी इसका प्रारब्ध समाप्त हो जाता है। वहाँ भी इसको माफी मिल जाती है, क्षमा कर दिया जाता है वह। प्रभु यहाँ तक ही नहीं बल्कि इसकी उँगली किसी संत को भी पकड़ा देते है कि भविष्य में सत्संग द्वारा इसको सद्बुद्धि मिले।

यह पहला रास्ता है प्रारब्ध से छूटने का और दूसरा रास्ता है **साफ मुकर जाना।** तो उसमें वह एक ही रट लगाता है कि मैंने कुछ नहीं किया ! जो भी करवाया है तुमने करवाया है, **मैंने कुछ नहीं किया।** जब यह बात आती है तो उसकी बुद्धि का अहम् खतम हो जाता है और तब भी उस प्रारब्ध से यह मुक्त हो जाता है। और इसका तीसरा आयाम् है :—

''खुदी को कर बुलन्द इतना,
कि हर तकदीर से पहले,
खुदा बन्दे से खुद पूछे,
बता तेरी रज़ा क्या है ?''

आप अपनी चेतनता को इतना बढ़ा लीजिये कि तुम खुदा हो, मैं भी खुदा हूँ क्योंकि मैं तुम्हारी इकलौती संतान हूँ। तुम्हारे पर कोई कायदा-कानून लागू नहीं होता, मुझ पर क्यों होता है ? इसलिए तुम मेरे पर कानून लागू करते हो क्योंकि तुम समर्थवान हो, मैं असमर्थ हूँ। तुम बल, बुद्धि, विद्या-निधान हो, मैं बल, बुद्धि विद्याहीन हूँ इसलिए तुम मुझे फँसाते हो।

दैवीय आपदायें आती हैं—जैसे भूकम्प आते हैं तो हज़ारों लोग मर गये, कोई दोषी नहीं, किसी को नहीं पकड़ा जाता। जब कोई मानव गलती करता है, जब कोई गलती मुझ से होती है, मैं पकड़ा क्यों जाता हूँ ? क्योंकि तुम

समर्थवान हो, मैं असमर्थ हूँ। शिव या शव दोनों में से एक बन जाओ। यदि आप परम समर्थवान होना चाहते हैं तो उसके दरबार में कुछ क्षणों के लिए सम्पूर्णतया असमर्थ हो जाइये। अपने आपको मात्र डेढ़-दो किलो राख के अलावा कुछ मत समझिये। जब किसी संत के दरबार में, ईश्वर के दरबार में जाना है तो अपना अहम् छोड़ कर जाइये। यदि आप अपनी डिग्रियों का, अपने धन का, अपने पद का अभिमान लेके जायेंगे तो कुछ नहीं पल्ले पड़ेगा। बल्कि कुछ न कुछ खो जायेगा। इसलिए कुछ देर के लिए अपने आपको डेढ़-दो किलो राख के अलावा कुछ मत समझिये, यदि आप समर्थवान होना चाहते हैं। वह ईश्वर आपका सारा प्रारब्ध काटकर, आपको अपनी शरण में ले लेते हैं, कि हे प्रभु! मैं बल, बुद्धि, विद्याहीन हूँ, असमर्थ हूँ, अशक्त हूँ, इसलिए मैंने कुछ नहीं किया। सारे जीवन का मुख्त्यारनामा आम अपने ईश्वर को दे दीजिये। कि हे प्रभु ! मैं इतने जन्मों में धक्के खाता रहा हूँ, मेरे पल्ले कुछ नहीं पड़ा। तुम भी जानते हो, मैं भी जानता हूँ, क्योंकि तुमने मुझे जनवा दिया है। बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह मत कहना कि मैं जानता हूँ नहीं तो फिर फँस जाओगे, कि मैं जन्म-जन्मांतरों में धक्के खा रहा हूँ प्रभु ! और अपनी बल, बुद्धि, विद्या के कारण मैं फँसा हूँ। मैं हमेशा करता रहा कुछ न कुछ और मैं फँसता रहा। तुम भी जानते हो और तुमने मुझे भी जनवा दिया है। अगर तुमने मुझे बल, बुद्धि, विद्या और दे दी तो मैं फिर भी कुछ करूँगा और मैं करूँगा तो तुम मुझ पर केस चलाओगे। मेरा प्रारब्ध बनाओगे। मैं फँस जाऊँगा प्रभु ! इसलिए मुझे बल, बुद्धि, विद्याहीन, असमर्थ और अशक्त कर दो और मेरी ओर से मेरा जीवन तुम चलाओ। जब आप कोई सम्पदा संभाल नहीं सकते तो न्यायालय में जाकर मुख्त्यारनामा आम देते हैं कि मैं बीमार हूँ, मैं यह जायदाद संभाल नहीं सकता हूँ या मैं विदेश में रहता हूँ इसलिए मैं पावॅर ऑफ एटोरिनी जनरल अमुक-अमुक व्यक्ति को देता हूँ इसी प्रकार आप अपने सम्पूर्ण जीवन का मुख्त्यारनामा आम तहेदिल से, तहेरूह से, तहेमन से ईश्वर को दे दीजिए। तू मेरी ओर से मेरा जीवन चला और मैं देखूँगा तुम मेरा जीवन कैसे चलाते हो !

''बहुत जन्म जिये रे माधो ! यह जन्म तुम्हारे लेखे !

बहुत बड़ा जुआ है यह। क्योंकि इसके लिए आपको तहेदिल से, तहेमन से, तहे रूह से, बल, बुद्धि, विद्याहीन, असमर्थ एवं अशक्त होना परमावश्यक है। कभी प्रभु ने जीवन चलाना शुरू किया और कुछ अच्छा हो गया तो यह नहीं कि आप डींग हाँकते फिरो कि मैंने अच्छा किया। इसलिए प्रभु बीच में परीक्षा भी ले सकते हैं कि इसने पूरी पावॅर ऑफ एटोरिनी दी है कि नहीं दी। अगर आप जीवन का परमानन्द लेना चाहते हैं, जीवन का वास्तव में स्वाद लेना चाहते हैं तो आज ही मुख्त्यारनामा आम अपने इष्ट को दे देना क्योंकि आप जीवन को चलाने में पूर्णतया असमर्थ हैं। जब आप मुख्त्यारनामा आम ईश्वर के चरणों में दे देंगे, उसके चरणों में खो जायेंगे तो प्रभु आप से सब कुछ वह करवायेंगे जिसके लिए प्रभु ने आपको बनाकर भेजा है। मैं जो कह रहा हूँ इसे समझने की कोशिश करिये ! यह निट्ठलेपन की शिक्षा नहीं दे रहा हूँ मैं। अरे ! आपने तो कभी ईश्वर से पूछा ही नहीं कि प्रभु ! आपने मुझे क्यों भेजा है? आप अपनी तुच्छ बल, बुद्धि से क्या-क्या करते रहते हैं? और बाद में आसक्तियों को छोड़कर मर जाते हैं। हनुमान जी का मैंने कई बार उदाहरण दिया था, जब वह सागर के तट पर मुँह लटकाये बैठे होते हैं तो जामवंत जी उनको याद दिलाते हैं कि तुम्हारा जन्म तो राम-काज के लिए हुआ है, **'राम काज लगि तव अवतारा' !** हनुमान जी को अपनी शक्तियों का ज्ञान नहीं था अतः सागर को लाँघने की बात पर वे चुप रहे ओर जामवन्त जी उन्हें जाग्रत करने में लगे रहेः—

''कहइ रीछपति सुनु हनुमाना !
का चुप साधि रहेहु बलवाना।
पवन तनय बल पवन समाना।
बुद्धि विवेक विज्ञान निधाना।
कवन सो काज कठिन जग माहीं।
जो नहिं होइ तात तुम पाहि।''

तो जैसे ही जामवन्त जी ने कहाः—

'रामकाज लगि तव अवतारा।'

तो *'सुनतहिं भयउ पर्वताकारा।'*

हनुमान जी में असीम शक्तियाँ जाग्रत हो गईं कि मैं सागर को खेल-खेल में लांघकर, रावण को उसके परिजनों सहित मारकर उस त्रिकूट पर्वत को ही उखाड़ लाता हूँ जिस पर लंका बसी है।

हम नहीं जानते, प्रभु ने हमें क्यों भेजा है? और होश संभालते ही हम अपना कैरियर बनाने लगते हैं। हमें यह भी जानने की इच्छा नहीं होती, फुर्सत नहीं होती कि ईश्वर ने हमको भेजा क्यों है? और यह तब पता चलेगा जब आप अपने जीवन का मुख्त्यारनामा आम प्रभु को भेंट कर देंगे, सौंप देंगे कि प्रभु आप हमारा जीवन चलाइये। मुझे आप बताइये कि आपने मुझे क्यों भेजा है? आप प्रभु को यह मौका तो दीजिये। आप सारा जीवन इतना व्यस्त रहते हैं कि प्रभु को मौका ही नहीं देते। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। हनुमान जी में वास्तव में इतनी शक्ति पैदा हो गई, कब? जब जामवंत जी ने उन्हें याद दिला दिया, कि ''**राम काज लगि तव अवतारा।**''

जब आप में अथाह शक्ति पैदा हो जाती है, उस समय मानव अपना विवेक खो देते हैं, प्रभुता पाकर लोग अपना विवेक खो देते हैं लेकिन हनुमान जी में इतनी अथाह शक्ति पैदा होने के बाद भी जामवंत जी को नहीं भूले, कि हे जामवंत! अब मेरे में इतनी शक्ति पैदा हो गई है कि मैं अकेले ही समुद्र पार जाकर रावण की सारी सेना को मारकर आ सकता हूँ और पूरा त्रिकूट पर्वत उखाड़कर ला सकता हूँ, लेकिन अब मुझे आप उचित सलाह दीजिये कि मैं क्या करूँ? तो जामवंत जी ने कहा, ***''इतना करहु तात तुम जाई, सीतहिं देखि कहहु सुधि आई।''*** हे तात! आप जाइये और मात्र माता सीता की खोज-खबर लेकर आइये। कुछ लोगों को भ्रम हो गया मेरी बात से, कि प्रभु को मुख्त्यारनामा आम दे दें तो फिर हम क्या करेंगे? सुबह उठिए अपने प्रभु के पास बैठिये, पूछिए, कि यह सुन्दरतम काया जो आपने मुझे दी, यह क्यों दी, मेरे बिना तुम्हारा क्या काम रुका हुआ था? प्रभु को दिव्य अधिनियम के तहत् आपको आपके कर्त्तव्य का सिमरन दिलाना पड़ता

है। उसका प्रमाण क्या है। आपकी समस्त शक्तियाँ एकदम असंख्य गुणा बढ़ जायेंगी जो आपकी बौद्धिक शक्ति है, आपकी शारीरिक शक्तियाँ हैं वे एकदम गणना के बाहर हो जायेंगी। कब? जब आप अहम् रहित होकर अपने जीवन का मुख्त्यारनामा-आम ईश्वर को समर्पित करके, कि हे प्रभु! मैं कुछ नहीं करूँगा, मुझे यह बताइये कि तुमने यह सुन्दर काया बनाई किसलिए है? तो ईश्वर आपसे वह करवायेंगे जिसके लिए ईश्वर ने आपको बनाया है और उसके लिए आपको तुरन्त समस्त प्रकार की शक्तियों से सुशोभित कर देंगे।

इस प्रकार आप जीवन का भरपूर आनन्द लेंगे और आपके कर्म आनन्द में प्रारम्भ होकर, आनन्द में होते हुए अन्ततः आनन्द में ही समाप्त होंगे। सम्पूर्ण जीवन प्रारब्ध से मुक्त हो जायेगा एवं ईश्वर-द्वारा स्वयं सम्पादित होगा।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय।''

(23, 30 सितम्बर, 2001)

लक्ष्मी-दर्शन

आज के दीपावली के शुभ अवसर पर इष्ट-प्रेरणा से बहुत अद्‌भुत एवं ऐश्वर्य से भरपूर और भारतीय संस्कृति के हृदय से निकला हुआ,मात्र भारत-भूमि का उत्पाद **'लक्ष्मी-दर्शन'** आपके सम्मुख रखूँगा।

लक्ष्मी-दर्शन मात्र हमारे ऋषि-मनीषियों की कृपा एवं भारतभूमि का उत्पाद है। महालक्ष्मी-शक्ति का स्वरूप क्या है, सौभाग्य-लक्ष्मी क्या है, भाग्य-लक्ष्मी क्या है, दुर्भाग्य-लक्ष्मी क्या है? इस विषय पर आपकी असाधारण एकाग्रता वांछनीय है। मैं अपने प्रवचनों में ईश्वर की शास्त्रीय परिभाषा आपके सम्मुख कई बार रख चुका हूँ। जो सत्य है, चेतन है एवं आनन्द है और तीनों का अविरल एवं अकाट्य संगम है, उसका नाम है–**ईश्वर।** जो छः दिव्य गुणों से विभूषित है–**परम सौंदर्यवान, महाज्ञानवान स्वयं में ज्ञानस्वरूप, परम ऐश्वर्यवान, परम ख्यातिवान, महासशक्त और अन्ततः परम त्यागवान जिसका स्वरूप है;** उसका नाम है–**ईश्वर**। उस साकार-निराकार, उस धर्मातीत, कालातीत, लिंगातीत, सम्बन्धातीत, देशातीत ईश्वर का हमारी भारतीय संस्कृति में **'त्रिदेव'** के रूप में एक अकाट्य दर्शन है; **ब्रह्मा, विष्णु, महेश**।

ईश्वर का ज्ञानस्वरूप परम विशिष्ट गुण है। ज्ञान के देवता हैं – **ब्रह्मा** और उनकी शक्ति है–**सरस्वती**। सौंदर्य एवं ऐश्वर्य के देवता हैं–**विष्णु** और उनकी शक्ति है–**महालक्ष्मी।** ख्याति और त्याग के देवता हैं–**शंकर,** जिनकी महाशक्ति स्वयं **दुर्गा भवानी** है। तो आज हम जिस लक्ष्मी का वर्णन कर रहे हैं वह सौंदर्य एवं ऐश्वर्य की देवी है। यह दर्शन मात्र भारत ने

दिया है; मात्र भारत ने। केवल धन का नाम लक्ष्मी नहीं है। महालक्ष्मी के सात अंग हैं। **सुख, शांति, सन्तोष, सम्पन्नता, स्वास्थ्य, स्वजन एवं सत्संग।** सात स्वरूपों का अकाट्य संगम–उसका नाम है–**ऐश्वर्य और इस ऐश्वर्य की देवी है महालक्ष्मी।** अब इनके सातों अंगों को जो मैं कई बार वर्णित भी कर चुका हूँ, पुनः संक्षेप में आपके सम्मुख रखूँगा। **पहला अंग है–सुख**। यह सुख क्या है? सुख है–दैहिक व इन्द्रियजनित। कान का सुख, नाक का सुख, नेत्रों का सुख व त्वचा का सुख आदि। इन सबके सुख के लिये चाहिये **'सुख-साधन'**; और इन **सुख-साधनों** को भोगने के लिये चाहिये स्वस्थ देह और स्वस्थ इन्द्रियाँ। एक चीज़ और चाहिये; वह है–**आपके भीतर का 'आनन्द'**। यदि आपके भीतर का आनन्द नहीं है तो सारे संसार के सुख-साधन और परम स्वस्थ देह भी आपको सुख नहीं दे सकती और यदि भीतर का आनन्द है तो आप सदा परम सुखी हैं। आपको सुखसाधनों की भी आवश्यकता नहीं है:–

''देहि मे सौभाग्यं आरोग्यं देहि मे परमं सुखम्।''

परम सुख को भारतीय दर्शन ने पारिभाषित किया है। **'परम सुख'** ऐसा सुख है जो आनन्दमय हो, कुत्ते-बिल्ली वाला सुख नहीं। इस सुख के लिये तप करना पड़ता है। अपने आनन्द-स्वरूप को जाग्रत करना परमावश्यक है। हम वस्तुओं के पीछे भागते हैं, सुख-सुविधाओं के पीछे भागते हैं, लेकिन वो सुख-सुविधाएँ हमको अतृप्त ही रखती हैं। क्योंकि सुख हम इन्द्रियों से लेते हैं; और इन्द्रियों को, जब तक हमारे भीतर का आनन्द जाग्रत नहीं होगा, हम सुखी नहीं कर सकते। लक्ष्मी का दूसरा अंग है–**संतोष**:–

''गोधन, गजधन, बाजधन और रत्नधन खान।
जब आवै संतोष धन सब धन धूलि समान।''

यदि कोई व्यक्ति संतोषी नहीं है तो उसको सारे महाब्रह्माण्ड की निधि भी संतुष्ट नहीं कर सकती, सुखी नहीं कर सकती। अतृप्त का अतृप्त ही रहेगा वह। आसक्तियों को छोड़कर उसकी मृत्यु होगी। वह पुनः जन्म लेगा,

फिर मरेगा, फिर जन्म लेगा। इस प्रकार कालचक्र में जन्म-जन्मान्तरों तक धक्के खाता रहेगा वह, जब तक उसको संतुष्टि नहीं मिलती। इस संतुष्टि के विषय में मैं कई बार वर्णन कर चुका हूँ और आज भी करूँगा, क्योंकि श्री-श्री लक्ष्मी के संदर्भ में संतोष का वर्णन अति आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति आज असंतुष्ट है। मैंने गिलास का एक उदाहरण दिया था कि एक गिलास है, जिसका एक निश्चित आयतन है। यदि वह पानी से आधा भरा हुआ है तो उसके ह्रदय में इच्छा होती है कि मैं पूरा भर जाऊँ। गिलास भर जाता है। जब गिलास भर जाता है तो वह कुछ दिनों के लिये प्रसन्न हो जाता है कि 'मैं भर गया'। कुछ दिनों बाद जब वह एक लोटे को देखता है तो उसकी संतुष्टि गायब हो जाती है। अब वह गिलास, लोटा बनना चाहता है। किसी संत का आशीर्वाद मिलता है और वह लोटा बन जाता है। लोटा भी पानी से पूरा भर जाता है और लोटे को एक दिन बाल्टी नज़र आती है। वही प्रक्रिया बाल्टी के साथ भी चलती है। बाल्टी को ड्रम नज़र आता है और ड्रम को कुआँ नज़र आता है और अन्ततः कुआँ भी असंतुष्ट। कुएँ को नदिया नज़र आती है। नदिया भी असंतुष्ट क्योंकि वो भागती रहती है। असंतुष्ट भागता है, संतुष्ट कभी नहीं भागता। अन्ततः वह नदिया अपना नाम व रूप खोकर सागर में जब तक विलीन नहीं हो जाती, तब तक उसको परम संतुष्टि नहीं मिलती। तो यह असीम की संतुष्टि की अति सरलीकृत प्रक्रिया मैंने आपके सम्मुख रखी है। जब तक हम अपने परम-स्वरूप, उस ईश्वर के साथ जुड़ नहीं जाते या उसमें विलीन नहीं हो जाते, तब तक हमको परम संतुष्टि नहीं मिल सकती। तो **पहला** स्वरूप लक्ष्मी का है—**'सुख'**। सुख भी तब मिला जब हमने आनन्द के साथ अपना सम्पर्क किया और **दूसरा—'सन्तोष'**, संतुष्टि भी तब मिली जब हमने अपने उस परम स्वरूप—सागर रूपी ईश्वर के साथ अपना सम्पर्क किया।

लक्ष्मी का **तीसरा** स्वरूप है—**'शान्ति**।' जहाँ सुख होगा वहाँ **'संतोष'** होगा और वहाँ **शान्ति** अवश्य होगी, अन्यथा **शान्ति** मात्र एक भुलावा और दिखावा है। जो व्यक्ति संतुष्ट नहीं है वह व्यक्ति सुखी नहीं है और वह कभी

शांति भी प्राप्त नहीं कर सकता। शांति एक रुहानी विषय है जोकि एक ईश्वरीय गुण है। अब आइए **'समृद्धि'** पर; जिसको ही लोग लक्ष्मी का स्वरूप समझते हैं कि मात्र धन, सम्पदा ही लक्ष्मी है। इसी को कहा है **'समृद्धि और सम्पन्नता'।** प्रभु श्री हनुमान जी ने जब अशोक वाटिका में जाकर माता सीता को जो साक्षात् लक्ष्मी का अवतार थीं, प्रभु श्री राम की अगूँठी दी तो माता अति प्रसन्न हो गईं और उन्होंने हनुमान जी को वरदान दिया—**''अष्ट सिद्धि नवनिधि के दाता।''** कि हे हनुमान ! तुम आठ महासिद्धियों के और नौ निधियों के दाता बनोगे। उनके पास पहले से ही यह आठ सिद्धियाँ और नौ निधियाँ थीं। माता सीता ने वरदान दिया कि तुम ये सिद्धियाँ और निधियाँ, जिस पर तुम प्रसन्न हो, उनको दे सकते हो। अब ये नौ निधियाँ क्या हैं? हमारे शास्त्रकारों ने धनलक्ष्मी को 108 स्वरूपों में बाँटा है और वर्णन करने के लिये 108 स्वरूपों को 12 से विभाजित किया, तो बने 9 स्वरूप। उन 9 स्वरूपों में तीन सतोगुणी, तीन रजोगुणी और तीन तमोगुणी हैं। लक्ष्मी के चौथे स्वरूप सर्वसम्पन्नता में धन-लक्ष्मी के 9 स्वरूपों का ज्ञान होना अति आवश्यक है। तीन सतोगुणी, तीन रजोगुणी और तीन तमोगुणी। जहाँ महालक्ष्मी के सन्दर्भ में सर्वसम्पन्नता का वर्णन करते हैं तो उसका अर्थ है, **सतोगुणी धनलक्ष्मी**—वह लक्ष्मी जो स्वयं आती है, आनन्द में आती है, आनन्द में आपके पास रहती है और जिसका स्वतः ही आनन्द में खर्च होता है। जब वह आती है तो आप आनन्दित, जब वह जाती है तो आप आनन्दित। वह तप पर आधारित होती है।

मानव-शिशु उत्पन्न होता है तो उसको स्वतः एक मानव-देह मिलती है जिसके लिये कुछ नहीं करना पड़ता और इसी प्रकार हमें स्वतः ही माता-पिता मिलते हैं। एक परिवार मिलता है, रहने का स्थान मिलता है और यदि आप विचारपूर्वक मनन करें तो जीवन की प्रत्येक भौतिक उपलब्धि हमको स्वतः होती है। तथाकथित शिक्षा जो हम लेते हैं वह भी स्वतः ही होती है। विवाह-शादी भी स्वतः होती है और पति-पत्नी भी स्वतः मिलते हैं और आपकी संतान भी स्वतः होती है। उनकी विभिन्न प्रतिभायें, उनका विभिन्न

प्रारब्ध, उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यादि भी स्वतः ही मिलते हैं। आपकी मृत्यु स्वतः होती है। आपके जीवन का समय निर्धारित है। आपको नाम, यश, पद सब अपने भाग्य के अनुसार मिलते हैं। बहुत बड़े-बड़े लोग भाग्य के निर्माता स्वयं को समझ लेते हैं। उनका बस चलता तो अपने शरीर का निर्माण भी माँ के गर्भ में स्वयं करवाते। होश सम्भालते ही वो अपने भाग्य के निमार्ता बन जाते हैं लेकिन सौभाग्य के निर्माता नहीं बन सकते। अरे ! 9 महीने 7 दिन आप माँ के गर्भ में रहे; आपने क्या किया? देह आपको स्वतः मिली। आपको आपकी प्रतिभाएँ, आपकी शारीरिक शक्ति, आपकी बौद्धिक शक्ति सब कुछ बनी बनाई मिली, उसके लिये आपने कुछ नहीं किया। भाग्य से मिलती है आपको देह, आपके पैदा होने का स्थान, आपके माता-पिता, आपका परिवार, आपकी शिक्षा, आपकी पत्नी, आपका पति, आपका पद, आपकी आर्थिक स्थिति व आपकी आयु और इसी भाग्य से मिलती है आपको धन-सम्पदा इत्यादि। लेकिन दुर्भाग्यवश जब हम उन प्राप्तियों पर अपनी मोहर लगा देते हैं; जो हम अवश्य लगाते हैं कि मैंने इतनी शिक्षा इसलिये प्राप्त की क्योंकि मैं ऐसा चाहता था, मेरी सन्तान ऐसी इसलिये हुई क्योंकि मैं ऐसा चाहता था। जो बच्चा लायक हो जाये तो डींग हांकते नहीं थकते कि मैं बड़ा अनुशासित आदमी हूँ, मेरी संतान, मेरा लड़का भी बड़ा अनुशासित है और यदि कोई बदमाश निकल जाये तो कहेंगे कि समाज खराब है, मैं क्या करूँ? वहाँ नहीं पकड़ते हम अपना हाथ। हर चीज़ के लिये हम स्वयं को जिम्मेवार ठहराते हैं कि मैंने ही किया है। मैं इतना मेहनती हूँ। जो धन, सम्पदा इत्यादि हमको मिली भाग्यवश और जब हमने उसके ऊपर अपनी मोहर लगा दी कि **'मैं कर्त्ता हूँ'** तो **वह भाग्यलक्ष्मी, दुर्भाग्यलक्ष्मी बन जाती है।** प्रभु ने आपको स्वतः दिया है आपका भाग्य, **जब मूर्खतावश आप उस पर अपनी मोहर लगाने से बाज़ नहीं आते तो आप भाग्यवश प्राप्त किसी वस्तु का भोग नहीं कर सकते-यह दिव्य अधिनियम है, कानून है।** वस्तु मिलेगी आपको, धन मिलेगा पर वो धन आपके लिये तनाव का कारण बन जायेगा। सम्पदा **मिलेगी लेकिन वह**

मुकदमेबाज़ी का हेतु बनेगी। संतान मिलेगी लेकिन वो सिरदर्द बनी रहेगी। पति मिलेगा, पत्नी मिलेगी लेकिन वो मन-मुटाव वाला सम्बन्ध रहेगा। पद मिलेगा, भय-युक्त। जहाँ भय होगा वहाँ भोग नहीं हो सकता क्योंकि जो व्यक्ति भयभीत होगा वह अपनी वस्तुओं को नहीं भोग सकता। आपकी अपनी सेहत, आपकी अपनी देह आपको भयभीत रखेगी। माता-पिता, आपकी संतान, आपके भाई-बंधु और आपकी सब प्राप्तियाँ आपको भयभीत रखेंगी, इसलिये आप प्राप्तियों को भोग नहीं सकते और यह कब होता है जब आप भाग्य से प्राप्त चीज़ों पर मूर्खतावश अपने अहम् की मोहर लगा देते हैं। वे **भाग्यलक्ष्मी** बन जाती है—**दुर्भाग्यलक्ष्मी।** यह भारतीय दर्शन है, जो आपको और कहीं नहीं मिलेगा। जब कुछ संतोषी व्यक्ति सत्संग के प्रभाव से, विशुद्ध संस्कारों के, जप-तप, यज्ञ, हवन इत्यादि के प्रभाव से भाग्य-द्वारा मिली हुई वस्तुओं को ईश्वर-निमित्त कर देते हैं कि प्रभु यह आपने दी हैं, यह सब महिमा आपकी है तो वह सौभाग्य बन जाता है। अहमवश् वही प्राप्ति आपके लिये दुर्भाग्य बन गई और जब सन्तोष से आपने उसको प्रसाद के रूप में ग्रहण किया कि प्रभु यह आपकी ही है, सब कुछ आपका ही है, तो वही प्राप्ति आपके लिये सौभाग्य बन जाती है। देखिये एक विचारधारा बदलने से ज़िन्दगी के भी कितने पक्ष बदल जाते हैं। सतोगुणी निधि कब होगी? जब ईश्वर-कृपा द्वारा भाग्यवश मिली हुई चीज़ों से असीम का सन्तोष हो जायेगा। अपनी देह को और अपनी प्राप्तियों को, सुबह उठते ही जब आप देव-दरबार में अपने इष्ट के सामने प्रतिदिन समर्पित करेंगे। कोई चीज़ खो गई तो बहुत अच्छा, प्रभु आपने इसमें मेरा हित देखा होगा; तो ऐसे व्यक्ति परम सौभाग्यशाली होते हैं। उनका धन सौभाग्य-लक्ष्मी होता है। जब असन्तुष्ट होते हैं तो दुर्भाग्यशाली होते हैं। वह तमोगुणी धन उनके लिये बिमारियों व परिवार में कलह का कारण बन जाता है।

इसके बाद आता है **'स्वास्थ्य'।** स्वास्थ्य क्या है? बड़ा भ्रम है, पूरे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कि स्वास्थ्य क्या है? **जब आपके मन में कोई रोग न हो, वह व्यक्ति परम स्वस्थ है,** चाहे देह में कोई रोग हो। जब व्यक्ति अपने

आपको अस्वस्थ समझता है—चाहे देह की सारी क्रियाओं की जांच से वह बिलकुल सही हो—वह रोगी है। लेकिन देह में रोग है और आप मानसिक रूप से स्वस्थ हों, तो आप परम स्वस्थ हैं, क्योंकि देह का धर्म है; आयु के अनुसार इसमें जड़ता भी आती है, बुढ़ापा भी आता है, रोग आते हैं, दोष आते हैं। जब आपका मानसिक स्वरूप विशुद्ध है और मानसिक रूप से आप स्वस्थ हैं, तो आप परम स्वस्थ हैं। पहला गुण मैंने लक्ष्मी का बताया **सुख** और परम सुख आपको तभी प्राप्त होंगे जब ईश्वर के साथ आप आनन्द के साथ जुड़े रहेंगे। दूसरा बताया **सन्तोष** और तीसरा बताया **शान्ति**। जहाँ सुख होगा, संतोष होगा वहाँ शान्ति स्वतः ही होगी और चौथा बताया **सम्पन्नता**। सम्पन्नता भी तभी होगी जब आप ईश्वर-द्वारा दी गई प्रत्येक चीज़ **ईश्वर को समर्पित कर देंगे। 'त्वदीयं वस्तु प्रभु तुभ्यमेव समर्पये'** और पाँचवाँ बताया **'स्वास्थ्य'।** स्वस्थ आप तभी घोषित होते हैं जब आप मानसिक रूप से स्वस्थ होंगे। मानसिक रूप से स्वस्थ आप उस समय होंगे जब आप मन को ईश्वरीय मन के साथ जोड़ देंगे। मैंने अपने जाप के प्रवचनों में **मानव-मन** की संरचना बताई थी। मानव-मन उसी समय बनता है जब बुद्धि में जड़ता आती है, अहम आता है। **अहमयुक्त बुद्धि ही मानव-मन का निर्माण करती है,** जो अस्वस्थ होता है। जब यह मन ईश्वर को समर्पित हो जायेगा तो ईश्वरीय मन बन जायेगा, जो परम स्वस्थ होता है। छठा गुण है लक्ष्मी का—**'स्वजन'**। **'स्वजन'** कौन हैं? हम भारतीयों को इसका ज्ञान होना बहुत आवश्यक है। जो व्यक्ति अति भौतिकवादी होते हैं, जो व्यक्ति धन के पीछे पागल हो जाते हैं उस लक्ष्मी का वाहन है—**उल्लू**। उल्लू को रात में नज़र आता है। ऐसे व्यक्ति भी रात में ही दिखायी देते हैं कुछ डिस्को क्लब के अन्दर और कुछ क्लबों के बाहर। जिन पर धन का भूत सवार होता है, शास्त्र ने उनको कहा है—**पागल कुत्ता**। पागल कुत्ते के दो विशेष लक्षण होते हैं एक तो वह नाक की सीध में दौड़ता है। वह व्यक्ति जिसको धन कमाने का भूत सवार होता है वह नाक की सीध में ही दौड़ता है। उसको इधर-उधर कुछ नज़र नहीं आता। न पति, न पत्नी, न संतान, न

कोई मां, न बाप। दूसरा लक्षण, पागल कुत्ते को भय लगता है–**पानी से**। उसको कहा है hydrophobia, जिनको रेबिस हो जाती है वह पानी से डरते हैं। ऐसे व्यक्ति सत्संग से डरते हैं। संत को देखकर इसको घबराहट हो जाती है, अन्दर से वह भयभीत हो जाता है; अगर घर में संत प्रवेश कर जाये, तो वह बाहर निकल जाता है।

लक्ष्मी का तमोगुणी, सतोगुणी और रजोगुणी स्वरूप आदमी को क्या से क्या बना देता है, आप एकाग्र होकर स्वयं आत्मविश्लेषण करें। जो धन के लिये पागल होता है उसके पास कोई स्वजन नहीं होता। उसका अपना कोई नहीं होता। उसकी पत्नी अपनी नहीं होती, उसकी संतान अपनी नहीं होती, उसकी देह अपनी नहीं होती। लोग रात को शराब क्यों पीते हैं? क्योंकि वह अपनी देह से परे रहना चाहते हैं। नशे की गोलियां क्यों खाते हैं लोग? क्योंकि उनकी अपनी देह, अपना शरीर उनको भयभीत करने लगता है। ऐसे व्यक्तियों का कोई नहीं होता और न ही वे किसी के होते हैं। यदि आप अपने हो तो दारू पीने की क्या आवश्यकता है, क्यों भूलना चाहते हैं आप अपने आपको? आपको अपने से डर लगता है–सत्य यही है। नशे की गोलियाँ क्यों खाते हैं इसलिये क्योंकि उन्हें अपने आप से डर लगता है। यही सत्य है–इसको पकड़ लीजिये आज। जिसकी अपनी देह अपनी नहीं हुई, अरे! उसका अपना कौन होगा? उनके साथ जो लोग जुड़े होंगे वे मात्र स्वार्थीजन होंगे, चापलूसी करने वाले। जो भी उनके साथ जुड़े होंगे वे किसी न किसी मतलब से ही जुड़े होंगे। क्लबों में आपको बन-ठनकर हँसते हुए नज़र आयेंगे क्योंकि उनका अपना कोई नहीं होता और अपनों को दिखावा करने के लिये बड़ी-बड़ी पार्टियाँ करते हैं ताकि लोगों को दिखायें कि मैं बहुत सामाजिक हूँ। जो व्यक्ति अपने आपको सामाजिक दिखाने की कोशिश करता है समझिये वह बहुत बड़ा असामाजिक है। आज यह नग्न सत्य आपके सामने रख रहा हूँ। अगर आपके पास सौभाग्य लक्ष्मी है तो आपके स्वजन होंगे, आपके अपने होंगे। स्वजन को मैंने पारिभाषित किया था कि स्वजन कौन है? अपने हृदय से पूछिये कि मेरा कोई है? क्या आप

उस व्यक्ति के लिये प्रार्थना करते हैं देव-दरबार में। यदि करते हैं तो व्यक्ति आपका स्वजन बन जायेगा, आपका अपना बन जायेगा।

दीवाली उपहारों का त्यौहार है। अरे ! दीजिए उपहार ! जिसको उपहार देने जा रहे हैं, माथे पर त्यौरी डालकर मत जाइये क्योंकि कइयों को ज़बरदस्ती उपहार देने पड़ते हैं नहीं तो आपके काम रुक जाते हैं। घर में जाकर विचार करना कि आप उपहार क्यों देते हैं? वे भी दीजिये क्योंकि व्यवहार बड़ा आवश्यक है, लेकिन इसके साथ उनके लिये प्रार्थना भी करिये। स्वार्थजन भी बड़े आवश्यक हैं। व्यवहार में स्वार्थ के लिये उनको पैसा देना पड़ता है। उपहार भी बांटने पड़ते हैं। वे भी दीजिए लेकिन उपहार देने से पहले दो मिनट प्रभु से प्रार्थना करिये कि प्रभु ! मेरी शुभकामनायें इसको लगें, यह चिरंजीवी हो, दीर्घायु हो, स्वस्थ हो, सम्पन्न हो। जब आप इस भाव के साथ किसी को सस्ता उपहार भी देंगे तो देखना वो व्यक्ति आपका हो जायेगा और किसी को खुश करने के लिये बहुत कीमती उपहार भी देंगे तो वह व्यक्ति फिर नाक-मुँह सिकोड़ेगा। कोई भी उपहार दें, छोटा-बड़ा, अपनी हैसियत के अनुसार, इसके साथ ईश्वरीय स्पर्श दे दीजिये, तो लेने वाला व्यक्ति संतुष्ट हो जायेगा। स्वार्थ में उपहार भी देने ही पड़ते हैं। कोई ऐसी बात नहीं है पर हर उपहार को ईश्वरीय स्पर्श देकर दीजिये। जिसे भी उपहार देना हो उसके लिये घर से ही प्रार्थना करके चलें। जब आप प्रार्थना करके किसी को कुछ भी भेंट दें, तो उस व्यक्ति को संतुष्टि मिलेगी। वह व्यक्ति न केवल स्वार्थ के लिये बल्कि **अन्यथा** भी आपका हो जायेगा। इस दीवाली पर आप यह आज़मा कर देखें। जो भी उपहार आप दें वह प्रसन्नता से दें। उसका असर कई गुणा बढ़ जायेगा। स्वार्थजन आपका स्वजन बन जायेगा और वो आपका धन सौभाग्यलक्ष्मी बन जायेगा। उसके बाद हैं—**स्वरूपजन**। जो आध्यात्मिक सम्बन्ध होते हैं आपके, वे संसार में कहीं भी होते हैं, आप उनको याद करते हैं तो उनको मालूम चल जाता है कि आप उनको याद कर रहे हैं। वे आपकी देह का अंग होते हैं। यह मात्र महापुरुषों को अधिकार है कि उनके स्वरूपजन भी होते

हैं। वे कई देहों में विचरते हैं। मात्र एक देह में नहीं होते। अतः स्वार्थजन और दुर्जन किसको मिलेंगे? जो मात्र भौतिक हैं और जिनके पास दुर्भाग्यलक्ष्मी है। स्वजन किसको मिलेंगे? जिनके पास सौभाग्यलक्ष्मी है। लक्ष्मी का सातवां स्वरूप है **'सत्संग'**–***''बिनु हरिकृपा मिले न संता।''***

''तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिए तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग।''

अगर आपको स्वर्ग का और स्वर्ग से ऊपर वैकुण्ठ का सुख भी मिल जाये तो सत्संग के सुख के तिनके भर का भी वो मुकाबला नहीं कर सकता। सत्संग अर्थात् **सत्य का संग**। यदि इसका सन्धिविच्छेद करें **सत्+संग**–सत्य का संग। तो झूठ क्या है? प्रश्न यह उठता है कि उस सच्चिदानंद की सृष्टि में झूठ कहाँ से आ गया?

जैसा कि मैंने अपने जाप के पाँचों प्रवचनों में बताया कि हम अहम्वश उस सच्चिदानंद से विमुख हो जाते हैं, तो चेतन के विमुख जब बुद्धि होती है तो उसे कहा है–**'जड़ता'**। जड़ता नाम की कोई चीज़ नहीं है इस विश्व में, लेकिन जड़ता कब होती है जब हम सच्चिदानंद से विमुख हो जाते हैं, तो वहाँ से आया **असत्य** और इस जड़ता में हमने बहुत सी बिमारियाँ पाल ली। जिनका नाम है **'देहाध्यास और देहाधिपत्य'। 'मैं यह देह हूँ'**। इस देह को जब हम अपना स्वरूप मान लेते हैं तो इस महारोग का क्या नाम है–**देहाध्यास**। इससे छोटा एक रोग है **देहाधिपत्य** कि **'यह देह मेरी है'**। सारे दुख, बिमारियाँ, कष्ट सब मानव के इन रोगों से निकली हैं जो दोनों महाझूठ हैं। यह देह मेरी है कि अच्छा आप अमुक दिन पैदा क्यों हुए, पता नहीं क्यों। आप इन्हीं माँ-बाप से पैदा क्यों हुए, पता नहीं। अमुक स्थान पर क्यों पैदा हुए, कि मालूम नहीं। अमुक स्त्री-पुरुष से शादी क्यों की, पता नहीं। आपकी संतान भिन्न-भिन्न प्रतिभाओं से युक्त क्यों हुई, पता नहीं। आपका अमुक पद क्यों है? पता नहीं। लेकिन इसके बावजूद भी हम इस देह पर अपना पूरा अधिकार करते हैं कि **'मैं यह देह हूँ',** जिसके अगले साँस का भी भरोसा नहीं है और जबकि आप इस देह का एक नाखून और

एक बाल तक नहीं बना सकते। जब आदमी एक झूठ बोलता है तो उसको सच ज़ाहिर करने के लिये कई झूठ और बोलने पड़ते हैं। तो इन दो रोगों को ढकने के लिये हमने न जाने संसार का कितना आडम्बर निर्मित कर दिया। जितना आपका आडम्बर है वो अपने झूठों को ढकने के लिये है। जिस दिन यह दोनों झूठ साफ हो जायेंगे सत्संग से उस दिन आपके आडम्बर भी समाप्त हो जायेंगे। फिर आपको कर्ज़े लेकर अपनी लड़कियाँ या लड़कों की शादी नहीं करनी पड़ेगी। खिलाने में, पहरावे पहनने में, रहने में बड़े-बड़े आडम्बर होते हैं। लोगों को कई रोग घेर लेते हैं। ये सारे आडम्बरों के लिये कि मुझे कोई देखेगा तो क्या कहेगा? जो आप हैं, सो हैं। इन आडम्बरों की वजह से ही आपने बिमारियाँ पाल ली हैं।

आप जिसको भी ईश्वर मानते हैं, जिस नाम-रूप में, निराकार में, साकार में, उसमें ईश्वरत्व का आरोपण करिये, उसमें ईश्वरत्व का होना परम आवश्यक है। वह सच्चिदानंद हो, धर्मातीत हो, कालातीत हो, देशातीत हो, लिंगातीत हो, सम्बन्धातीत हो, **परम सौंदर्यवान, परम सशक्त, परम ख्यातिवान, ऐश्वर्यवान, बलवान और त्यागवान भी हो।** जब आप अपने ईश्वर में ईश्वरत्व को आरोपित करके उसकी आराधना करते हैं तो समझिये आप सत्य की ओर अग्रसर हो रहे हैं। आपका एक विशुद्ध सच्चिदानंद स्वरूप है, वह है आपका—**'इष्ट'**। सत्संग से आपको इसका ज्ञान होता है कि मेरा परम सत्य-स्वरूप क्या है, ये दो रोग **देहाध्यास** और **देहाधिपत्य** कहाँ से शुरू हुये, मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाना है मुझको, यदि मैं पृथ्वी पर स्वयं आया हूँ तो क्यों आया हूँ? जब तक आप खुद से नहीं पूछेंगे, आप अपने खुद के बारे में भी कुछ नहीं जानेंगे। ईश्वर को जानने से पहले खुद को जानिये। बात महालक्ष्मी पर चल रही है। सत्संग की महिमा पर चल रही है। सत्संग चाहते हैं आप, तो आपको अपने बारे में जानना बहुत ही आवश्यक है। यह तभी जानेंगे आप, जब आपका अपने खुद के साथ उठना, बैठना शुरू होगा। जब आप खुद को जान जायेंगे, तो खुदा को जानने में बहुत देर नहीं लगेगी। तो लक्ष्मी के इन सात अंगों—**सुख, सन्तोष, शान्ति,**

समृद्धि, स्वास्थ्य, स्वजन एवं सत्संग से यदि आप विभूषित हैं तो समझिए आप पर लक्ष्मी की कृपा है।

ऐश्वर्य की देवी लक्ष्मी की कृपा कहाँ होती है? यह मैं कई बार इंगित कर चुका हूँ कि ऐश्वर्य का बहाव शुद्धता की ओर होता है—सम्पूर्ण शुद्धता। तो पहले हमने लक्ष्मी के सात स्वरूप बताये आपको। इसका बहाव बताया—**शुद्धता की ओर।** सर्वप्रथम—**देह की शुद्धता।** दूसरी— **पर्यावरण की शुद्धता।** यदि आप पर्यावरण को शुद्ध नहीं रखते तो आप ऐश्वर्यवान नहीं हो सकते, भूल जाइये। मानव-देह पाँच-महाभूतों से बनी है **पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश।** पंच-महाभूतों का खेल है यह जीवन। पंच-महाभूतों की मुट्ठी है यह मानव-देह। पंच-महाभूतों से हम पलते हैं और अन्ततः जब **राम नाम सत्** होता है तो हमारी देह पाँच-महाभूतों में ही विलीन हो जाती है। बचती है डेढ़-दो किलो राख जो पृथ्वी का तत्त्व है जिसको हमारे बच्चे गंगा-यमुना में डाल आते हैं। ये पाँच-महाभूत ईश्वर के सीधे प्रतिनिधि हैं। हम आयकर और गृहकर आदि देते हैं पर जो हम इतनी साँस लेते हैं क्या हम वायु का टैक्स ईश्वर को देते हैं? इतना आकाश इस्तेमाल करते हैं आप, सूर्य की धूप, चन्द्रमा की चाँदनी और न जाने क्या-क्या इस्तेमाल करते हैं आप? अग्नि का इस्तेमाल करते हैं आप। आपकी देह में पाँच-प्राण और पाँच अग्नियाँ हैं। क्या आप इन सबका **'कर'** देते हैं? ईश्वर ने मानव-देह को इस प्रकार रचा है कि मानव-देह में कोई रोग आ ही नहीं सकता। कलिकाल में मानव की 350 वर्ष की आयु निर्धारित है। आज भी हिमालय में 200 – 300 वर्ष की आयु के साधु बैठे हुए हैं। हाँ! यह सत्य है। हम प्रदूषित करते हैं पंच-महाभूतों को। पृथ्वी को प्रदूषित करते हैं, जल को प्रदूषित करते हैं, वायु को प्रदूषित करते हैं, अग्नि को भी प्रदूषित करते हैं जो प्रदूषित कभी नहीं हो सकती। आकाश को प्रदूषित करते हैं और उसके बाद हम चाहते हैं—**ऐश्वर्य।** अपने बच्चों को पटाखों के लिये प्रोत्साहित करके क्या करते हैं हम? हर वर्ष अरबों रुपयों की सम्पदा को आग लग जाती है। वायु का प्रदूषण करते हैं। सारा वातावरण दुर्गन्धित रहता है। बारूद की

दुर्गन्ध सारे वातावरण में फैल जाती है। पृथ्वी को भी प्रदूषित करते हैं हम। ध्वनि को प्रदूषित करते हैं और हम मनाते हैं लक्ष्मी के आगमन का उत्सव। आज दिल्ली के बुद्धिजीवी यहाँ बैठे हैं, आज आप सब संकल्प करके जाइये कि हमेशा के लिये लक्ष्मी के आगमन के लिये दीवाली पर कभी पटाखों का प्रयोग नहीं करेंगे। पटाखों को चलाने से, बारूद के धुएँ से हम लक्ष्मी का अपमान करते हैं। इसको आने से रोकते हैं। हम प्रदूषण फैला रहे हैं, धन को आग लगा रहे हैं। पांच-पांच सौ रुपये की लड़ियां एक मिनट की ठा-ठा सुनने के लिये आग लगा देते हैं और फिर हम कहते हैं कि लक्ष्मी आयेगी। अरे ! उतना पैसा यज्ञ, हवन में लगाइये आपके घर का परिदृश्य बदल जायेगा। आपकी जीवन-शैली बदल जायेगी। संकल्प करिये कि कल से आप अपने घर में हवन शुरू करेंगे ताकि सारे संसार में सुगन्धि फैले। आपके मन्त्रों की गूंज फैले, उन वेद-मन्त्रों से, उन ब्रह्म-वाक्यों से आपके हृदय के द्वार खुलेंगे और लक्ष्मी-मैया की कृपा आप पर हो जायेगी, निःसन्देह, हम इस व्यास-गद्दी से आपको आशीर्वाद दे रहे हैं। यहाँ पर जितने भी व्यक्ति बैठे हैं सभी प्रभावशाली हैं। जहाँ-जहाँ आपका प्रभाव है वहाँ-वहाँ आप पटाखों की दुर्गन्ध को फैलाने से रोकिये। आपको पुण्य लगेगा।

मैंने तीन ऋण बताये थे **पितृ-ऋण, देव-ऋण और ऋषि-ऋण**। तो यह देव-ऋण है यज्ञ, हवन व धूप-बत्ती रोज़ हम अपने घर में करें। दीवाली पर सरसों के तेल के दिये जलाने का विधान है क्योंकि सरसों के तेल का दिया जलता है तो उसका जो धुआँ निकलता है वह रोगनाशक होता है। उससे रोगों के जीवाणु नष्ट होते हैं, वातावरण शुद्ध होता है। तो आप हमारी भारतीय संस्कृति के अनुसार इस त्यौहार को मनाइये। धन को आग मत लगाइये। वातावरण को प्रदूषित मत करिये। यदि आप पांच महाभूतों को प्रदूषित करेंगे तो आप कभी भी स्वस्थ नहीं रह पायेंगे। आपने खुशी मनानी है तो मिठाईयाँ बाँटिये, फल बँटिये, लोगों के लिये प्रार्थना कीजिये और अपने घर में यज्ञ-हवन इत्यादि करिये। दीपमाला करिये, तो इस लक्ष्मी,

ऐश्वर्य की देवी की आप पर कृपा होगी। जहाँ दुर्गन्धित बारूद की गन्ध आयेगी, धन को नष्ट करेंगे व वातावरण को प्रदूषित करेंगे तो जो लक्ष्मी आनी है, निस्सन्देह वह भी रुष्ट हो जायेगी। पर्यावरण अति विस्तृत विषय है। लेकिन आज दीवाली के सन्दर्भ में हम यही कहना चाहते हैं कि इस परम पवित्र त्यौहार को प्रदूषण-मुक्त रखें। आप परम सशक्त हैं। आप सब ऐश्वर्यवान हो जायेंगे यह हमारा आशीर्वाद है। इस दीवाली से आप घर में हर रोज़ हवन करने का नियम बना लीजिये। हवन का सरलतम तरीका अपनाइये, किसी विधि-विधान की आवश्यकता नहीं है। कम से कम वायुमण्डल तो शुद्ध होगा। पूर्ण ऐश्वर्य के लिये जो बहुत आवश्यक है वह है—हमारे खान-पान की शुद्धता। मांसाहार और शराब पर हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं, जिस-जिस के घर में शराब की बोतल पड़ी है उसको किसी को भी भेंट नहीं करना, उसे शौचालय में गिरा देना। घर को पहले गंगाजल से शुद्ध करके धूप-बत्ती करना। हम दीवाली पर शुद्धिकरण करते हैं। रंगाई-पुताई करते हैं। आप आज से ही अपने घर का शुद्धिकरण कीजिये। आपको 40 दिनों में ही इसका प्रभाव मालूम चल जायेगा। धनवान कौन है? जिसको धन नहीं चाहिये:—

''चाह गई, चिन्ता गई, मनुवा बेपरवाह,
जिसको कुछ नहीं चाहिये वो शाहों के शाह।''

जिसको धन की चाहत नहीं है वो धनवान है। धनवान कोई धन की मात्रा से नहीं होता, सन्तोष से होता है। शराब द्वारा विनाश का वर्णन कर चुके हैं कि जिसके घर में शराब की बोतल पड़ी है, भले ही वह पीता न हो, उसके घर में कभी धन की बरकत नहीं पड़ती, व कोई न कोई क्लेश भी होगा ही। जो लोग शराब नहीं पीते इसका अर्थ यह नहीं है कि उनको क्लेश नहीं होता। जो पीते व घर में रखते हैं उनको क्लेश अवश्य होगा। तो इन क्लेशों की जननी, इस कुमति की जननी व इस निर्धनता की जननी शराब को अपने घर से हमेशा के लिये निकाल दीजिये। मांसाहार पर भी मैंने वैज्ञानिक तथ्य बताये थे। मांसाहर परम निषेध है। क्योंकि मांसाहारी लोग

शाकाहारी लोगों की अपेक्षा कई गुणा अधिक भयानक रोगों से ग्रसित होते हैं। अच्छे स्वास्थ्य एवं दीर्घ आयु के लिये शाकाहारी भोजन सर्वोत्तम है।

खान-पान की शुद्धता के बाद आती है अपने **सम्बन्धों की शुद्धता।** जिस परिवार में हम रहते हैं; अपने माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहनों, बच्चों व अन्य सम्बन्धियों के साथ—तो इन समस्त सम्बन्धों में माधुर्य हो, कटुता नहीं। पति-पत्नी में सांमजस्य हो। माता-पिता एवं बुजुर्गों की सेवा एवं सम्मान हो। अगर आप संसार के सुख-भोग भोगना चाहते हो तो अपने माता-पिता के चरण अपने हृदय में श्रद्धापूर्वक रखने पड़ेंगे। भूल जाइये पाश्चात्य सभ्यता को। अपने माता-पिता की मृत्यु के बाद भी श्राद्ध का विधान है हमारी संस्कृति में। **श्राद्ध का अर्थ है—'श्रद्धा'**। एक दिन विशेष रखा है मनीषियों ने कि आप अपने माता-पिता को किसी भी प्रकार से श्रद्धा अर्पण करें। आपके पास धन होगा, सम्पदा होगी, संतान होगी, जायदाद होगी, पद होगा, लेकिन यदि माता-पिता की कृपा आपके ऊपर नहीं है तो आप उसका भोग नहीं कर सकते। वह लक्ष्मी आपके लिये दुर्भाग्य-लक्ष्मी बन जायेगी।

उसके बाद आती है **धन की शुद्धता**। शुद्ध धन क्या है और काला धन क्या है, हमारे संतों ने इसको कैसे पारिभाषित किया है? काला धन वह है जिस धन को प्राप्त करने के बाद आप ईश्वर से विमुख हो जाते हैं। जिस धन को कमाते समय और कमाने के बाद आपका मन भगवान में नहीं लगता। अपने सच्चिदानंद स्वरूप में नहीं लगता, तो वह धन काला धन है। जिस धन की प्राप्ति के बाद आपका सत्संग में, संतों के पास और ईश्वर-चिंतन में ध्यान लगता है, वह है आपका **विशुद्ध धन।** तो धन का विशुद्धिकरण कैसे होता है? धन का विशुद्धिकरण **दान** से होता है। **दान का दर्शन** पहले कई बार वर्णित कर चुका हूँ।

सबसे आवश्यक है **शुद्धिकरण अपने विचारों का।** अपनी बुद्धि का शुद्धिकरण आपको मैं अति विस्तार से जाप के पाँच प्रवचनों में बता चुका हूँ कि आपकी बुद्धि ने ही दो रोग उत्पन्न किये हैं—**'देहाध्यास और**

देहाधिपत्य'। तो आप ईश्वर के नाम-जाप द्वारा अपने विचारों का शुद्धिकरण कर सकते हैं। सबके लिये प्रार्थना करियेः—

''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः,
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुख भाग्भवेत्।''

यदि आप अपना हित चाहते हैं तो आपको सबका हित चाहना आवश्यक है। यदि आप किसी का अहित करके अपना लाभ चाहते हैं तो आपको धन-सम्पदा, पद आदि प्राप्त तो हो सकता है, लेकिन वह आपको भयभीत कर देगा और जब भय होगा तो आप उसको भोग नहीं पायेंगे। अपने पद को, अपने धन को, सम्पदा को हज़म करने के लिये आपको दारू पीनी पड़ेगी। जब नशा उतरेगा फिर वही भय। कबूतर बिल्ली को आते देखकर आँखें बन्द कर लेता है और सोचता है कि बिल्ली चली गई। लेकिन बिल्ली और नज़दीक आ जाती है। दारू पीना मात्र कबूतर की तरह आँख बंद करना है। भय जायेगा नहीं। दो तीन घण्टे के लिये चला जायेगा। अच्छे-अच्छे ब्राण्ड हैं आजकल शराब के, जो तीन से चार घण्टे तक ही असर करेंगे उसके बाद जब आंख खुलेगी तो फिर भय रूपी बिल्ली आपको अपने पास नज़र आयेगी और वह आपको खा जायेगी। इसलिये जाप द्वारा, सत्संग द्वारा, संतों की कृपा द्वारा आप अपने विचारों को हर रोज़ शुद्ध करिये।

शुद्धिकरण का हमने बड़े संक्षेप में वर्णन किया। लक्ष्मी के स्वरूपों का वर्णन भी किया। महालक्ष्मी किसकी पत्नी है, विष्णु-पत्नी है तो विष्णु-पत्नी क्यों है, विशेषता क्या है विष्णु में? जैसा कि मैंने वर्णन किया कि क्षीर-सागर में लक्ष्मीपति भगवान विष्णु सदा लेटे रहते हैं। उन्हें आपने कभी भागते-दौड़ते नहीं देखा होगा। विष्णु हमेशा लेटे रहते हैं और लक्ष्मी उनके चरण दबाती रहती हैं। लक्ष्मी सौंदर्य और ऐश्वर्य की देवी है। स्त्री-स्वभाव के कारण इनको एक बार बड़ा गुस्सा आया तो पांव दबाते-दबाते ज़ोर से हिला दिया। बोली—भगवन! हाँ लक्ष्मी कहो। मैं लक्ष्मी हूँ। हाँ मुझे मालूम हैं आप

लक्ष्मी हैं। बोली—भगवन ! मैं बहुत सुन्दर हूँ। विष्णु बोले—मुझे मालूम है बहुत सुन्दर हैं आप। तो फिर आप मेरी तरफ देखते क्यों नहीं? विष्णु भगवान हँस पड़े और बोले—ऐसा है, यदि मैं तुम्हें देखने लग गया तो तुम पाँव दबाना बंद कर के, मेरे सिर के पास आकर बैठ जाओगी। इसलिये लगी रहो, दबाती रहो। कहाँ लेटे हैं विष्णु ! शेष-शैया पर। सहस्त्र फन वाले महाशेष की शैया पर भगवान विष्णु लेटे हैं, शेष प्रतिनिधित्व करता है मृत्यु का, काल का। अगर आप उस परम सत्य को, उस निश्चित परिलक्षित भविष्य को, कि जो पैदा हुआ है वह अवश्य ही एक दिन मरेगा, धारण कर लें; अगर आप उस शेष-शैया पर 10 – 15 मिनट प्रतिदिन लेट जायें तो लक्ष्मी आपकी भी सेवा में रहेगी। भगवान को मानिये या न मानिये, पूजा-पाठ करिए या न करिये, धूप-बत्ती करिये अथवा न करिये, यज्ञ, हवन, दान-पुण्य करिये या न करिये लेकिन इस शेष को याद रखिये। आप ऐश्वर्यवान हो जायेंगे। कितनी बार हमने कहा है:—

''शिव बन जाओ या शव बन जाओ''

ऐश्वर्य कब आपकी तरफ दौड़ता है? जब आप ऐश्वर्य नहीं चाहते। जब आपको कुछ नहीं चाहिये, तब सब कुछ आपके चरणों में आता है। न केवल आपकी तरफ आता है बल्कि आपको भोग भी देता है। आप किसी को भोग पाने का वरदान दे सकते हैं जिसका उदाहरण हैं— हमारे भगवान शंकर। उन्होंने शेष को ओढ़ लिया। वे मुर्दे की भस्मी पहनते हैं तो भगवान शंकर के वस्त्र क्या हैं—भस्मी। भस्मी है शेष और भगवान शंकर उस शेष को ओढ़ते हैं। एक बार लक्ष्मी जी स्वयं पार्वती जी से मिलने कैलाश पर्वत पर गईं। लक्ष्मी स्वयं तो सौंदर्य की देवी हैं ही, शिव-लोक में कैलाश पर पहुँची तो वहां देखा धूना जल रहा था और भगवान शंकर थोड़ा घूमने के लिये बाहर गये थे। तो माँ पार्वती बैठी हैं भूत-प्रेतों के संग। भगवान शंकर के गण कौन हैं? भूत-बेताल, यक्ष-यक्षणियाँ, डाक-डाकनियाँ, ये सब वहाँ पर विराजमान थे और लक्ष्मी जी के साथ बहुत सौंदर्यवान गण थे। तो पार्वती जी ने उनकी बहुत आवभगत की, पर लक्ष्मीजी प्रसन्न नहीं हुईं। कहाँ

वैकुण्ठ और कहाँ शिवलोक ! तो जब वह वहाँ से चलने लगीं तो कहा कि–'' आप यहाँ रहती हैं ! ये हैं आपके सेवक !'' माथा सिकोड़कर बात की और चली गईं। भगवान शंकर जब शाम को लौटे तो पार्वती जी का मन खराब। समझ गये कि कुछ हुआ है। बोले, 'लक्ष्मी आईं थीं। 'बोली–हाँ' ! कहाँ रह रहे हैं हम ? आप विश्वनाथ हैं' तो शिवजी ने कहा–'ठीक है, आप गुस्सा मत करिये, कुछ करते हैं हम।' बोली क्या करेंगे आप ? आज तक कुछ किया नहीं। तो भगवान शंकर ने पार्वती जी का गुस्सा ठण्डा करने के लिये तुरन्त आज्ञा दी और विश्वकर्मा प्रस्तुत हो गये। शिवजी बोले–''हे विश्वकर्मा ! तुरन्त संसार की सर्वोत्तम नगरी बना दी जाये जो वैकुण्ठ से भी सहस्त्र गुणा सुन्दर हो।' बोले–'अच्छा महाराज।' विश्वकर्मा ने तुरन्त सारे विश्व का भ्रमण किया और एक द्वीप ढूँढा जिसका नाम था लंका। लंका में परकोटा बना समुद्र का और उसमें उन्होंने सोने की नगरी बनायी जिसमें प्रकाश था मणियों का। खम्बों में मणियाँ लगी थीं। बहुत भव्य नगरी बनी। भगवान शंकर को दिखाई। भगवान शंकर बहुत खुश हुये। पार्वती माँ भी खुश हुईं। अब उन्होंने गृह-प्रवेश करना था। पूजा करनी थी तो उस पूजा में रावण के नाना पुलत्स्य मुनि को बुलाया गया। निमन्त्रण भेजे गये। पार्वती ने कहा कि 'लक्ष्मी को ज़रूर बुलाना और कोई आये न आये। इसको दिखाती हूँ मैं कि हमने क्या बनाया है।' तो विष्णु जी भी आये। साथ में लक्ष्मी जी भी आईं। पार्वती जी की नज़र लक्ष्मी जी के ऊपर ही रही। जब पूजन हो गया तो भगवान शंकर ने पुलत्स्य मुनि से कहा कि–'मुनिवर आप दक्षिणा मांगिये।' वह बोले–'प्रभु आप तो विश्वनाथ हैं, आप की जो इच्छा हो वह दे दीजिये।' वे बोले–'नहीं आप माँग लीजिये।' यह तू-तू, मैं-मैं काफी देर तक होती रही तो भगवान शंकर ने दबाव दिया कि नहीं आपको माँगना ही पड़ेगा। आप क्या चाहते हैं ? वे बोले–'प्रभु आप बहुत प्रसन्न हैं।' शंकर भगवान ने कहा–'हाँ, हम बहुत ही प्रसन्न हैं।' तो वह बोले–'तो भगवन यह लंका ही मुझे दे दीजिये।' वे बोले–'ठीक है। सागर का जल लाओ।' जल लेकर संकल्प किया कि–'सारी लंका आपकी हुई, रखिये।' अब पार्वती ने लक्ष्मी

की तरफ देखा कि अरे ! मेरे पति ने तो वैकुण्ठ से हज़ार गुणा सुन्दर नगरी बनाकर दान कर दी। वे नन्दी पर बैठे और कैलाश पर्वत पर वापिस आ गये। तो भगवान शंकर विश्वनाथ क्यों हैं? क्योंकि वे शेष को धारण करते हैं।

अंत में, संक्षेप में आपको बताऊँगा कि गणेश जी का सान्निध्य लक्ष्मी जी की कृपा से होता है। लक्ष्मी जी के सान्निध्य के लिये गणेश जी के गुण होने क्यों आवश्यक हैं? लक्ष्मी जी के साथ गणेश जी की पूजा होती है। गणेश जी के दिव्य गुण हैं—गणेश जी के बड़े-बड़े कान हैं। हाथी का मुख है। बड़े कान का अर्थ है कि सबकी बात सुनिये। आँखें छोटी हैं ताकि आपकी दृष्टि विचारपूर्ण हो। सूंड लम्बी है अर्थात् आप में वस्तुस्थिति सूँघने की शक्ति हो। विशेष अवसर पर मुझे कैसा व्यवहार करना है। गणेश जी का एक दाँत है जिसका तात्पर्य है कि आपका खाने का और दिखाने का दाँत भी एक ही हो। लोगों के खाने के दाँत और, दिखाने के दाँत और होते हैं। इसलिये वह ऐश्वर्यवान नहीं हो सकते। गणेश जी का पेट बड़ा है, इसका अर्थ है कि आप सबकी बात को अपने पेट में समा लीजिये। गणेश जी का वाहन चूहा है, जो सबसे चंचल जीव है। वह कभी स्थिर नहीं बैठता। यह चिन्ह है हमारे मन का। मानव-मन भी इसी प्रकार चंचल है, यदि आप अपने मन को ईश्वरीय-मन में समाहित कर दें तो आपका मन स्थिर हो जायेगा। तब आप इस चूहे रूपी मन की सवारी कर सकते हैं। आपकी सवारी का स्थिर होना अति आवश्यक है। जब आपमें गणेश जी के विशिष्ट गुण आ जायेंगे तो आप लक्ष्मी मैया के सान्निध्य के एवं कृपा के महापात्र बन जायेंगे।

''बोल सियावर राम चन्द्र महाराज की जय''

(11 नवम्बर, 2002)